प्रकाशक —
सन्मति ज्ञानपीठ,
लोहा मण्डी आगरा

द्वितीय संस्करण मई १९५७
मूल्य—तीन रुपया

१ :

विकारों को जीतना ही सच्ची विजय है

दुनियाँ के हर एक प्राणी को शान्ति प्रिय है। आधि-त्र और उपाधि सदा-सर्वदा प्राणी-समूह को अप्रिय-अरुचि होती है। मानव को स्वभावानुसार सुख प्रिय और दु ख य होता है। सुख पुण्य का फल है और दु ख पाप का। सभी चाहते है, दु ख को कोई नही चाहता। लेकिन फिर ाह कितनी विचित्र बात है कि मनुष्य को जिसका फल लगता है उसका कर्म नही रुचता, और जिसका फल रुचता है उसका कर्म प्रिय लगता है। जैसा कि है—

> पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यनेच्छन्ति मानवा :।
>
> न पाप-फलमिच्छन्ति पाप कुर्वन्ति यत्नत ॥

ल मैने आप से कहा था कि मनुष्य का सत्य-स्वरूप और निर्विकार अवस्था मे जाना जा सकता है। र विकारी भाव प्राणियो को दु ख देते हैं। प्राणी जब होते है, तब वे पुण्य का सचय करते है। काम, र लोभ ये त्रिदोप है। जैसे वात, पित्त और कफ के ान से सन्निपात हो जाता है, और मनुष्य उससे अपना ूल जाता है, वैसे ही काम, क्रोध और लोभ जब आ

मिलते हैं तो प्राणियो की दुर्गति कर डालते हैं। काम के वशीभूत प्राणी को अपना भान तक नही रहता। उसे न अपना हित नजर आता है और न अपना अहित ही। काम-वासना के वश मे होकर प्राणी अपना सर्वनाश कर डालता है।

क्रोध के विषय मे एक अग्रेज लेखक ने कहा है—

An angry man open his month and shuts his eyes

'क्रोधी मनुष्य मुँह खुला रखता है और आँखे बन्द कर देता है।' सुज्ञ पुरुष से बिल्कुल विपरीत हाल क्रोधी मनुष्य का होता है। आँखे जो सदा खुली रखनी चाहिए, क्रोधी मनुष्य बन्द कर देता है, और मुँह, जो बन्द रखना चाहिए, वह उसे खुला छोड देता है।

क्रोध तीन तरह से किया जा सकता है—

१—बिना किसी कारण के क्रोध करना।

२—किसी निमित्त को पाकर क्रोध करना।

३—क्रोध करते हुए को प्रोत्साहन देना।

उक्त तीनो ही दृष्टियो से क्रोध करना पाप है, क्योंकि जैन धर्म की विशाल दृष्टि मे किसी भी बुरे काम को करना, कराना या उसे अनुमोदन देना पाप ही कहा गया है। बिना किसी कारण से यो ही क्रोध कर बैठना तो मूर्खता है। क्रोध करते हुए मनुष्य के सामने क्रोध करना मानो गन्दगी में गन्दगी डाल कर वृद्धि करना है। यह तो क्रोध रूपी कीचड में पत्थर डालने जैसी बात है। जैसे कीचड मे पत्थर फेकने वाला उसके काले दाग से बचा नही रह सकता, उसी भाँति क्रोधी मनुष्य के सम्मुख क्रोध करने पर उसके दुष्परिणाम से भी बचा नहीं जा सकता। क्रोधी मनुष्य को शान्ति तो कभी होती ही है।

क्रोध के आवेश मे कभी-कभी मनुष्य के ज्ञान-तन्तु भी फट जाते है, जिससे वह लकवा आदि भयकर मरणान्त बीमारियो का भी शिकार हो जाता है। इस प्रकार क्रोध से शारीरिक हानि तो है ही, मानसिक हानि भी कुछ कम नही है। क्रोध से मनुष्य का चित्त सदा भ्रान्त रहता है। किसी भी काम मे उसका मन नही लगता है। पैसा इकट्ठा करने से तो, फिर भी, कुछ आराम किया जा सकता है—मोटर रखी जा सकती है, रोज-रोज सिनेमा देखा जा सकता है, वाग-वगीचो की हवा खाई जा सकती है और इस प्रकार हिंसा का कारण होने पर भी उससे भौतिक सुखो का अनुभव किया जा सकता है। परन्तु क्रोध को इकट्ठा कर रखने से क्या लाभ हो सकता है ? कुछ नही। अत सुज्ञ पुरुष क्रोध का क्षमा-शस्त्र से मुकाविला करते हैं और उसे अपने वश मे कर लेते है। गाली देने वाला भले ही गालियाँ देता रहे, परन्तु सामने वाला व्यक्ति क्षमा रक्खे तो क्या गाली देने वाला व्यक्ति उसका कुछ विगाड कर सकेगा ? कुछ नही। आखिर हार तो गाली देने वाले की ही होगी, और जीत होगी क्षमा रखने वाले की। एक किस्सा है—

एक गाँव मे एक स्त्री को लडने का वहुत शौक था। विना लडे उसे चैन नही पडता था, अत जवरन एक न एक से तो वह लडती ही रहती। गाँव वाले वेचारे उससे तग आ गये थे। एक दिन विवश हो वे सव मिलकर ठाकुर साहव के पास गये और अपनी फरियाद की। ठाकुर साहव ने उस स्त्री को वुलाया और कहा—माजी, तुम हमेशा क्यों लडती-झगडती हो ? इससे तुम्हे क्या लाभ होता है ?

- बुढिया ने कहा—मुझे बिना लडे भोजन नही भाता है, अत लडना तो पडता ही है ?

ठाकुर साहब ने उसे बहुत समझाया-बुझाया, पर बुढिया नही समझी । तब ठाकुर साहब ने एक उपाय सोचा और बुढिया से कहा—अच्छा, तुम्हारे पास रोज बारी-बारी से एक एक आदमी आया करेगा और तुम उससे लडा करना, फिर तो दूसरो को तग नही करोगी ? बुढिया इस पर राजी हो गई । अब रोज़ बारी-बारी से उसके पास एक-एक आदमी आने-जाने लगा और वह लड़-लडा कर इस तरह अपनी ऐब (आदत) पूरी करती । एक दिन एक धर्मात्मा स्त्री की बारी आई । जब वह जाने लगी तो उसकी बडी पुत्री उससे मिलने आई और बोली—मा, तुम्हारे बजाय आज मै उस बुढिया के पास जाऊँगी । माता ने उसे समझाते हुए कहा—वह बडी लड़ने-झगडने वाली स्त्री है, तुझे दिन भर तग कर देगी, अतः मुझे ही जाने दे । परन्तु पुत्री नही मानी और अन्त मे वह लडकी ही उसके पास गई । लडकी पढी-लिखी और सस्कारित थी । वह बुढिया के पास आई और बोली—माजी, आपको किस चीज की जरूरत है, कहिये क्या लाऊँ ? बुढिया अपने स्वभावानुसार 'तेरी मा ऐसी और तेरा बाप ऐसा' कहकर उसे गालियाँ देने लगी, परन्तु लडकी शान्त रही और चुपचाप सब सुनती रही । वह अपने साथ कुछ सीने-पिरोने का काम लाई थी और पढने के लिए पुस्तके भी लेकर आई थी, अतः चुपचाप अपना काम करती रही । बुढिया ने देखा कि यह तो कुछ बोलती ही नही है, अत वह फिर जोरो से लडने लगी और गालियाँ देती हुई कहने लगी—तू बोलती क्यो नही है ?

बुढिया जब गालियाँ देकर थक गई तो लडकी ने कहा—माजी अब आराम कीजिए, आपका मुह दुखने आ गया होगा। बुढिया ने सोचा—मै तो इससे गालियाँ देकर लड-झगड रही हू और यह मुझे बदले मे आराम करने को कहती है, यह कैसी लडने वाली आज आई है ? रोज-रोज आने वालो से तो यह एक अनोखी ही मालूम देती है। अब मै लड़ू भी कैसे, जब कि यह तो कुछ बोलती ही नही है ?

बन्धुओ ! जो रोज-रोज झगडने मे लोगो को हराती थी, उसे इस लडकी के सामने अपनी हार माननी पडी। क्रोध के सामने क्रोध करने से विजय नही पाई जा सकती है, उसे तो क्षमा रूपी दैविक शस्त्र से ही जीता जा सकता है। जैसा कि आपने इस उदाहरण मे देख लिया है।

तीसरा विकार है लोभ। यह भी काम और क्रोध से कुछ कम भयकर नही है। आज सारी दुनियाँ मे जो उपद्रव हो रहे है और मार-काट मच रही है, वह इसी लोभ का परिणाम है। उत्तराध्ययन सूत्र के नवे अध्ययन मे श्री नमिराजर्षि का वर्णन है। जब वे अपना राज-पाट छोड कर मुनि बनने जाते हैं, तब-इन्द्र उनकी परीक्षा के लिए स्वर्ग मे पृथ्वी पर आता है और उनसे कई प्रश्न पूछता है। वे प्रश्न बड़े हृदयग्राही और हमारे आगमो की मौलिकता प्रकट करने वाले है। जब श्री नमिराजर्षि ने इन्द्र के सभी प्रश्नो का सचोट उत्तर दे दिया तो अन्त मे उसने कहा—'हे नमिराज ! तुम अपना घर-बार, कुटुम्ब-परिवार छोड़कर भले ही जाते हो तो जाओ, परन्तु इससे पहले अपने खजाने को बढा कर जाओ।' इसके उत्तर मे नमिराज ने कहा—

सुवरण रुप्पस्स उ पव्वया भवे,
सिया हु केलाससमा असखया ।
नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि,
इच्छा हु आगास समा अणतिया ॥

कैलाश पर्वत के समान सोने-चाँदी के असख्य पर्वत कदाचित् किसी को दिये जायँ, तो भी एक लोभी के लिए पर्याप्त नही है, क्योकि इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त है। ज्यो-ज्यो इच्छाओ की पूर्ति होती जाती है, त्यो-त्यो वह अधिकाधिक बढती ही जाती है। एक इच्छा की तृप्ति होना ही दूसरी इच्छा की जागृति होना है। आज एक मनुष्य लखपति हो जाय तो क्या उसकी इच्छा करोडपति बनने की नही होती ? एक राजा एक गाँव का मालिक हो जाय तो क्या वह दूसरे गाँव पर प्रभुत्व जमाने का विचार नही करता ? एक अग्रेज तत्वज्ञानी ने कहा है—

"सुख पैसा नही मागता, सुख सग्रह नही मागता, लेकिन सुख सन्तोप माँगता है।"

और भी—

A tub was large enough for Dayogenus but a world was too little for Alexander

डायाजिनस के लिए एक टब भी बहुत था, लेकिन ऐलेग्जैण्डर के लिये सारी दुनियाँ भी छोटी थी। क्योकि मानव की तृष्णा का कभी अन्त नही होता है, वह तो आकाश के समान अनन्त और असीम होती है। कोई विमान लेकर अगर आकाश का अन्त खोजने जाय तो क्या वह खोज सकेगा ? इसी तरह इच्छाओ का अन्त भी नही होता है।

जो मानव जितने ही निष्परिग्रही होगे वे उतने ही गरीव

होगे। गरीब सन्तोषी होगे और सन्तोषी मानव सुखी तो होगे ही। एक समय की बात है— एक सन्यासी ने अपने सारे धन को किसी गरीब को दान देने के लिये कहा सन्यासी के पास कई गरीब मनुष्य आये। किसी ने कहा—मेरे पास वस्त्र नही है। किसी ने कहा—मेरे पास खाने के लिए अनाज नही है, अत अपना धन मुझे दीजिये। सन्यासी ने उन सबको यह कह कर विदा किया कि यह पैसा तुम्हारे जैसो के लिये नही है, तुम्हारे से भी गरीब मनुष्य के लिये है।

एक दिन राजा की सवारी उधर से निकली। उस सन्यासी ने अपना सब धन उस राजा को सौंप दिया। राजा ने कहा—भाई, तुम अपना यह धन मुझे क्यो सौप रहे हो ? सन्यासी ने उत्तर देते हुए कहा—मैने अपना सब धन किसी गरीब को देने के लिए कहा था। आप मुझे सबसे गरीब मालूम हुए, अत मै यह धन आपको दे रहा हूँ। राजा ने कहा—भाई मै तो एक राज्य का मालिक हूँ, फिर मुझे क्यो यह धन देते हो ? सन्यासी ने कहा—महाराज ! जिनकी इच्छाएँ अभी शान्त नही हुई है, वे ही गरीब है, अत मेरी दृष्टि मे आप ही गरीब है। इसलिये, यह धन स्वीकार कीजिये।

उपर्युक्त उदाहरण से यह भली भाँति जाना जा सकता है कि गरीब कौन और श्रीमन्त कौन होते है ? पैसो के कम होने पर भी जो अपनी इच्छाओ पर काबू कर लेता है, वही श्रीमन्त होता है। पैसो के अधिक होने पर भी जो अपनी इच्छाओ को वश मे नही कर पाता, वह श्रीमन्त होते हुए भी गरीब ही होता है। श्रीमन्ताई को सन्तोष से प्रेम होता है और सन्तोषी सदा सुखी ही रहता है।

मनुष्य चाहे तो थोडे मे ही सुखी रह सकता है। कोई मोटर मे बैठे हुए सेठजी को सुखी समझता है, परन्तु यदि उनकी गरदन पर हाथ रख कर पूछे कि भाई, तुम कितने सुखी हो ? तो क्या वे अपने को सुखी कहेगे ? नही। फिर मनुष्य को क्षमा और सन्तोष द्वारा ही निर्विकार होकर सुखी बनने का प्रयत्न करना चाहिए। अपने विकारो पर विजय पाने मे ही मनुष्य की वास्तविक जीत समाई हुई है।

२१ जुलाई, १९४९

२

सत्संगति और सत्साहित्य का महत्त्व

मनुष्य जब बीमार होता है तो वह चिकित्सा के लिए किसी डाक्टर अथवा वैद्य के पास जाता है। रोग के कारण और उपाय के बाबत अनभिज्ञ होने से डाक्टर की या वैद्य की राय लेनी ही पडती है। मकान बनाने के पूर्व किसी मकान-मालिक को इजीनियर की सलाह लेनी जरूरी होती है। भाषा-ज्ञान के लिये किसी निष्णात अध्यापक के पास जाना पड़ता है। किसी को अगर कानून-कायदे की जानकारी प्राप्त करनी हो तो वकील या बैरिस्टर के पास जाना पडता है। फौज या सेना की कार्यवाही जानने के लिए सेनापति के पास जाना पडता है और राज-कार्य का परिचय प्राप्त करने के लिए जैसे राज-कर्मचारियो के पास जाना पडता है, वैसे ही मनुष्य को अपना जीवन उन्नत और प्रशस्त बनाने के लिये साधु पुरुषो की सगति मे जाना पडता है।

जो जिस बात के निष्णात होते है वे ही सलाह दे सकते हैं और मनुष्य भी उनके पास ही जाते है। वकील या बैरिस्टर जिस तरह कानून की सलाह देते हैं और वैद्य या डाक्टर जिस प्रकार बीमारो को औषधी और पथ्य की राय दे ते हैं, उसी प्रकार जीवन को प्रशस्त और उन्नत बनाने के लिये साधु

पुरुष मनुष्यो को सलाह देते है।

मनुष्य जिस तरह की सगति करना चाहे कर सकता है और जैसा चाहे वैसा बन भी सकता है। अंग्रेजी मे एक कहावत है—

What you think so you become

'तुम जैसे विचार करोगे, वैसे बन जाओगे।'

हमे अपना जीवन उन्नत बनाना है तो हमे ऐसे विचारों का आश्रय लेना ही होगा जिनसे हमारा जीवन उन्नत हो। विचार मनुष्य का सूक्ष्म जीवन है और आचरण मूर्तरूप। यानी आचरण विचारो का स्थूल जीवन है। विचार यदि पवित्र होगे तो जीवन भी पवित्र होगा। विचारो मे यदि दुर्भावनाओ का प्राबल्य होगा या हिंसक वृत्तियो का प्रभाव होगा तो जीवन भी हिंसक और विकारी ही होगा। इसके विपरीत यदि किसी के विचारो मे अहिंसा, प्रेम, दया और परोपकार की भावना प्रवाहित होती होगी तो निश्चय ही उसके जीवन से भी अहिंसा प्रेम, दया और परोपकार की किरणे प्रस्फुटित होगी। मनुष्य का जीवन विचार और वातावरण के अच्छे-बुरे होने पर ही बनता और विगडता है। एक मनुष्य यदि सिनेमा देखने जावे और फिर वही जगल मे जाकर किसी पेड के नीचे जाकर बैठे या किसी साधु-महात्मा के समीप बैठे तो उसके दोनो समय के विचारो मे काफी अन्तर ज्ञात होगा। मनुष्य तो वही है लेकिन सिनेमा हाल मे बैठे-बैठे उसके विचारो मे जोविश्रृखलता उत्पन्न होगी और उसकी वजह से जो बुरी भावनाएँ उसके हृदय मे जागृत होगी, वह जगल मे बैठे हुए नही हो सकेगी। क्योकि सिनेमा के वातावरण से जङ्गल का वातावरण कुछ न्यारा ही

होता है। अत यह अनुभव-सिद्ध बात है कि जैसा वातावरण होता है उसी के अनुरूप मनुष्य के विचार भी होते है।

हमारे धर्म स्थानको मे महापुरुषो ने निवास किया है और इनमे उनके परमाणु फैले हुए हैं जिससे कि आप यहाँ आते ही अपने हृद्गत भावो मे परिवर्तन अनुभव करने लग जाते है। मनुष्य के विचारो पर अमुक वातावरण, अमुक समय और अमुक स्थान का गहरा असर होता है। मनुष्य रोज सवेरे उठता है तो उसके दोनो हाथ सहसा जुड जाते है और वह बिछौने पर बैठे-बैठे ही ईश्वर को नमस्कार कर लेता है। यह सुबह के समय का ही पवित्र असर है जब कि किसी के हृदय मे बुरे विचारो का उद्गम ही नही होता।

यह ऊपर कहा जा चुका है कि जैसे रोगी के लिए वैद्य की सलाह लेनी आवश्यक होती है और कानून की जानकारी के लिए बैरिस्टर के पास जाना जरूरी होता है, वैसे ही जीवन सुधारने के लिए साधुओ का समागम करना आवश्यक होता है। यदि किन्ही मनुष्यो को साधुओ का समागम नही होता हो तो वे उनकी साहित्यिक पुस्तको को पढकर भी अपना जीवन सुधार सकते है। क्योकि साधुओ का लिखित या कथित साहित्य ही उनका परोक्ष दर्शन होता है। जो मनुष्य अहिंसा, प्रेम, दया और परोपकार के सत्साहित्य को सुनता है या पढता है तो निश्चय ही उसके विचार भी वैसे ही सुन्दर होगे।

आप जब स्थानक मे आते है और कुछ सुनते पढते है तो आपको अच्छे विचार आने लगते है। लेकिन आप जब घर जाते है तो उनको भूल जाते है। ऐसा क्यो होता है ? इसका कारण यही है कि हमारा समय सत्साहित्य के सुनने या पढने

मे बहुत कम व्यतीत होता है और दूसरी बातो मे अधिक, जिससे हम अच्छे विचारो को अल्प समय मे ही भूल जाते हैं।

मनुष्य के हृदय मे अच्छे और बुरे दोनो ही तरह के सस्कार होते है, जो समय और कारण को पाकर उदित हो जाते हैं। व्यापार के समय मनुष्य का हृदय कठोर हो जाता है। उस समय वह किसी गरीब को देखकर भी नही पिघलता और उसे एक पैसे की भी रियायत नही करता। लेकिन वही मनुष्य किसी दूसरे समय एक गरीब को देखकर पिघल उठता है और उसे कुछ दे देता है। इसका कारण यही है कि हमारे हृदयो पर दोनो ही तरह के सस्कारो का प्रभाव है। अत बुरे विचारो को दूर करने के लिए और सद्विचारो की प्राप्ति करने के लिए सतत् सत्साहित्य का मनन-वाचन अवश्य करते रहना चाहिए, जिससे कि मनुष्य हर समय अच्छे विचारों मे ही डूबा हुआ रहे।

एक बार महात्मा गाधीजी जोन्सवर्ग से किसी दूसरी जगह जा रहे थे। रेल की मुसाफिरी पूरे १२ घण्टे की थी। उस समय मि० पोलाट नाम के एक अग्रेज मित्र ने उनको रस्किन की 'अन्टू दिस लास्ट' नामक एक पुस्तक देते हुए कहा—लीजिये, आप अपने १२ घण्टे की मुसाफिरी इसे पढ कर समाप्त कीजिएगा। महात्माजी ने उस पुस्तक को (जिसे कि उन्होने वाद मे 'सर्वोदय' का नाम दिया है) पढा और पढकर उनपर ऐसा असर हुआ कि उन्होने अपनी वैरिस्टरी छोड दी और तभी से वे एक ग्रामीण की तरह सीधा-साधा जीवन व्यतीत करने लग गये। यह सत्साहित्य का ही प्रभाव था कि उसने गाधीजी को महात्मा वना दिया था। आपने

सुना होगा कि इंगलैण्ड का प्राइम मिनिस्टर ग्लैडस्टन सदा अपनी जेब मे पुस्तक रखता था। जब भी उसे समय मिलता, वह उसे पढने लग जाता था। पुस्तक के प्रति ऐसी ही लगन आज हमे भी होनी चाहिए।

पुस्तकीय जीवन बडा अनोखा होता है। लेकिन पुस्तको को चुनने मे बडी बुद्धिमानी से काम लेना चाहिए। पुस्तक ऐसी चुननी चाहिए कि जिसमे मानवता का झरना बहता हो। फिर चाहे वह किसी भी भाषा मे हो, या चाहे जिसकी लिखी हुई हो, उसे अवश्य पढना चाहिए। कोई-कोई यह समझते है कि अपनी साम्प्रदायिक पुस्तको को छोडकर दूसरी पुस्तको को पढना मिथ्यात्व है। लेकिन उनका ऐसा समझना नितान्त भ्रामक है। मिथ्यात्व वह साहित्य है, जिसके पढने से कषायादि भावो का उदय होता हो और मन मे हिंसा की जागृति होती हो। जीवन को उन्नत बनाने वाले के लिये ऐसा कुसाहित्य मिथ्यात्व है, न कि दूसरा। साधुओ के समागम से भी यही मतलब है कि जो सत्साधु है, उनका अवश्य समागम करना चाहिये। फिर चाहे व अन्य सम्प्रदाय के भी क्यो न हो।

साधु हमारे जीवन के गढने वाले होते हैं। जैसे कुम्हार का हाथ घडे को गढता है और उसे एक भाजन का रूप दे देता है, उसी भाँति साधु पुरुष भी मनुष्य को मानव का रूप दे देते है। मनुष्य चाहे जितना निष्ठुर और निर्दयी क्यो न हो, वह भी सन्त पुरुषो के समागम से निर्मल और पवित्र बन जाता है। अर्जुनमाली कितना निष्ठुर और निर्दयी था! वह रोज़-रोज़ छह पुरुषो और एक स्त्री की घात करता था। मनुष्य किसी चीटी के दब जाने

पर भी दुःख अनुभव करता है और यह समझता है कि मैने आज पाप कर दिया है, तो फिर रोज-रोज छह पुरुषो और एक स्त्री की घात करने मे कितना पाप होता होगा ? अर्जुन माली जो रोज-रोज छह पुरुषो और एक स्त्री की हत्या करता था, क्या उसके पाप की भी कुछ सीमा हो सकती थी। ऐसा निष्ठुर पापी पुरुष अर्जुनमाली भी भगवान् महावीर के समागम से क्षमाशील और साधु पुरुष हो जाता है। सत्सगति से क्या नही हो सकता ? पतित से पतित जीवन भी सत्सगति के प्रभाव से उन्नत बन जाता है। भगवान् बुद्ध के जीवन का भी एक उदाहरण है—

उस समय श्रावस्ती के जगल मे एक लुटेरा रहता था। उसका नाम था अ गुलीमाल। वह मनुष्यो को लूट-लाट कर उनकी अ गुलियाँ काट लेता और उनकी माला बनाकर पहनता था। अत वह अ गुलीमाल नाम से ख्यात था। श्रावस्ती की सारी प्रजा उससे हैरान थी वहाँ का राजा भी उसे अपने वश मे नही कर सका था। भगवान् बुद्ध ने जब यह सुना तो वे उस जगल मे जाने को तैयार हुए जहाँ कि वह लुटेरा रहता था। महापुरुष जो होते है वे दूसरो की दुर्गति नही देख सकते हैं, अपनी जान को जोखम मे डालकर भी वे दूसरो की भलाई के लिये चल देते है। जैसे भगवान् महावीर चण्डकौशिक को बचाने के लिये गये थे वैसे भगवान् बुद्ध भी उस लुटेरे को बचाने के लिये उस जगल मे चल दिये। उन्हे उस जगल में जाते देख कर ग्वाले कहने लगे—महाराज, इस जगल मे तो भयकर लुटेरा रहता है जो सबको लूट कर मार डालता है। अत आपको अपनी जान प्यारी है तो यहाँ से वापिस लौट जाइये। भगवान् बुद्ध ने उन भोले-भाले ग्वालों की बात सुनकर

विचार—मनुष्य कितना भोला होता है कि वह अपने हृदय मे बसे हुए भयकर लुटेरो से तो नही डरता है लेकिन बाहिरी लुटेरो से भय खाता है। वे बिना कुछ कहे-सुने आगे चल दिये। अंगुलीमाल ने जब दूर से ही भगवान् बुद्ध को आते हुए देखा तो उसने सोचा–इस जगल मे कोई भी अकेले आने की हिम्मत नहीं करता है फिर यह साधु कैसे अकेला आ रहा है ? क्या इसे अपनी जान प्यारी नही है। वह बुद्ध के सामने आया और स्थिर खडा होकर बोला—'ठहर जाओ, आगे मत बढो, यहाँ ही खडे रहो।' बुद्ध ने चलते-चलते कहा—'भाई, मै तो खडा हूँ, लेकिन तुम खडे रहो।' अगुलीमाल ने सोचा–यह कैसा साधु है जो मुझे स्थिर खडे होने पर भी खडे रहने को कहता है और स्वय चलते हुए भी कहता है कि मै तो खडा हूँ ? बुद्ध का उत्तर सुन वह एक उलझन मे फँस गया। उसने बुद्ध से कहा—ऐसा तुम कैसे कह रहे हो ? देखते नही, मै तो खडा ही हूँ। तब भगवान् बुद्ध ने उपदेश देते हुए कहा—भाई मै तो प्रेम और मैत्री मे स्थिर हूँ, लेकिन तू अभी अस्थिर है, अत: स्थिर हो जा। भगवान् बुद्ध के उपदेश का नतीजा यह होता है कि अन्त मे वह भगवान् बुद्ध का शिष्य हो जाता है और उनके वस्त्र-पात्र उठा कर उनके साथ श्रावस्ती के बगीचे मे आ जाता है।

नगरी का राजा प्रसेनजित अपनी सेना लेकर बाहिर निकला और जंगल मे जाने से पूर्व भगवान् बुद्ध के पास आता है और वन्दना करता है। भगवान् बुद्ध ने जब उसके पास सेना भी देखी तो कहा—राजन् ! आज सेना लेकर कहाँ चढाई करने जा रहे हो ? राजा ने उत्तर दिया–महाराज,

इसी जगल मे एक लुटेरा रहता है, मै उसको पकडने जा रहा हूँ। भगवान् बुद्ध ने कहा—हे राजन् ! जिसको तुम पकडने जा रहे हो अगर वह लुटेरा साधु बन जाय तो तुम क्या करोगे ?

राजा ने कहा—महाराज मै उसे वन्दना करू गा। अपना सिर उसके चरणो मे झुका दू गा। तब भगवान् बुद्ध ने अपने पास बैठे हुए अ गुलीमाल को बताते हुए कहा—राजन् ! यह वही लुटेरा है जिसे तुम अपनी सेना लेकर पकडने के लिये जा रहे हो। राजा ने तत्क्षण अपना सिर अ गुलीमाल के सामने झुका दिया।

बन्धुओ ! जिस लुटेरे को प्रसेनजित राजा अपनी सैन्य-शक्ति से भी वश मे नही कर सका, उसे भगवान् बुद्ध ने अपने वश मे कर लिया था। अब कहिये, सत्सगति मे ज्यादा बल होता है कि राजा अथवा उसकी सैन्य-शक्ति मे ?

जो अपना दमन कर लेता है वही दूसरो का दमन भी कर सकता है। भगवान् महावीर ने अपनी आत्मा का दमन किया था तो वे चण्डकौशिक जैसे विषैले सर्प का भी दमन कर सके और उसे उन्नत बना सके। भगवान् बुद्ध ने भी अपनी आत्मा का दमन किया था तो वे भी अ गुलीमाल जैसे लुटेरे को वश में कर उसका उत्थान कर सके। इस प्रकार सत्सगति से अनेक लाभ है। इसकी महिमा वेदो और पुराणो मे भी गाई गई है। अत जो मनुष्य साधुओ की सगति करेगे और सत्साहित्य का मनन करेगे वे अपने जीवन को अवश्य निर्मल बना सकेगे।

२२ जुलाई, १९४९

३

जीवन उन्नत कैसे बने ?

कल हमने यह विचार किया था कि मनुष्य को अपना जीवन सुधारना हो या जीवन उन्नत बनाना हो तो उसे सत्सगति और सत्साहित्य का मनन करना चाहिये । लेकिन आज विचारना यह है कि जीवन का विकास कैसे हो ?

आज चारो तरफ से सुधार की बाते बहुत हो रही है । कही सफाई मे सुधार की बाते हो रही हैं, तो कही शिक्षा मे सुधार की । लेकिन मनुष्य को यह नही भूल जाना चाहिये कि इनसे भी उसे सबसे ज्यादा जरूरत है अपने जीवन-सुधार की, जो कि अपने शुभ विचारो द्वारा किया जा सकता है । काम, क्रोध, लोभ आदि विकारो को हृदय से निकाल देना और शुभ-योग मे अपने मन को केन्द्रित करना ही जीवन-सुधार का मूलभूत पाया है । इसके लिए कल मैने साधु-सगति और सत्साहित्य का कथन किया था ।

जीवन-सुधार की भूमिका मे पदार्पण करने से पूर्व मनुष्य को मन, वचन और कर्म से निर्मल होना चाहिए । मनुष्य का मन निर्मल होना आवश्यक है । बिना निर्मल मन के शुभ विचारो का वपन हृदय मे नही किया जा सकता है । प्रकृति से मनुष्य को दो हाथ, दो पाव, दो आँख, दो कान मिले है,

पर जीभ एक ही क्यो मिली ? इसका कारण यही है कि मनुष्य अपनी दो आँख और दो कान से हर-एक चीज को दो बार देखे, सुने- पर जीभ से केवल एक ही बार कहे। मनुष्य को हाथ और पाँव बडे लम्बे-लम्बे मिले है, पर जीभ छोटी क्यो मिली है ? इसका कारण भी यही है कि मनुष्य अपने हाथ-पैरो का उपयोग अधिक-से-अधिक करे, पर जीभ का उपयोग वहुत कम करे—यानी आवश्यकता होने पर ही कुछ कहे। शास्त्रो मे जो वाणी का भी तप माना गया है, वह इसी का नाम है। कम-से-कम बोलना यही वाणी का तप है। अमेरिका का एक प्रसिद्ध पत्रकार जब भारत मे आया था, तब उससे यह पूछा गया था कि हिन्दुस्तान को आजादी मिलने पर क्या करना चाहिये ? इसका उत्तर देते हुए उसने कहा था—'जो ज्यादा बोलते हैं, उन्हे सर्व प्रथम खत्म कर देना चाहिये।' यह विलकुल सच है कि हम वाणी का महत्त्व समझे विना ही आजकल वहुत बोलने के आदी हो गये हैं। अधिक बोलना और निरर्थक बोलना भी मनुष्यो की बुरी आदतो मे शुमार किया गया है।

इन्द्र ने एक वार अपने गुरु वृहस्पति से कहा—मुझे कोई ऐसा शव्द वताइये, जिससे कि मुझे सर्वत्र मान-ही-मान मिले। वन्धुओ ! मनुष्य को मान बडा प्यारा होता है और अपमान वडा दुखदायी। अ ग्रेजी मे भी कहा है—

Insult is more than operation

'अपमान का नश्तर ऑपरेशन के नश्तर से भी ज्यादा दु ख-दायी होता है।' हाँ तो इन्द्र के पूछने पर वृहस्पति ने कहा—'मनुष्य मीठा वोले, तो सव जगह मान पा सकता है।'

मनुष्य से बने तो उपवास करे, अन्यथा नही। पर उसे वाणी पर नियत्रण तो अवश्य रखना ही चाहिये। वाणी पर नियत्रण रखना कोई सरल काम नही है लेकिन यह नही भूल जाना चाहिये कि यह जितना कठिन काम है उतना ही लाभ-दायक भी है।

कम बोलना, पर हितकर, मधुर और सत्य बोलना—यह वाणी का तप है, जो कि जीवन सुधारने का दूसरा पाया है।

तीसरा पाया है कर्म। कर्म भी हमे शुद्ध करने चाहिये। जिस दिन हमसे शुभ कर्म नही हो, वह दिन व्यर्थ गया समझना चाहिये। अशुभ कार्यो मे तो मनुष्य रोज व्यस्त रहता है, लेकिन उन अशुभ कार्यों से शुभ कार्यों मे प्रवृत्त होना ही शुभ योग है। हरएक मनुष्य डाक्टर नही बन सकता है और न हरएक मनुष्य अपने यहाँ लायब्रेरी ही खोल सकता है, लेकिन अगर कोई दूसरा व्यक्ति बीमार हो तो उसे हरएक मनुष्य डाक्टर के पास पहुँचा तो सकता है। या उसे दवा लाकर तो दे सकता है। मनुष्य की अपनी लायब्रेरी न हो, पर अपने पास कोई अच्छी पुस्तक हो तो उसे दूसरो को पढने के लिये तो दे सकता है ? ऐसे काम तो हर एक आदमी कर सकता है। ऐसे ही काम शुद्ध कर्म है, जो कि जीवन-सुधार का तीसरा पाया है।

पठन (मनन) मनुष्य की मानसिक खुराक है। शारीरिक खुराक तो हम अपने आप ही खा सकते हैं, लेकिन रस्किन ने कहा है—आप अपनी मानसिक खुराक दूसरो को भी दे सकते हैं विद्यालय हर कोई बना नही सकता है, लेकिन उसके

बनाने मे सहयोग तो हर कोई दे सकता है। कुँआ हरएक व्यक्ति नही खुदवा सकता है, पर घर आये प्यासे को पानी तो हर कोई पिला सकता है।

प्राचीन जमाने मे अतिथियो को देवता तुल्य समझा जाता था। लेकिन आज जब किसी के यहाँ मेहमान आते हैं तो सबसे पहले यह पूछा जाता है कि आप कब जावेगे? 'अतिथि देवो भव' यह एक प्राचीन वाक्य है। अतिथि को देव तुल्य कहा गया है, अत अतिथि बनकर किसी का आतिथ्य स्वीकार करना साधारण बात नही है, इसमे भी बडी योग्यता और विवेक की आवश्यकता है। गुजरात का एक किस्सा है—सगालसा नाम का एक सेठ था, जो किसी एक अतिथि को जिमाये बिना भोजन नही करता था। उसका यह रोज़ का नियम था। जिस दिन अतिथि नही मिलता उस दिन यह खुद भी भूखा रहता था। उस समय आज की तरह भिक्षुको की बाढ नही थी। बडी मुश्किल से ढूढने पर कोई ऐसा मिलता था जो कि किसी का आतिथ्य लेने को तैयार होता। कई दिन हो गये, सेठजी को कोई अतिथि नही मिला। अपने नियमानुसार वे भी भूखे रहे। कई दिनो बाद उन्हे एक तपस्वी मिला। सेठ जी ने उससे कहा—महाराज! मे कई दिनो का भूखा हूँ, अत आज आप मेरे घर चल कर कुछ जीमियेगा (लीजियेगा) और मुझे भी पारणा करने का मौका दीजियेगा। तपस्वी ने कहा—भाई मैं तो बीमार साधु हू, अत मेरा जीमना तेरे यहाँ कैसा हो सकेगा? सेठजी ने कहा—नही, महाराज! मै सब तरह से आपके योग्य व्यवस्था कर दूँगा। मेहरबानी कर आप मेरे घर को पवित्र कीजियेगा। सेठजी की भक्ति देखकर

साधु तैयार हो गया। दोनो चलकर घर आये तपस्वी ने सेठजी की परीक्षा लेनी चाही। उसने कहा—सेठजी, अगर तुम अपने लडके को मार-पीट कर मुझे भिक्षा दोगे तो मे लूगा, अन्यथा नही। सेठ अपने लडके को पीटने लगा तो साधु ने समझ लिया कि इसमे दिखावा या ढोग नही है। तब साधु ने उनका भोजन स्वीकार किया, तत्पश्चात् सेठजी ने भी पारणा किया। गुजरात मे आज भी सगालसा सेठजी का यह किस्सा मशहूर है।

अतिथि-सत्कार का स्मृतियो ने भी महत्त्व गाया है। 'अतिथि देवो भव' एक स्मृति-वाक्य है। लेकिन अतिथि-देव होने से पूर्व मनुष्य को अतिथि-शिक्षण अवश्य लेना चाहिये। कैसा अतिथि देव-तुल्य कहा जाता है, यह समझ लेना बहुत आवश्यक है।

मानव आज मेहमान होकर तो बहुत जाते हैं, और जहाँ जाते हैं उनकी मेहमानदारी भी पूरी-पूरी भोगते हैं। सिनेमा जाते हैं, बाग-बगीचो की सैर करते है, खेलते है, रेडियो सुनते हैं और बढिया भोजन करते है। इस तरह अतिथि-सत्कार तो मनुष्य बहुत करना जानता है, पर इसके साथ-साथ अतिथि-शिक्षा से, जिसकी कि बहुत जरूरत है, उससे बिलकुल अज्ञात होता है। अतिथि-शिक्षा के बिना अतिथि-सत्कार भी सूना-सूना लगता है।

यशवत नाम का एक भाई बडा अतिथि-भक्त था। वह अच्छा शिक्षित पुरुष था। उसके यहाँ से एक पुरुष जब उसका आतिथ्य लेकर अपने घर जा रहा था, तब रास्ते मे एक आदमी ने उससे पूछा—क्यो भाई, यशवत भाई ने आपका

अतिथि-सत्कार कैसे किया ? उत्तर देते हुए कहा—उसने मुझे बडे प्रेम से खाना खिलाया, अपने हाथो से पानी पिलाया, हँस-हँस कर बाते-चीते की और सब काम मेरा बडे प्रेम से किया। उसने कहा—यह सब तो ठीक है, परन्तु मैने सुना है कि जो मनुष्य उसके यहाँ आतिथ्य लेने जाता है, उसके वह लौटते समय चार चपत भी लगा देता है। क्या तुम्हारे भी लगाये है ? अतिथि ने कहा—सच है, उसने धीरे-धीरे चपत तो मेरे भी लगाई थी। परन्तु तुम्हे उसके अवगुण नही, गुण ही देखने चाहिये। यशवत भाई का यह स्वभाव था कि जो भी उसके यहाँ आता, लौटते समय उसके मुँह पर चार चपत लगाता था। एक दिन दूसरा विवेकी पुरुष उसके यहाँ आया। यशवत भाई उसकी बडी खातिर करने लगा और सब चीजे उसे ला-लाकर देने लगा। अतिथि ने कहा—यशवत भाई मै तुम्हारे यहाँ चार दिन तक रहना चाहता हूँ, परन्तु यदि तुम मुझे अपने घर के व्यक्ति की तरह रखोगे तो मै यहाँ रह सकूंगा, अन्यथा धर्मशाला मे जाकर रहूगा। बोलो, तुम्हारा क्या विचार है ? यशवत भाई किसी भी अतिथि को अपने यहा से जाने नही देता था अत उसने उसकी बात मान ली। अब वह अतिथि स्वय काम करने लगा और यशवत भाई से पूछने लगा—बोलिये, आपको क्या चाहिये ? क्या लाऊँ ? इस तरह वह यशवत के घर को अपना ही घर समझ कर रहने लगा। जब चौथे रोज वह जाने लगा, तो यशवत भाई अपने आफिस से घर आये और उससे पूछा—क्यो भाई, आपका सब काम हो गया ? अतिथि ने कहा—हाँ, मेरा सब काम तो हो गया है, लेकिन एक काम अभी बाकी है यशवत

ने कहा—कौनसा काम बाकी है भाई ? उसने कहा—अभी आपके हाथ की चपत खानी तो शेष ही रह गई है ? यशवत ने कहा—भाई ! तुम भी कैसी बात करते हो ? चपत भी क्या तुम्हारे जैसो के लिये है ? यह तो उसी को लगाई जाती है, जिसने अपनी मा के हाथो की चपत नही खाई हो । तुम्हारे जैसे पुरुषो के लिये मेरी चपत नही है । जाओ भाई, जाओ, फिर कभी जरूर दर्शन देना । बन्धुओ ! जो व्यक्ति दूसरो के घर पर जाकर भी घर के व्यक्तियो की तरह नही बनते है, तो वे भारभूत प्रतीत होने लगते है । इसीलिये अतिथि बनने से पूर्व अतिथि-शिक्षा को जानने की बात मैने आपसे कही है ।

मन से शुद्ध सोचना, वचन से मधुर बोलना और कर्म से शुद्ध करना, मानव-जीवन के आदर्श भूत मूल पाये है' जिन पर कि मानव-जीवन का विशाल महल खडा किया जा सकता है ।

मनुष्य से बडे-बडे काम नही हो सकते हैं, लेकिन छोटे-छोटे करने योग्य कार्य करना तो मनुष्य का धर्म (फर्ज) होना जाहिये । आप सडक नही बना सकते हैं, पर रास्ते मे पडे हुए ककड पत्थर या काटो को तो उठा कर फेक सकते हैं । ऐसे छोटे-छोटे काम, अगर मनुष्य चाहे तो आसानी से कर सकता है । और यही काम जीवन-घडतर के कर्म है, जिन्हे करते हुए मानव बडा बन सकता है । कुछ नहीं करते हुए निष्क्रिय बनना तो १४ वे गुणस्थान की स्थिति है । केवल ज्ञान प्राप्त करने तक यानी १३ वे गुणस्थान तक तो मनुष्य सयोगी ही रहते है, यानी कर्मशील ही रहते हैं । अत तब तक तो अपने योगो को शुभ कार्य मे प्रवृत्त रखना ही चाहिये ।

कई मनुष्य यह समझते हैं कि कुछ नही करते हुए चुपचाप बैठा रहना अच्छा है, लेकिन उनका यह समझना नितान्त भ्रम-मूलक हैं। मनुष्य अगर अपने योगो को शुभ कार्यों मे प्रवृत्त नही रखेगा तो अशुभ कार्यों मे तो वे जाने के ही हैं। मन से शुभ नही सोचेंगे तो बुरा तो सोचने का ही है। स्थूल शरीर से कुछ नही करने पर भी शरीर के सूक्ष्म यत्र तो चालू ही रहते हैं। मन की गति कब किससे रोकी जा सकती है ? शरीर के रुकने पर भी मन की गति चालू ही रहती है। एक अंग्रेज लेखक ने कहा है–'खाली मन पिशाचो का कारखाना है।' हमारे मन की स्थिति भी आज कचरा-पेटी जैसी हो गई है। कैसा भी गदा विचार आवे, उसे अपने मन मे भर दिया जाता है, हिताहित का विचार भी नही किया जाता। अत विवेकी पुरुष को चाहिये कि वह हिताहित का विचार करते हुए अपनी दुष्प्रवृत्तियो को भी शुभ कार्य मे प्रवृत्त करे। इस शुभ प्रवृत्ति को शास्त्रो मे 'सक्रमण' के नाम से पुकारा गया है। अपने अशुभ योगो को यानी मन वचन और कर्म के अशुभ योगो को शुभ योगो मे परिवर्तित करना सक्रमण है और यही जीवन-शुद्धि का राज-मार्ग है।

२३ जुलाई, १९०९

४

सुखी जीवन

गाँव मे हैजा हो या प्लेग हो तो मनुष्य अपना घर-बार छोड कर चला जाता है। उससे वचने के लिये वह जगल मे जाता है, इ जैक्शन लेता है और तरह-तरह की दवाइयां भी खाता है।

आजकल जिन-जिन शहरो मे हैजा होता है, उन-उन शहरो मे प्राय भंगियो को सताया जाता है, मारा-पीटा भी जाता है। लेकिन मनुष्य का यह समझना विल्कुल निराधार और असत्य है कि हैंजा भगियो की वजह से होता है। वह तो हमारी गदगी से ही होता है। फिर बेचारे भगियो को सताने से क्या लाभ है ?

मनुष्य अपने वाह्य दोषो को मिटाने के लिये दूसरो को सताने लग जाता है, पर क्या वह अपने हृदय मे छिपे हुए बुरे स्वभाव को दूर करने का भी प्रयत्न करता है ? दुनिया में फैलने वाला हैज़ा तो मनुष्य को एक बार ही मारता है, लेकिन खराब स्वभाव हैजा तो ऐसा भयकर है कि वह अनेक बार उसको मृत्यु के मुँह मे ले जाता है। फिर मनुष्य को किससे अधिक भयभीत होना चाहिए ? क्या आजकल के हैज़ा से या मानव-हृदय मे निरन्तर उथल-पुथल करने वाले खराब स्वभाव रूपी हैज़ा से ?

मनुष्य का स्वभाव है कि वह हमेशा दूसरो के दोष ही

देखता है। गधे की यह आदत होती है कि उसके सामने भले ही शक्कर का भोजन रखा जाय पर वह उसको छोड कर जमीन पर पडी हुई सूखी-घास की तरफ ही देखेगा। वैसे ही बहुत से पुरुषो की भी ऐसी आदत होती है कि वे हमेशा अच्छाई को छोडकर दूसरो की बुराई ही देखते है। जैसे मिट्टी या राख खाने से मनुष्य का मुँह बिगड जाता है, वैसे ही दूसरो की निन्दा करने से भी मनुष्य का जीवन बिगड जाता है जैसे कि एक अगरेज लेखक ने कहा है—

What you think so you become

जैसा विचार होगा वैसा ही जीवन भी होगा।

मनुष्य अपनी छोटी-सी आँख से सारी दुनिया को देख लेता है। लेकिन कितने आश्चर्य की बात है कि वह अपने को नही देख सकता है ? अगरेजी मे एक लेखक ने लिखा है—

एक दिन छलनी ने सूई से कहा—वहिन, तेरे सिर मे तो छेद है बेचारी छलनी यह नही जानती कि उसके तो सिर मे ही छेद है पर मेरा तो सारा शरीर ही छेदो से भरा पडा है। यही हाल आज मनुष्य का भी है। वह दूसरो के दोष तो बड़ी आसानी से देख लेता है पर यह नही देखता कि मैं कितने दोषो का खजाना हूँ। गुजरात के प्रसिद्ध कवि 'दलपत' ने अपनी एक कविता मे कहा है—

एक दिन एक ऊट ने सियार से कहा—मित्र, यह दुनिया तो बडी खराब है। सियार ने कहा—क्यो मामा, यह कैसे कहते हो ? ऊट ने कहा—देखो न, कही बगुले की चोच टेढी है तो कही कुत्ते की पूँछ टेढी है। कही हाथी की सूड टेढी है। मित्र, सब टेढी ही टेढे इस दुनिया में न जाने कहाँ से

भर गये हैं ?

सियार ने कहा—ऊँट मामा, यह तो तुमने ठीक कहा, लेकिन जरा अपने को तो देखो कि तुम कितनी जगह से टेढे हो ? सब तो एक ही जगह से टेढे है पर तुम तो १८ जगह से टेढे हो।

मनुष्य का भी ऐसा ही हाल है। वह भी दूसरो के दोष ही देखता है, यह नही देखता कि मुझ मे भी कितने दोष भरे पडे है ?

यह तो जानी और मानी हुई बात है कि दोषो को देखने से जीवन मे भी दोष ही आवेगे और गुणो को देखने से गुण। अत हमारा जो खराब स्वाभाव है, जिससे कि हम दूसरे के दोषो को ही देखा करते है, वह छोड कर गुणो की तरफ ही अपनी दृष्टि डालनी चाहिये और दोषो की तरफ आँख मीच कर चल देना चाहिये।

आपने सुना होगा कि युरोप मे 'निन्दा-निपेधक' (पेडलोक सोयायटी) नाम की एक कमेटी है। उसका जो सदस्य होता है, वह किसी भी दिन दूसरे की निदा नही करता है। उसकी नजरो मे निंदा करना जितना पाप है उतना ही दूसरो की निदा सुनना भी पाप होता है। उस सोसायटी का एक ऐसा भी नियम है कि जो उसका सदस्य होता है उसे सर्व-प्रथम सदस्य बनते समय तीन बार ताला खोलकर बन्द करना पडता है। और वह इस मतलब से करना पडता है कि अब से मै किसी की भी मन से, वचन से और कर्म से निंदा नही करूँगा। क्या हमारे यहाँ भी ऐसी कोई सोसायटी है ? अगर हो भी तो क्या आप उसके सदस्य बनने को तैयार होगे ?

मनुष्य शुद्ध हवा खाने के लिये शिमला और मसूरी जाता है और उसके लिये घर मे बाग बगीचे भी लगाता है। लेकिन शुद्ध स्वभाव बनाने के लिये वह क्या करता है ? इसके लिये भी उसे अवश्य प्रयत्न करना चाहिये।

आज गृहस्थी मनुष्यो की बात तो जाने दीजिये। हम जैसे त्यागी साधुओ की दृष्टि भी आज निर्मल नही है सब अपने-अपने सम्प्रदाय के साधुओ को ही श्रेष्ठ और चारित्रशील समझ बैठे है। दूसरे सभी उनकी दृष्टि मे शिथिल हैं। यह कैसी शोचनीय बात है ? कोई मनुष्य गगा मे अपनी नाव चलाये या जमुना मे, आखिर तो दोनो समुद्र मे ही जावेंगे। लेकिन फिर भी कोई कहे कि गगा मे जाने से ही समुद्र मे जाया जा सकेगा, जमुना मे जाने से ही नही तो क्या यह ठीक माना जा सकेगा ? हकीकतन सत्य तो यह है कि चाहे जिस मार्ग से क्यो नही जाया जाय, पर अपनी चरित्र रूपी नाव मजबूत होनी चाहिये, फिर चाहे कोई किसी भी रास्ते से क्यो नही जाता हो, अपने ध्येय पर पहुँच ही जावेगा। अत यह सोचना कि हम जिस मार्ग से जा रहे है वह मार्ग ही सच्चा और अच्छा है, दूसरा नही नितान्त भ्रामक है।

मनुष्य को जब तक अपनी चीज़ का मोह होता है तब तक उसका स्वभाव निर्मल नही बन सकता है। पुराने समय की एक बात है—बनारस के एक श्रीमन्त ब्राह्मण का लडका तक्षशिला मे विद्याध्ययन के लिये गया। जैसे आज बनारस शिक्षा का केन्द्र-स्थान समझा जाता है, वैसे ही उस समय तक्षशिला और नालदा के विद्यालय विश्व मे विख्यात थे। कई वर्षों बाद जब वह ब्राह्मण का लडका तक्षशिला से पढ कर

घर आया तो उसके पिता मर चुके थे । उसने सोचा—जब मेरे पिता भी अपने सारे धन को छोडकर मर गये है तो मै क्या इसे साथ मे ले जा सकूँगा ? यह सोचकर उसने सब धन गरीबो को बाँट दिया । मनुष्य जब अपरिग्रही बनता है तभी वह ऊपर उठ सकता है । आप लोग लीलोती का त्याग करते है—हरा शाक खाने का त्याग करते है । लेकिन यह तो जड को पानी न पिलाकर फ़ूल और पत्तो को पानी पिलाने के समान है । जड को पानी पिलाये बिना कोई फ़ूल और पत्तो को पानी पिलाये तो वे कितने दिनो तक हरे रह सकेगे ? आखिर मे तो सूखेगे ही । वैसे ही आप धर्मरूपी जड को हरा रखने के बजाय अगर ऊपर-ऊपर की बातो को—डालों को ही हरी रखेगे तो उसकी ताज़गी कब तक आपको हरा रख सकेगी ? आख़िर मे तो इसका परिणाम भी वैसा ही होगा जैसा कि जड़ को सीचे विना फ़ूल और पत्तो को सीचने से होगा । अत मनुष्य को सर्व प्रथम मूलभूत परिग्रह पर नियन्त्रण रखना चाहिये । हर एक मज़हब मे या धर्म मे परिग्रह पर नियन्त्रण रखने का आदेश दिया गया है । आप परिग्रह का विशाल दरवाज़ा तो कुला छोड देते है और छोटे-छोटे दरवाजे बन्द कर यह चाहते है कि घर मे कचरा नही आवे तो यह कैसे सभव हो सकता है ?

ईशु खिस्त के पास एक युवक आया और बोला—कोई ऐसा उपाय बताइये जिससे मेरा कल्याण हो ?

ईशु ने कहा—भाई, तुम अपने पडौसी से प्रेम करो, ग़रीबो की सेवा करो और दु खियो की सहायता करो । इससे तुम्हारा कल्याण होगा ।

हमारे निमित्त ही साधु का यह हाल-बेहाल हुआ है।

प्रधान ने जब यह सुना तो उसे बहुत दुःख हुआ। वह घबराते हुए साधु के पास आया और दीनतापूर्वक कहने लगा—महाराज ! आपको जो कष्ट हुआ है उसका अपराधी राजा ही है। अत. अगर आप शाप दें तो राजा को ही दे, मेहरबानी कर देश को नही दीजियेगा।

साधु अभी अन्तिम सास ले रहा था। उसने कहा—भाई, मेरा नश्वर देह तो जाने को ही था। आज नही तो कल जाता ही। तुम घबराओ नही। तुम्हारा राजा चिरायु हो और ईश्वर उसे सद्बुद्धि प्रदान करे, यही मेरा आशीर्वाद है। हाथ-पाँव, नाक आदि कटा हुआ पुरुष कब तक जीवित रह सकता है ? कुछ समय बाद साधु तो मर गया। लेकिन कहने का साराश इससे इतना ही है कि मनुष्य को कठिन से कठिन स्थिति का सामना भी चाहे क्यो न करना पडे, अपने शुद्ध स्वभाव मे तनिक-भी अन्तर नही आने देना चाहिये, धर्म कभी नही तजना चाहिये। क्योकि धर्म ही मनुष्य का रक्षण करता है और वही मनुष्य का घात भी करता है।

धर्म एव हतो हन्ति,धर्मो रक्षति रक्षित ।

शुद्ध स्वभाव रखना धर्म ही है अत इसको समझते हुए मनुष्य का यह फर्ज है कि उसे जो सद्गुण मिले हैं उनकी रक्षा करते हुए उनमे वृद्धि करे और दुष्प्रवृत्तियो का नाश करे। सद्गुणो के अकुरो को ज्ञान के निर्मल नीर से सीचे, पुष्ट करे और उनकी वृद्धि करे। अगर हम भी ऐसा करेंगे तो अपना जीवन सुखी कर सकेंगे।

२४ जुलाई १६४६

५

परोपकार

मनुष्य का जीवन अगरवत्ती जैसा होना चाहिए। अगरवत्ती अपनी काया को जलाकर भी सुगन्ध देती है, स्वय भस्मीभूत होकर भी वातावरण को सुगधित कर जाती है। उसका एक-एक कण जलता रहे, पर वह सुगध ही देती रहती है। मनुष्य का जीवन भी ऐसा ही होना चाहिए। एक जलती हुई अगरवत्ती मनुष्य को शिक्षा देती है, कि मनुष्य को अपना बलिदान देकर भी दूसरे को सुखी करना चाहिए। मनुष्य का जीवन अपने लिये नही है, वस्तुत वह दूसरो के लिये है—परोपकार के लिये है, स्वार्थ के लिये नही। यदि और अधिक गहरा सोचा जाय, तो परोपकार मे ही मनुष्य का अपना उपकार निहित है। यह बात प्रत्यक्ष से भी सिद्ध है कि अगर हम दूसरो की भलाई करते है या दूसरो के सुख-दु ख मे काम आते हैं, तो वे भी समय पर हमारे काम आते हैं। मान लीजिये, दो मनुष्य है। दोनो एक वर्ष मे एक महीना बीमार पडते हैं और ग्यारह महीने स्वस्थ रहते हैं। अगर वे बीमारी मे एक-दूसरे की सेवा नही करेंगे, तो उनकी बीमारी का एक महीना ही उनके ग्यारह महीनो के सुख से दुगुना दुखदायी हो जायगा। मान लीजिये, वे ग्यारह महीनो मे १०० औंस प्रतिमास के हिसाब से ११००

औंस सुख प्राप्त करते है, लेकिन वीमारी के एक मास मे ही वे २२०० औंस दु ख मालूम करने लगते हैं। अब हम साल भर के सुख-दु ख का हिसाब लगावे, तो अन्त मे २२०० औंस दु ख में से ११०० औंस सुख के निकाल देने पर ग्यारहसौ औंस दु ख ही शेष रहेगा। अब बतलाइये, साल भर मे कितना सुख उन्होने जोड़ा ? कुछ नही, उल्टा दु ख ही बढाया। इसके विपरीत अगर वे वीमार दशा मे एक-दूसरे की मदद करते हैं, चौबीसो घटे बीमार के पास रहते हैं और उसका दु:ख भुलाने का प्रयत्न करते है, दवा पिलाते हैं, समय पर खाना बना कर देते हैं, तो इससे बीमार पुरुष को २०० औंस शारीरिक दु ख ही प्रतीत होता है। दो हजार औंस दु ख जो कि पहले एक दूसरे की मदद नही करने से अधिक होता था, वह अब सेवा करने से चला जाता है। इस तरह अब उन्हे २०० औंस दु ख ही उठाना पडता है, जब कि सुख ग्यारहसौ औंस। साल भर के अन्त मे इस प्रकार वे नौ-सौ औंस सुख की बचत कर सकते है। अत अगर विवेक पूर्ण दृष्टि से सोचे, तो अपना स्वार्थ दूसरो की सेवा करने मे ही निहित है। इसलिये, परोपकार करते समय हम दूसरे का हित नही करते है, बल्कि हम अपना ही हित करते हैं।

अमेरिका के प्रेसिडेन्ट इब्राहिमलिंकन एक दिन पार्लिया-मेंट मे जा रहे थे। चलते-चलते उन्होने एक सूअर को कीचड मे फँसा हुआ देखा। कोशिश करने पर भी उससे निकला नही जा रहा था। प्रेसिडेन्ट ने अपनी मोटर रुकवाई और खुद उतर कर उस सूअर को कीचड़ से निकाल बाहर किया। कीचड मे जाने मे उनके कपडे खराब हो गये थे, लेकिन वे

उन्ही कपडो से पार्लियामेंट मे गये। जब पार्लियामेंट के अन्य सदस्यो ने उन्हे इस हालत मे देखा तो वे सब आश्चर्य मे पड़ गये। अन्त मे जब मोटर ड्राइवर ने उन्हे सब बात बताई तो सब लोग उनकी बडी तारीफ़ करने लगे। तब प्रेसिडेन्ट ने उनसे कहा—"इसमे मैने उस सूअर का दु ख दूर नही किया है, अपितु, मैने अपना दु ख ही दूर किया है, जो कि उसको देखने से पैदा हुआ था।"

बन्धुओ, सेवा का कैसा ऊँचा आदर्श हमारे सामने पेश किया है? आपके पास अधिक पैसा हो और दूसरे को उसकी जरूरत हो तो आपको भी उसे देकर अपना भार हल्का कर लेना चाहिये। मनुष्य पहले दर्जे की मुसाफिरी न कर तीसरे दर्जे की करे और बचा हुआ पैसा गरीब को बाट दे, तो जीवन मे कैसा आनन्द आजाय? हाथी के भोजन मे से यदि एक कौर अन्न नीचे गिर जाय तो हजारों चीटियाँ अपना पेट भर सकती हैं। श्रीमन्तों का जीवन भी हाथी जैसा ही है। हर सप्ताह सिनेमा जाकर जो ५० रुपयो का पानी कर देते हैं अगर वे ही रुपये किसी गरीब लडके को पढने के लिये दे दे तो कितना आनन्द मानव को हो जाय! बहिने रेशमी जौर-जेट की साडियाँ पहिन कर सौ-दो सौ रुपयो का पानी कर देती हैं, यदि उनके बजाय वे खादी की साड़िया पहिने और बचे हुए रुपये अनाथ बालिकाओ को दे दे, तो कितना अच्छा हो जाय! बहिनो को गहने पहनने का बडा शौक होता है। लेकिन यह भी अच्छी आदत नही है। प्रकृति ने जब उन्हे स्वाभाविक सौन्दर्य प्रदान किया है तो फिर उन्हे कृत्रिम सौंदर्य से क्या लाभ? अगर वे गहनो का मोह छोड दें तो कितना

रुपया बच सकता है? गांधीजी ने एक बार कहा था—गहने बनाकर तिजोरी में रखना समुद्र मे डालने जैसे है, समुद्र में डाल देने पर उसका कोई उपयोग नही हो सकता है, वैसे ही तिजोरी मे बंद रखने से भी नही होता है।

बन्धुओ, हमे मानव शरीर मिला है तो दूसरों की सेवा के लिये ही मिला है। दूसरो का कल्याण करने के लिये अगर फाँसी पर भी लटकना पड़े तो आना-कानी नही करनी चाहिये। तभी हम भगवान् महावीर के सच्चे उपासक कहे जा सकेंगे।

पैलिस्टाइन मे भगवान् महावीर और बुद्ध से भी २०० पूर्व जरनिया नाम का एक शान्तिवादी पुरुष हो गया है। वह यह मानता था कि सच्चा यज्ञ किसी के संहार मे या घात में नही है। वह तो अहिंसा और दया मे ही है। भगवान् महावीर और बुद्ध ने भी यही बात कही है, लेकिन शान्ति-वादी जरनिया ने इनसे भी दो सौ वर्ष पूर्व यही उपदेश पेलेस्टाइन में दिया था।

हर समय ऐसा तो होता ही है कि हिंसा और अहिंसा, मोह और त्याग, सुख और दु ख पुण्य और पाप दोनो साथ ही रहते हैं। इस समय भी आज गहनो का मोह है, वैसे उस समय भी मनुष्यों को था। छल, कपट आदि उस समय भी मौजूद थे। जरनिया को यह सब देखकर बड़ा दु ख होता था। वह एक धर्म-गुरु का लड़का था। अतः एक मन्दिर मे रहा करता था। उस समय मन्दिरो मे धार्मिक उत्सव हुआ करते थे। एक दिन उसके मन्दिर मे ही धार्मिक उत्सव था और सब लोग, जिनमे राजे-महाराजे और बडे-बडे श्रीमन्त भी थे इकट्ठे

हुए थे। जरनिया भी घूमते-घूमते वहाँ आ गया। जब उसने अपने यहाँ इन सब को इकट्ठे हुए देखा तो उसके दिल मे उथल-पुथल होने लगी। उसने उन सब मनुष्यो को लक्ष्य करके चिल्ला-चिल्ला कर कहा—ऐ मनुष्यो! तुम्हारे जैसे चोर, लुटेरे, खूनी और व्यभिचारियो को यहाँ आने की जरूरत नही है!! यह मन्दिर तो पवित्रता की खान है, इसलिये यहाँ वही पुरुष आ सकता है जो पवित्र हो। तुम्हारे जैसे अपवित्र पुरुषों के लिये यहाँ स्थान नही है।

जैसे जरनिया ने अपवित्र लोगों को मन्दिर मे आने से मना किया था वैसे अपवित्र पुरुष हमारे स्थानक मे तो कोई नही आते है? क्या आप चोर, लुटेरों मे से तो नही हैं? मै तो अपने मुँह से आपको ऐसा कहना नही चाहती, लेकिन यह कहना अवश्य चाहती हूँ कि मनुष्य को अपनी आजीविका कैसे चलानी चाहिये?

मनुष्य को अपनी आजीविका चलाने के लिये तीन मार्ग है—पहला भिक्षा माँग कर, दूसरा व्यापार के द्वारा और तीसरा चोरी करके।

भिक्षा—जो साधु अपने जीवन का बलिदान कर अधिक से अधिक दुनिया को देता है और बदले मे कम से कम लेता है, वही सच्चा साधु है और वही भिक्षा मांग कर खाने का भी हकदार है। आज जो ७२ लाख साधु हिन्द की भूमि पर अपना जाल बिछाये हैं, भिक्षा मांग कर खारहे हैं। वस्तुतः उन्हे भिक्षा माग कर खाने का हक नही है। ऐसे दिखावटी साधुओं मे असली साधु कुछ विरले ही होते हैं। भिक्षा वृत्ति से गुज़ारा करने वालों में तो ऊँचे से ऊँचे ऐसे समाज-सेवकों

का नम्बर आता है, जिनका जीवन ही दूसरों के लिये न्यौछावर होता है।

दूसरा उपाय है व्यापार—यानी अपनी मेहनत से पैसा कमाना और उसमे से कुछ समाज को भी दे देना। आप सब लोग व्यापार करते है, लेकिन आपका व्यापार कोई व्यापार थोडे ही है। वह तो एक तरह की चोरी ही है। व्यापार का अर्थ है नव-सर्जन करना। भला, आप अपने व्यापार से क्या नव-सर्जन करते है? अगर कुछ नही करते हैं तो फिर आपका व्यापार व्यापार नहीं कहा जा सकता है।

तीसरा उपाय है चोरी—मनुष्य जब बिना कुछ नव-सर्जन किये ही दूसरे की चीजों को छीन लेता है तो उसे चोरी कहते है। अब जरा देखिये कि आपका जीवन किस विभाग मे आता है? अगर आप नव-सर्जन न कर दूसरे की चीज़ को छीन लेते है तो यह चोरी ही है, और ऐसा करने वाले चोर ही हैं। हम त्यागी साधु भी अगर समाज को कुछ दिये बिना या समाज की कुछ सेवा किये बिना ही भिक्षा लेते है तो हमारा नम्बर भी आपके साथ रहेगा, यानी तीसरे साधन मे ही आवेगा। साधु लोग भी अगर अपनी साधुवृत्ति को समझे बिना मजे मे भांग-गांजा पीते रहे और चरस तथा तमाखू का धूआँ उडाते रहे तो क्या वह चोर नहीं कहे जावेगे? रोम्या रौलाँ ने कहा है—

The less I have, the more I am.

'मेरे पास जितना ही अभाव हैं, उतना ही मै सम्पन्न हूँ।' अर्थात्—मनुष्य के पास जितनी सम्पत्ति—जड वस्तु कम होगी, उसे उतना ही आगे बढा हुआ समझना चाहिये।'

जरनिया ने जब सबसे कहा कि "आप सब बडे-बडे राजे-महाराजे, सेठ-श्रीमन्त लोग हैं, लेकिन आपकी काली करतूतो के साक्षी तो मन्दिर के बाहर बैठे हुए अनाथ बाल-बच्चे है, जिनके तन पर न वस्त्र है और न पेट भरने को रोटी का एक टुकडा ही है। तुमने इतना पैसा कहाँ से इकठ्ठा किया ? चोरी कर, इन गरीबो को लूट कर और उनका खून करके ही तो तुमने इतना पैसा इकट्ठा किया है ? इसलिये निकल जाओ मेरे इस मन्दिर से ! तुम्हारे जैसे खूनियो के लिये और तुम्हारे जैसे चोर उचक्को के लिये मेरा यह मन्दिर नही है।" जरनिये ने जैसा कहा, सच कहा था। वैसा ही आज हमको कहना है। लेकिन कहे कौन ? कहने की ताकत भी तो होनी चाहिये। अत ऐसा कहने से पूर्व मनुष्य को अपनी आत्म-शुद्धि कर लेनी चाहिये। तभी वह यह कह सकता है या कहने का अधिकारी बन सकता है।

हिन्दुओ में तेतीस करोड देवता होते है, लेकिन जब तक अपने मे विश्वास न हो तब तक उन तेतीस करोड देवताओ को मानने से भी क्या लाभ हो सकता है ? अत मनुष्य को अपनी श्रद्धा दृढ बनानी चाहिये, विश्वास पर कायम रहना चाहिये। भगवान् महावीर ने कहा है—'सद्धा परम दुल्लहा' श्रद्धा बडी दुर्लभ है। लेकिन आज हमे भगवान् की वाणी पर भी तिल भर विश्वास नही है। उन्होने तो हमसे साफ-साफ कहा है कि यदि तुम्हारे शुभ कर्मों का उदय है तो तुम्हे तिल भर भी कोई दुःख नही पहुँचा सकता, लेकिन यदि अशुभ कर्मों का उदय है तो इन्द्र भी तुम्हे सुखी नही कर सकता। क्या हमे इस वाणी पर विश्वास है। आज तो हमे शैतान का

विश्वास हो गया है, पैसे रूपी शैतान से हम सुख की इच्छा रखते हैं, धर्म रूपी देव से नही।

जरनिया ने कहा—'चले जाओ इस मन्दिर से ! तुम सब शैतान की फौज हो !' इसे सुनकर राजे महाराजे और श्रीमन्त लोग तो घबराये ही, साथ ही धर्म गुरु भी घबरा गये। क्योंकि धर्म गुरु भी तो अपना कर्तव्य भूल कर श्रीमन्तो को खुश करने मे ही अपना कर्तव्य समझ बैठे थे। बन्धुओ, आज भगवान् महावीर भी यदि हमारे धर्म-स्थानक मे आवे और कहे कि जो पैसा इकट्ठा करके आगेवान बने हैं, वे आगेवान नही हैं, ऐसे लोग निकल जावें स्थानक से, तो क्या आप उस महावीर का आदर करेंगे ? कहीं आप यह तो नही कहेगे कि हमे ऐसा महावीर नही चाहिये।

जरनिया की बात सच्ची थी, जिसे सुनकर धर्म गुरुओ और राजाओ में खलबली मच गई। धर्म गुरू ने जरनिया को मारने के लिये ज़हर भी पिलाया, लेकिन 'जाको राखे साइयां' उसको कौन मार सकता है ? जरनिया ज़हर पीकर भी बच गया। स्वामी रामतीर्थ ने लिखा है—एक दिन एक राजा ने एक मनुष्य को क़ैद किया और कहा—तू मुझे हाथ जोड़। मनुष्य ने कहा—मैं तुम्हें अपने हाथ नही जोड़ सकता। राजा ने कहा—मैं तुझे मार डालूंगा। मनुष्य ने कहा—भले ही मार डालो, लेकिन तुम मेरी आत्मा को नही मार सकते। गीता में कहा है—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावक.।

'तुम मेरे शरीर को जला सकते हो, काट सकते हो, लेकिन मेरी आत्मा को नही मार सकते।' बन्धुओं, यही बात आज

हमें भी पूरी-पूरी मान लेनी चाहिये। ऐसी दृढ श्रद्धा जरनिया को भी थी। वह ज़हर दिये जाने पर भी नही मरा और सारे देश मे घूम-घूम कर अपनी वातो का प्रचार करने लगा।

दूसरी वार जब पैलिस्टाइन मे उत्सव हुआ तो वह वहाँ एक मिट्टी का घड़ा लेकर गया और जहाँ सब लोग इकट्ठे हुए थे वहाँ जाकर उसे फोड़ दिया। घड़े के फूटने से जब लोगो का ध्यान उसकी तरफ आकर्षित हुआ तो उसने कहा—'लोगो, अब भी चेतना चाहो तो चेतो, नहीं तो तुम्हारी हालत भी घड़े जैसी ही होगी।' राजा ने उसे पागल समझ कर क़ैद कर लिया लेकिन कुछ समय वाद उसे पुन. छोड़ दिया गया।

कुछ दिनो बाद जब पेलेस्टाइन ने बेबीलोन से युद्ध करना चाहा तो जरनियाँ ने इसका घोर विरोध किया। उसने घूम-घूम कर लोगो को समझाया कि "दुनिया मे तलवार नही होनी चाहिये, दुनियाँ मे बंदूक नही होनी चाहिये, होनी चाहिये अहिंसा और प्रेम की पावन वृत्ति।" लड़ाई करनेवाले भला इस उपदेश को कैसे सह सकते थे? उन्होंने जरनिया को एक अंधेरें कुँए मे बन्द कर दिया। आखिरकार पैलिस्टाइन और बेबीलोम मे युद्ध हुआ और पैलिस्टाइन की हार होने लगी, तब जरनिया ने पुनः राजा से कहा कि "अब भी तुम सन्धि कर लो और शान्ति का मार्ग खोजो।" राजा ने उसे कीचड़ मे फेंकते हुए कहा—"नालायक, तेरे कहने से ही हम हार रहे हैं।" जरनिया वहाँ से भी बच निकलता है। लेकिन अन्त मे पेलेस्टाइन हार जाता है और राजा के सामने ही उसके परिवार को कत्ल कर दिया जाता है। वेवीलोन के राजा ने जब जरनिया के विचार सुने तो उसने जरनिया को बुलाया और किसी बड़े पद पर नियुक्त

करने को कहा। जरनिया ने कहा— राजन्, मुझे तुम्हारे जैसे खूनियो के यहाँ रह कर उच्च पद पर बैठने का मोह नहीं है। इस तरह वह अपने मत का प्रचार करता रहा। बन्धुओ, आज के अणु-बम के जमाने मे भी जरनिया का उपदेश कितना महत्त्व-पूर्ण है? आज के ज़माने मे भी हमे उसके उपदेश का आचरण करना चाहिये।

आज के जमाने मे मनुष्य साध्य को भूल कर साधन को ही साध्य मान बैठा है। बम्बई के जैन युवक-सघ ने जब टेन्डुलकर कमेटी के सामने यह कहा कि देव-द्रव्य का उपयोग समाज के अन्य कार्यों के लिये भी होना चाहिये तो इस पर कुछ लोगो ने कहा कि ऐसा कहने वालो को जैन-समाज से ही निकाल फेंकना चाहिये। यह कैसी विचित्र बात है? अरे बाहर निकालने वालो, जरा यह तो सोचो कि तुम कितने समाज के अन्दर हो? जो भला खुद ही जैन-सघ मे रहने लायक न हो वह दूसरों को बाहर निकालने का क्या हकदार है?

मनुष्य अपने कर्त्तव्यो की तरफ सतत जागृत रहें, जरनिया की तरह स्पष्ट विचारों वाला बने और अपना जीवन अगरवत्ती जैसा बनावे तो वह अपने जीवन को सार्थक कर सकता है।

२५ जुलाई १९४९

चरित्र को निर्मल बनाइए

हिन्दू धर्म सृष्टि को ईश्वर की बनाई हुई कहता है और उसकी मान्यतानुसार एक ऐसी कथा है कि जब ईश्वर ने सारी सृष्टि बनाई तब उसने किसी भी वस्तु की कमी नहीं रहने दी। मनुष्य को जो चाहिये था, वह सब उसने उत्पन्न किया। उत्पन्न की हुई वस्तुओं को क्या-क्या करना है यह समझाते हुए उसने सब वस्तुओं को अपना-अपना काम बताया। उसने नदियों को कहा—"तुमको निरन्तर बहते ही रहना चाहिये। तुम्हारा काम अपने आस-पास की भूमि को हरी और उपयोगी करना है। पानी पीने वाला भले ही तुम्हारा पानी गन्दा कर जाय, पर तुम्हें उसको पानी पिलाते रहना चाहिये।" सृष्टि कर्तृत्व की कल्पना भले ही झूठी हो, लेकिन नदियों का जो स्वभाव है या उन्हें जो प्रकृति ने या ईश्वर ने आदेश दिया है उसका उल्लंघन उन्होंने आज तक नहीं किया। वे बराबर ईश्वर की आज्ञा का पालन करती हुई अविराम गति से बह ही रही हैं।

ईश्वर ने समुद्र को आज्ञा देते हुए कहा—"तू अपनी मर्यादा का उल्लंघन मत करना" आज हम देखते हैं कि समुद्र इस आज्ञा का कैसा पालन कर रहा है? वह कभी अपनी मर्यादा

नही छोडता है। अगर वह ईश्वर की इस आज्ञा का उल्लंघन करदे और मर्यादा को छोड़ दे तो सृष्टि में प्रलय मच जाय। लेकिन वह अपनी प्रतिज्ञा पर आरुढ़ है।

ईश्वर ने सूर्य को कहा—"तू तपा कर और दुनिया को प्रकाश दिया कर।" सूर्य मनुष्यो को गरमी और प्रकाश देकर दुतरफी सेवा करता है अगर वह गरमी न दे तो क्या हम अपनी गंदगी सुखा सकेंगे? ईश्वर ने उसको जो आज्ञा दी है उसका वह तिल भर भी उल्लंघन नही करता है। रोज़ सुबह ठीक समय वह तो उदित हो ही जाता है।

आकाश के तारो से कहा—तुम रात को चमका करो। झाड़ से कहा—तुम तपे हुए मनुष्यों को छाया प्रदान करो फूल से कहा—तुम मीठी-मीठी सुगन्ध देना। फल से कहा—तुम मनुष्यो की भूख शान्त करना। इस प्रकार उसने जिस-जिस को आदेश दिया वे सब अपनी-अपनी आज्ञा का पालन कर रहे हैं। आप झाड़ पर पत्थर फेकें लेकिन वह तो आपको सुहावनी छाया ही देगा। पत्थर के वदले फल ही देगा। ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन कभी नही करेगा। उसने मनुष्य को आदेश देते हुए कहा—"तू मेरा स्मरण करना और अपने चरित्र को पवित्र रखना" अब विचारना यह है कि दुनिया के कितने मनुष्यों ने इस आदेश का पालन किया और उल्लंघन कितनो ने किया? ये जड़ वस्तुएँ भी जब अपना स्वभाव नही छोड़ती, तव मनुष्य नाम का समझदार प्राणी अपने स्वभाव को क्यो छोडे? मनुष्य अगर ईश्वर की आज्ञा का पालन करे तो वह सर्वोत्कृष्ट प्राणी है। लेकिन यदि वह उसका उल्लंघन करे तो उससे हीन भी दूसरा कोई नहीं है। मनुष्य को सोचना यह है

कि 'मेरा धर्म क्या है ?' ईश्वर ने उससे कहा है–तू मेरा स्मरण करना और अपने चरित्र को निर्मल रखना।

मनुष्य संडास जाने मे, स्नान करने मे, चाय पीने मे और रेडियो सुनने मे जितना समय देता है, उतना समय क्या वह ईश-स्मरण मे भी देता है ? अधिक तो जाने दीजिये, क्या वह संडास जाने मे जितना भी समय देता है ? दिवस मे क्या वह पाव घंटा भी स्थिर बैठ कर यह सोचता है कि मेरा कर्तव्य क्या है ? और नही सोचता है तो वह ईश्वर का गुनाह करता है न ? उसे कुछ समय के लिये अवश्य स्थिर होकर ईश-स्मरण करना चाहिये।

ईश्वर ने दूसरी आज्ञा दी–,तू अपने चारित्र को निर्मल रख।' हम जो-जो अच्छा देखे और सुने उसे अपने जीवन मे उतार ले, यही चारित्र का सीधा सा मतलब यहाँ लेना चाहिये। गृहस्थ का भी चारित्र है और साधु का भी, जिसे भगवान् महावीर ने आगार धर्म और अनगार धर्म के नाम से कहा है। लेकिन हमने तो आज चारित्र का मतलब ही दूसरा समझ रखा है। कुछ नही करना और चुपचाप बैठे रहना, इसी को चारित्र समझ लिया है जो कि बिल्कुल गलत है। अमुक तरह के कपडे पहन कर अमुक सम्प्रदाय मे दीक्षित हो जाना भी चारित्र का मतलब नही है। चारित्र का मतलब है अहिंसा और सत्य का पालन करना। गृहस्थ का चारित्र यह है कि उसे प्रामाणिक रूप से अपनी आजीवका करनी चाहिये। किसी को सताना नहीं चाहिये। आजीविका-शुद्धि के अभाव मे दूसरी सब शुद्धियाँ नही हो सकेगी। क्योंकि आजीविका-शुद्धि से ही आहार-शुद्धि होती है और आहार-

शुद्धि से चित और मन की शुद्धि होती है।

एक गृहस्थ था, जो हीरा-जवाहरात का धधा करता था। किसी दिन मनुष्य की स्थिति अच्छी होती है तो किसी दिन खराब भी हो जाती है। क्योकि रात के बाद दिन और दिन के बाद रात तो आती ही हैं। अत मनुष्य को दु ख से घबराना और सुख से प्रसन्न नही होना चाहिये। लेकिन दोनो ही अवस्था मे समभाव रखना चाहिये। गीता मे स्थितप्रज्ञ का लक्षण बताते हुए कहा है—

दु खेष्वनुद्विग्नमना सुखेषु विगतस्पृह.।
वीतरागभयक्रोध स्थित–धीर्मुनि रुच्यते ॥

'दुःख मे जो मन को उद्विग्न नहीं होने देता और सुख में मोह नही करता है तथा जिसका राग-द्वेष चला गया है उसको ही सच्चा मुनि कहना चाहिये।' अत मनुष्य के जीवन मे कठिन से कठिन समय भी क्यो नही आवे, वह उसे क्षणिक समझ कर सहन करे, घबरावे नही। अच्छी से अच्छी हालत मे भी अगर वह हो तो उसे भी क्षणिक समझे और अधिक से अधिक उस स्थिति से लाभ उठाये। मनुष्य को सुख और दु ख मे हँसना और मुरझाना नही चाहिये।

उस गृहस्थ का धधा भी बहुत चलता था, लेकिन दुर्भाग्य मे उसके भी बुरे दिन आये और एक दिन उसे बहुत नुकसान उठाना पडा। सेठ के घर मे उसकी पत्नी और एक लडका था, जिसका नाम था नवीन। व्यापार में घाटा होने से सेठ को बहुत चोट पहुँची और उसका हार्टफेल हो गया। मरने से पहले सेठ ने अपनी पत्नी को एक नीलम देकर कहा था—यह नीलम है, इसे सभाल कर रखना और जरूरत हो तब काम में

लाना । सेठ के गुजर जाने पर जब उसके घर का खर्च भी मुश्किल से चलने लगा तो एक दिन सेठ की पत्नी ने अपना नीलम देते हुए अपने पुत्र नवीन से कहा—बेटा, यह लेकर तू अपनी पेढी पर जा और अपने मुनीम प्रेमचन्दजी से कहना कि मेरी माँ ने यह नीलम बेचने को कहा है। नवीन मुनीम के पास गया और उसे नीलम देते हुए अपनी माँ की बात कह सुनाई। मुनीम नीलम देखकर विचार मे पडा। थोडी देर बाद उसने नवीन से कहा—बाजार के भाव मन्दे हैं, अत अभी इसे बेचना ठीक नही है। लो, यह ले जाओ और अपनी माँ को दे देना। नवीन ने कहा—काका, घर मे तो खाने को नही है। अत. जिस भाव भी बिके इसे बेच दीजिये। तब मुनीम ने कहा—तुम दुकान से पाँच-सौ रुपये ले जाओ और अपने घर का काम चलाओ। लेकिन कल से अब तुम्हे रोज-रोज अपनी दुकान पर आकर बैठना चाहिये। नवीन ने कहा—काका, मै कुछ समझता तो हूँ नही, फिर आने से क्या लाभ होगा ? मुनीम ने कहा—मै भी जब आया था, तब तुम्हारी ही तरह कुछ नही समझता था। लेकिन तुम्हारे पिताजी की कृपा से सब कुछ समझने लग गया। तुम्हारे पिता जी आज नही रहे है, पर यह दुकान अपनी ही समझो और रोज-रोज यहाँ आकर बैठा करो। नवीन अब रोज-रोज दुकान पर जाने लगा। धीरे-धीरे उसकी नजर जमती गई और एक दिन ऐसा आया कि प्रेमचन्द ने सारी व्यवस्था ही नवीन को सौप दी। अन्त मे नवीन की स्थिति ऐसी हो गई कि वह पुनः लखपती बन गया।

कुछ दिनो बाद जब नवीन जवाहरात का पारखी हो गया

तब प्रेमचन्द मुनीम ने उससे कहा—नवीन, अब बाजार के भाव कुछ ठीक हैं, इसलिए अपना वह नीलम जिसे तुमने मुझे पहले लाकर दिया था, बेचा जा सकता है। नवीन ने नौकर को भेज कर वह नीलम मँगाया और उसे मुनीम को दिया। प्रेमचन्द ने उसे देखकर नवीन से कहा—इसकी जाँच करो, यह नीलम कितने रुपयो का है ? नवीन ने उसे देखा तो देखकर नीचे फेक दिया और मुनीम से कहा—काका, यह तो काँच का टुकडा है ! मुनीम ने कहा—बेटा, मैंने तो उसी दिन इसे काँच का टुकडा समझ लिया था, लेकिन अगर मै उसी दिन तुम्हे काँच का टुकड़ा कह देता, तो तुम्हारा विश्वास मुझ पर नही रहता। वे दिन ही ऐसे थे, कि जब तुम मेरी बात का भरोसा नही करते। लेकिन आज, जब तुम जौहरी बन गये हो तो, नीलम और काँच की पहचान कर सकते हो।

बन्धुओ ! मनुष्य भी अपनी क्षणिक (अस्थिर) वस्तुओ के मोह मे आकर उन्हे नीलम की तरह समझ लेता है, लेकिन जब वे उसे काँच की तरह दिखलाई देने लग जाती है, तो यह भी उन्हे फेंक देता है। भगवान् महावीर और बुद्ध ने ऐसा ही किया था।

मुनीम ने अपनी प्रामाणिकता और अपने कर्त्तव्य का पालन किया, तो सेठ के लडके का जीवन सुधार दिया। उसी तरह मनुष्य भी अगर अपना कर्त्तव्य समझे और अपनी भूलो को सुधारे, तो वह भी कुछ उन्नति कर सकता है। लेकिन जब मनुष्य अपने हिताहित को भूल जाता है, तो वह दुनिया के भौतिक पदार्थो को भी नीलम की तरह समझ बैठता है। हमारी स्थिति तो ऐसी है, कि हम आज एक आने मे भी अपना सत्य बेच देते हैं। ऐसी शोचनीय स्थिति आज हमारी हो गई

है कि एक आने के खातिर भी सत्य को बेचकर- नीलम को बेचकर-काच का टुकड़ा लेने मे नही हिचकिचाते हैं ? अत मनुष्य को अगर मानव बने रहना है तो उसको ईश्वर ने जो आदेश दिया है --तू अपना चारित्र पवित्र रख--इसका पालन करना चाहिये। काम, क्रोध, मद, लोभ की चाडाल चौकडी को वश मे करना ही चारित्र का आचरण करना है और यही चारित्र साधुओ के लिये भी है। मेरु के समान रजोहरण और मुंहपति के ढेर भी क्यो न कर दिये जायँ, पर जब तक कषाय की मात्राओ को कम नही किया जाय, उसका कोई महत्त्व नही है। अत. कषायादि मात्राओ को कम करना ही चारित्र है। और इसी का खरा महत्त्व भी है।

प्रामाणिकता मे भी लोभ कषायादि की मात्रा कम करनी पडती है। बिना लोभादि कषायो को छोड़े प्रामाणिकता नही आसकती है। अत इसे हमने चारित्र का मूल पाया माना है और इसी कारण इस पर अधिक ज़ोर दिया गया है।

चारित्र के अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच मूल अग हैं। सबसे पहला अग है अहिसा। किसी की भी हिंसा नही करना, अहिंसा है। लेकिन मनुष्य का हर एक काम हिसा के बिना नही होता है। खाने मे, पीने मे, बैठने मे, चलने मे, इत्यादि सब जगह हिंसा तो होती ही है। तब फिर अहिंसा का पालन कैसे हो सकता है यह एक सवाल खडा हो जाता है। अग्रेजी मे भी कहा है---Living is-killing जीने के लिए सहार करना पडता है।

और सस्कृत मे कहा है "जीवो जीवस्य जीवनम्"---जीव, जीव का जीवन है, अर्थात् भोजन है। और यह

सच भी है। अनाज के जीवों को खाकर ही मनुष्य जीता है। इसी को (Living is killing) जीना, मारना है' कहा है। अगर हम ऐसा ही समझ कर बैठे रहे तो फिर हम अहिंसा का पालन कैसे कर सकेंगे ? अत हमें विवेक से सोचना चाहिये कि Killing least is Living best अर्थात् कम हिंसा करना ही अधिक से अधिक जीवन को अहिंसामय बनाना है। आप अल्पारम्भ से तो नही बच सकते है, लेकिन महारभ से तो बच सकते हैं ? आप मील के कपडे पहनते हैं, लेकिन उनको छोडकर खादी के कपडे पहनते है, और इसी तरह अहिंसामय जीवन यापन कर सकते हैं, यानी महारभ से अल्पारभ की ओर प्रवृत्ति कर सकते है। आपका जीवन भी इसी मार्ग पर चलना चाहिये। भगवान् महावीर ने कहा है—महारम्भी और महापरिग्रही को कभी भी धर्म का स्पर्श नही हो सकता है। आज के मिल मालिक महारभी और महापरिग्रही है अत हजार प्रयत्न भी क्यो न करे, उन्हे धर्म कभी स्पर्श भी नही कर सकता। एक भाई ने पूछा कि भगवान् महावीर के समय मे खादी कब थी ? मैंने कहा—उस समय तो खादी ही सब लोग पहनते थे, मिल के कपडे तो थे ही नही। अत. मनुष्य को अल्पारभी होकर अपना जीवन उन्नत बनाना चाहिये।

मनुष्य अपने पैरो की रक्षा के लिये जूते पहनते हैं, लेकिन क्या आपने जूते पहनते समय यह भी सोचा है कि वे जूते मरे हुए प्राणियो के चमडे के हैं या ज़िन्दे प्राणियो को मारकर बनाये गये है। ग्रह-उद्योग की सब चीजे मरे हुए प्राणियो की बनाई जाती हैं लेकिन जो वस्तुए जीवित प्राणियो को मार

कर बनाई जाती हैं उनमें और ग्रह-उद्योग की चीज़ों मे कितना अन्तर होता है ? ग्रह-उद्योग की चीजे अल्पारभी होती है जब कि दूसरी सब चीजे महारभी होती है। अत मनुष्य को हर एक चीज का उपयोग करने से पहले अल्पारभ और महारभ का बिचार अवश्य करना चाहिये। इसीलिये ईश्वर ने प्रारभ मे ही मनुष्य को आदेश दिया कि "तू मेरा स्मरण करना और अपने चरित्र को निर्मल रखना" लेकिन मनुष्य ने और सब कुछ किया, पर इन दो बातो का पालन नही किया। अब बताइये, उसे ईश्वर-भक्त कहा जाय या और कुछ ?

मनुष्य का चारित्र अहिसा के पाये पर खडा हुआ है, अत मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अहिसा का पालन करे और अपने विकारो को त्याग कर जीवन का उत्थान करे। उसका प्रथम और चरम लक्ष्य तो यह होना चाहिये कि उसे जो ईश्वरीय तत्त्व प्राप्त है उसका पालन करते हुए वह अपने मानव जीवन को सफल करले।

२६ जुलाई, १९४९

७

अहिंसा

मनुष्य मे दूसरे प्राणियो की अपेक्षा प्रज्ञा की विशेषता है। बुद्धि दूसरे प्राणियो मे भी होती है, लेकिन मनुष्य मे जो प्रज्ञा होती है, जिससे कि वह अपने ज्ञान मे बृद्धि करता है, इसका पशुओ मे अभाव होता है। पचास वर्ष पूर्व हाथी जैसे जगल मे झुण्ड बनाकर रहते थे, वैसे आज भी रहते है। पक्षी जिस तरह पहले घोसले बनाते थे, वैसे आज भी बनाते हैं। लेकिन अपने पूर्व अनुभवो से आगे बढने की शक्ति पशु अथवा पक्षियो मे नही है। यह शक्ति मानव मे है, जिसे कि हम प्रज्ञा कहते है। लेकिन जैसे-जैसे मनुष्य की प्रज्ञा बढती जाय, वैसे-वैसे उसी परिणाम मे यदि अहिसा न बढे तो वह प्रज्ञा नारक के बदले मारक (नाशक) बन जाती है। उद्धारक के बदले घातक सिद्ध होती है। विज्ञान आज बहुत बढा है, लेकिन उसके साथ अहिसा नही बढी। अत आज वह उद्धारक के बजाय सहारक बन गया है। अगर उसमे अहिसा या दया का भी सवर्द्धन होता तो वह आज सहारक के बजाय सरक्षक होता है।

अहिसा चारित्र का सबसे पहला अग है। अहिसा इतनी व्यापक चीज़ है कि उसे सर्व प्रथम स्थान मिला है। पापो मे जैसे हिसा सबसे खराब कही गई है वैसे चारित्र मे अहिसा

सबसे अच्छी मानी गई है। अहिसा का सीधा सा अर्थ हम यह करते है कि किसी भी प्राणी का बध नही करना। जीना सबको प्रिय है और मरना कोई नही चाहता, अत किसी का घात नही करना चाहिये। घात से मतलब किसी प्राणी को जान से मार डालना ही नही है, लेकिन किसी काम से अगर दूसरो को दु ख होना हो तो वह भी हिंसा ही है। अहिंसा का हमारे देश मे ही नही, विदेशो में भी बहुत प्रचार था। ग्रीस मे भगवान् महावीर से पहले भी जेनो नामक एक ऐसे तत्ववेत्ता हो गये हैं, जो अपने शरीर मे कीडे पड जाने पर भी मरने के भय मे उन्हे नही निकालते थे। वे कीडे गिर भी जाते तो वे उन्हे वापिस डाल लेते थे। इस तरह अहिंसा को सभी देशो के धर्मो ने माना है और उसे जीवन मे सर्वोपरिस्थान भी दिया है।

Thou shalt not kill—तू किसी को मारना नही। बाइबिल की दस आज्ञाओ मे से यह एक आज्ञा है। इसी तरह हिन्दू आदि अन्य धर्मों ने भी अहिंसा को माना है। जैसे कि—

"मा हिंस्यात् सर्वभूतानि"

किसी को भी दु ख देना हिंसा है और कष्ट नही देना अहिंसा है। यह अहिसा की बाजू है। आज की दुनियाँ मे मनुष्य पशु-पक्षी की हत्या बचा सकता है, लेकिन वह मनुष्य की रक्षा नही कर सकता। कैसी आश्चर्यजनक बात है? हमारे सामने आये हुए मनुष्य से हम कैसा व्यवहार करते हैं? उससे उसे दु ख होता है या नही? यह विचारणीय बात है। अगर उसे दु ख होता है तो हम अहिंसा के पालन कर्ता नही कहे जा सकते हैं। जो कीडे-मकोडो की दया पालता

है, लेकिन मनुष्य पर दया नही करता है तो उसकी वह अहिंसा रूढि-मात्र अहिसा है। आप आज मास खाना बुरा (पाप) समझते है और उसके लिए यदि कोई एक लाख रुपया भी दे तब भी आप मास नही खायेगे। आप लाख रुपये छोड़ देगे पर मांस का एक टुकडा भी अपने मुँह मे नही लेगे। लेकिन यदि झूँठ बोलने से आपको दो पैसे भी मिलते होगे तो क्या आप झूँठ नही बोलेगे ? मास नही खाना, यह हमारे हृदय मे परम्परा से रूढ सस्कार हो गया है जिसके कारण हम लाख रुपया भी छोड देगे, पर मॉस नही खावेगे, लेकिन भाव-मयी अहिसा के अभाव मे हम दो पैसा लेकर भी झूँठ बोलने को तैयार हो जावेगे। यह कैसी विपरीत स्थिति आज हमारी हो गई है, तनिक विचार तो कीजिये ? अत हमे अपने जीवन मे भाव-अहिसा का पालन करना चाहिये। आज हम चीटी की रक्षा कर सकते है, पर मनुष्य की रक्षा नही कर सकते, जिसकी रक्षा करना ही मनुष्य का प्राथमिक कर्त्तव्य (धर्म) है।

अहिसा के पॉच अतिचार हैं। जिनमे पहला है—बन्ध यानी किसी पशु को बन्धन से बाँधना। लेकिन इससे पूर्व सोचना यह है कि आप अपने नौकर को तो कही बँधा हुआ नही रखते है। एक मनुष्य अपनी गरीबी से आपके यहाँ नौकरी करने आता है, पर उसकी गरीबी का दुरुपयोग करना तो अधर्म ही है। आप उससे ६ घण्टे के बजाय १० घण्टे का काम ले तो यह भी एक तरह का बन्धन ही है। अत केवल पशु को बाँधना ही अतिचार नही है, लेकिन मनुष्य को बाँधने मे भी अतिचार समझना चाहिये।

दूसरा अतिचार है—वध यानी मारना। पशु की तरह मनुष्य

को मारना भी अतिचार है। 'बध' का मतलब वृत्तिच्छेद भी है। वृत्तिच्छेद यानी किसी भी काम से किसी की आजीविका छीनना भी अतिचार है।

आप मील के कपडे पहनते है, लेकिन क्या कभी आपने सोचा भी है कि इससे गृह-उद्योग से काम करने वाले कितने व्यक्तियो का वृत्तिच्छेद होता होगा ? मील का एक ही व्यक्ति १४६ चर्खे पर सूत कातने वालो की रोजी छीन लेता है। मील के बने हुए कपडे पहिनने वाले कहते है कि हम मील के तैयार किये हुए कपडे पहिनते है। चीन के बौद्धो को छोडकर जापान आदि के बौद्ध माँस खाते है। वे अपने हाथ से मार कर तो नही खाते हैं, लेकिन सीधा मिला हुआ खा लेते हैं। कोई उनसे पूछे कि तुम अहिंसक होकर भी माँस कैसे खाते हो ? तब वे उत्तर देते हैं, हम अपने हाथ से किसी को मार कर मास थोड़े ही खाते हैं। हमे तो तैयार मिलता है और वही हम खाते हैं। इसी तरह हमारे भाई भी मील का बना बनाया कपडा ले लेते हैं और यह कहते है कि मील ने हमारे लिये कपडा थोडे ही बनाया है ? लेकिन उनकी यह दलील बिल्कुल निस्सार है। आज साधु भी यही सोच कर मील के कपडे ले लेते है कि यह हमारे लिये थोडे ही बने हैं। लेकिन जैसे बौद्ध लोग यह दलील देते हैं कि हमारे लिये पशुओ को थोडे ही मारा जाता है ? हमे तो तैयार मिलता है और वही हम लेते भी है। क्या हमारी और बौद्धो की दलील मे कुछ अन्तर है ? तनिक गौर से सोचिये तो आपको मालूम होगा कि दोनो की ही दलील बिल्कुल निस्सार है। मास खाने वालो के लिये ही मास और कपडा पहनने वालो के लिये ही कपड़े बनाये जाते हैं। किसी को उल्टा

थोडे ही सूझता है कि किसी को जरूरत न हो तब भी वह चीज़ बनाकर दे। अत बौद्धो का यह कहना कि हमतो बना बनाया मास खाते हैं और हमारा यह कहना कि मील के कपडे हमारे लिये थोडे ही बनते हैं, दोनो ही दोष के पात्र है। अत किसी भी तरह बध के अतिचार से बचना चाहिये।

तीसरा अतिचार है छविच्छेद—यानी किसी के चमडे का छेदन करना। आप यदि बिना किसी कारण के नौकरो की मजदूरी काट लेते हैं या कम कर देते है तो यह भी छविच्छेद नामक अतिचार में सम्मिलित हो जाता है। अत इससे भी मनुष्य को बचना चाहिये।

अतिभार—गाडी मे अधिक भार भरकर पशुओ से खीचावे तो यह अतिभार नामक चौथा अतिचार है। यही अर्थ आप अपने पर भी लागू करिये कि शक्ति से उपरात नौकर से काम लेना अतिभार नामक अतिचार ही है। आज नौकरो की स्थिति तो पशुओ से भी ज्यादा खराब है। तागे का घोडा अगर बीमार हो जाता है तो आप उसको अलग मकान मे रखते हैं और उसकी चिकित्सा करवाते हैं। साईकिल या मोटर के खराब हो जाने पर उसका रिपेअर करवाते है। लेकिन अगर आपका नौकर बीमार हो जाय तो क्या आप उसका इलाज कराते है? अगर नही, तो क्या मनुष्य की कीमत तागे के घोडे से भी कम है? अत इसमे भी अतिभार दोष ही समझना चाहिये।

भत्तपाणविच्छेद—किसी के खाने-पीने मे अन्तराय-बाधा डालना भत्तपाणविच्छेद नामक पाचवा अतिचार है। भूखमरी के समय गरीबो के भोजन मे बाधा डालना और

अपने यहा आवश्यकता से अधिक वस्तु का सचय करना भी इस अतिचार मे ही सम्मिलित है।

किसी को कष्ट नही देना, यह हमारी निषेधात्मक अहिंसा है। दूसरी बाजू विधेयात्मक अहिसा या प्रवृत्यात्मक अहिंसा की है, जिसके बिना अहिंसा पूरी नही होती है। दूसरो को कष्ट देना जैसे हिसा है उसी तरह अपने पास शक्ति साधन होते हुए भी हम दूसरो का कष्ट दूर नही करे तो यह भी हिंसा है। मनुष्य की सेवा करना ही ईश्वर की सेवा करना है। यही पूजा और यही अर्चना है। साक्षात् चैतन्य की पूजा को छोड़ कर जड वस्तु की पूजा करने से क्या लाभ हो सकता है? दूसरों की सेवा करना, यह अहिंसा की दूसरी बाजू है।

भगवान् बुद्ध का एक उपगुप्त नामक शिष्य था। वह विचरते-विचरते एक दिन मथुरा मे आया और भिक्षा लेकर उन मथुरा के जगल मे चला गया। उपगुप्त एक राजा का लडका था, परन्तु बुद्ध के उपदेश से वह साधु बन गया था। रात को जब वह एक पेड के नीचे सोया हुआ था, मथुरा की एक नर्तकी उसके पास से गुजरी। अनजान मे उसके पाव की ठोकर उपगुप्त को लग गई और वह आश्चर्यान्वित हो उसे देखती हुई पश्चात्ताप करने लगी। उपगुप्त की नीद भी खुल गई। उसने जब नर्तकी को पश्चात्ताप करते देखा तो कहा—'बहिन', तू दुखी मत हो, अनजान मे मुझे ठोकर लग गई है, मै तुझे क्षमा करता हूँ।

पृथ्वी पर चाँदनी छिटक रही थी। नर्तकी ने चाँदनी में उसका सुन्दर मुँह देख कर कहा—'तुम वडे सुकमाल हो, तुम्हारा शरीर मिट्टी पर सोने लायक नही है, चलो उठो

और मेरे साथ चलो, मै तुम्हे फूल से बिछौने पर सुलाऊँगी।'

उपगुप्त ने कहा—बहिन! अभी समय नही आया है, जब समय आवेगा तब मै तेरे पास आऊँगा।

नर्तकी चली जाती है और उपगुप्त विचरते-विचरते कई दिनो बाद फिर मथुरा मे आता है। शाम को जब वह भिक्षा से निवृत हो मथुरा के जगल मे आता है तो मार्ग मे उसे एक खाई मे से कराहती हुई व्यक्ति की आवाज सुनाई पडी। उपगुप्त रुक गया और उस खाई मे जाकर देखा तो एक बेभान स्त्री को उसने वहाँ कराहते हुए पाया। उपगुप्त ने उसे बाहर निकाल कर उसकी मूर्छा दूर की। स्त्री की चेतना जागृत हुई। उसने कहा— यह कौन ईश्वर का पुत्र है। जिसने मुझे मौत के मुख से बचाया? उपगुप्त उसके मुख को देख कर जान गया था कि वही नर्तकी है, जिसने एक दिन मुझे अपने साथ चलने को कहा था, लेकिन आज इसके शरीर पर कोढ हो जाने से गाव वालो के द्वारा यह खाई मे फेक दी गई है। नर्तकी ने जब कहा कि यह कौन ईश्वर का पुत्र है? तब उपगुप्त ने कहा-बहिन, मै वही हूँ जिसने तुम्हे एक बार कहा था कि जब उपयुक्त समय होगा तब मै तुम्हारे पास आऊँगा। सयोग से आज वह समय आ गया है और मै तुम्हे मिल गया हूँ।

उपर्युक्त उदाहरण अहिसा की दूसरी बाजू सेवा को प्रकट करता है। रुपये (सिक्के) की दोंनो बाजू साफ हो तो उसे लेने से इन्कार नही करते। लेकिन यदि एक बाजू घिसा हुआ हो तो क्या कोई उसे लेना चाहेगे? इसी तरह अहिसा की दोनों बाजू भी साफ होनी चाहिये।

दीपक प्रकाश करता है लेकिन क्या कभी कहता है

कि मे प्रकाश मान हू । वह तो प्रकाश देता जाता है और यह दिखाता जाता है कि मै प्रकाशमान हूं । समुद्र मे रहने वाली दीवा-दानी कभी अपना ढोल नही पीटती कि मै समुद्रो मे जहाजो को बचाती हू । सब अपना कर्त्तव्य बजाते है । इसी तरह हमे भी अपने जीवन मे अहिसा के आचरण से अहिंसा का प्रकाश प्रकाशित करना चाहिये । केवल जबानी अहिंसक बनने से कोई लाभ नही हो सकता है ।

नेगेटिव और पोजिटिव के मिलने पर ही बिजली बनती है इसी तरह अहिंसा की दोनो बाजू का पालन करने पर ही पूर्ण अहिंसा बनती है दूसरो को दु ख नही देना और उसे सुखी बनाने की चेष्टा करना, इस प्रकार अहिंसा की इन दोनो बाजू का पालन करना ही पूर्ण अहिंसा है ।

एक पाख वाला पक्षी उड नही सकता है । उडने के लिये तो उसे अपनी दोनो पाखे सुरक्षित रखनी होगी । हमारे जीवन मे भी अहिंसा की एक ही पाख हो और दूसरी पॉख टूट गई हो तो क्या हम उड सकेगे ? प्रगति कर सकेगे ? अत प्रगति करने के लिये अहिंसा की दोनो बाजू का पालन करना आवश्यक है । ऐसी पूर्ण अहिंसा का जब हम अपने जीवन मे पालन करेगे तभी हमारा और समाज का कल्याण हो सकेगा ।

रहने वाला कोई न हो तो वह उजाड मालूम देगा। ठीक इसी तरह हमारे जीवन मे भी रुपया पैसा आदि सब कुछ हो, पर सत्य न हो, तो हमारा यह जीवन भी उजाड महल जैसा ही सूना होगा। मुर्दे का चाहे जितना शृगार किया जाय, पर उससे कुछ लाभ थोडे ही हो सकता है। इसी तरह मनुष्य मे सत्य ही न हो तो अन्य सब गुण निस्सार हो जाते हैं।

मनुष्य जब जन्म लेता है तभी वह अपने साथ सत्य का बल लेकर आता है। बच्चा जब पैदा होता है तो जिस प्रकार उसका अपनी माता के साथ सहज ही सम्बन्ध हो जाता है, उसी प्रकार सत्य का भी मनुष्य से स्वाभाविक सम्बन्ध है' जो कि जन्म से ही होता है प्रत्यक्ष मे भी हम देखते है कि बच्चा जब छोटा होता है तब वह सत्य ही बोलता है। वह भूठ बोलना समझता भी नही है। लेकिन मनुष्य जब उसकी सत्यता पर हँसते है तो उनसे वह भूठ बोलना सीख जाता है, वह यह समझ लेता है कि मेरी सच बात पर लोग मेरा उपहास करते हैं। भला उपहास करना किसे अच्छा लगता है ? इसी डर से वह भूठ बोलना सीख जाता है। इससे आप यह भली भाति समझ सकते हैं कि भूठ बोलना सीखना पडता है, सत्य बोलना नही। सत्य बोलना किसी से सीखा नही जाता, वह तो स्वाभाविक ही आता है। इस सत्य का वर्णन करते हुए हमारे प्रश्न व्याकरण सूत्र मे कहा है—

'सच्च खु भगव'—सत्य ही भगवान् है।

महात्माजी ईश्वर को मानते थे। वे कहते थे कि जो ईश्वर पर विश्वास नही रखते हो, वे सत्याग्रह करने का आग्रह न रखें। इस पर किसी ने उनसे पूछा कि जैनी ईश्वर को नही

मानते है, तो क्या वे सत्याग्रह मे भाग नही ले सकते ? तब महात्माजी ने कहा—जो सत्य और अहिंसा को मानते हैं, वे ही ईश्वर को मानते है। ईश्वर सत्य से जुदा नही है। सत्य ही ईश्वर है।

एक बार जब मै महात्माजी से मिली तो मैंने उनसे विदा लेते हुए कहा था—अब तो कुदरत चाहेगी तब आपसे मिलना होगा। इस पर गाधीजी ने कहा था—हाँ, तुम ईश्वर को नही मानते हो, तभी तो ऐसा कहते हो। मैने कहा—हम ईश्वर को तो मानते है, लेकिन उसे सृष्टिकर्ता के रूप मे नही मानते है। तब गाधीजी ने कहा—सत्यनारायण कहेगे तब हम मिलेगे। मैने कहा—हाँ, इस पर मुझे कोई ऐतराज नही है।

गाधीजी सत्य को ही ईश्वर मानते थे और यही बात हमारे सूत्रो मे भी कही गई है कि 'सच्च खु भगव'—सत्य ही भगवान् है।

आज लोग सत्यनारायण की कथा करते है, पर उसका अर्थ नही समझते। जब तक सत्य का आचरण नही किया जायगा तब तक सत्यनारायण को प्रसन्न नही किया जा सकता। अहिंसा का विचार करते हुए हमने कहा है कि हिंसा के बिना मनुष्य का जीवन नही निभ सकता है। लेकिन असत्य के बिना भी जीवन नही निभ सकता है, ऐसा नही कहा जा सकता है। अहिंसा मे अपवाद हो सकते हैं, पर सत्य मे उसकी गुंजाइश नही होती। वह पूर्ण होता है और उसे पूरा ही पालन करना पडता है। इसीलिये अहिंसा आदि को जहाँ भगवान् नही बताया गया, वहाँ सत्य को भगवान् कहा है। दूसरे शास्त्रों ने भी इसकी तारीफ़ करते हुए लिखा है—'सत्यमेव

जयते नानृतम्' सत्य की ही जय होती है। बाह्य दृष्टि से भले ही सत्ता के आगे सत्य पानी भरता हुआ—हारता हुआ दिखाई दे, पर अन्त मे नतीजा यह होता है कि सत्य के आगे सत्ता ही नतमस्तक होती है और दासी बनकर रहती है। इतने बडे हिन्द देश ने, जहां कि वर्षों से अंग्रेजो की सत्ता थी, किसके बल पर स्वतन्त्रता पाई है ? सत्य और अहिंसा के बल पर ही तो उसे स्वतन्त्रता मिली है। पल-भर भले ही सूर्य पर बादल आगये हैं और उसका प्रकाश मन्द हो गया है, यह समझें, पर वह कितनी देर रहेगा ? क्षण-भर बाद तो सूर्य चमकेगा ही। इसी तरह सत्य पर भी सत्ता का बल क्षण भर भले ही रहे, पर अन्त मे तो सत्य ही विजयी होता है। सत्य धारण करने वाले पर आपत्तियाँ तो आती ही है, लेकिन उन से वह उत्तरोत्तर सबल और खरा बनता जाता है। जैसे चन्दन को जितना अधिक घिसा जाये उतना ही वह अधिक सुगध देता है और सोना आग मे तपने पर भी अधिक चमकता है, वैसे ही सत्यधारी पुरुष कठिनाइयो मे भी अधिक चमकता है, उसका तेज रुकता नही, अधिक प्रखर बनता है। ईख को भले ही कोई कोल्हू मे पेले, पर उसमे से मीठा रस ही निकलता है। गाधीजी का मरण हुआ, पर उनकी मृत्यु से भी अहिसा और सत्य का रस ही निकला। ईख की तरह सत्यधारी पुरुष मरते हुए भी मीठा रस देते है। सत्य का बल असीम होता है। जिसे कोई नही जीत सकता उस मृत्यु को भी सत्यधारी जीत सकता है। फिर वह क्या नही कर सकता है ? यही महान् शक्ति सत्य हमारे चारित्र का दूसरा अङ्ग है जिसका जीवन मे सर्वोपरि स्थान होना चाहिए। २८ जुलाई १९४९

६

सत्य की विजय

पतिव्रता स्त्री का यह नियम होता है कि उसका पति सुख दे या दुःख- वह सब सहन करने के लिये तैयार रहती है। वैधव्य का दारुण दुःख भी उसे कबूल होता है। ठीक ऐसा ही नियम सत्य का पालन करने वालो के लिये भी है। जैसे पतिव्रता स्त्री पति के सिवा और कुछ नही चाहती, वैसे ही सत्यधारी पुरुष भी सत्य के सिवा और कुछ नही चाहता। पतिव्रता वैधव्य-दुःख सह सकती है लेकिन जैसे पर-पुरुष की कामना नही करती, वैसे ही सत्यधारी मृत्यु से आलिंगन कर सकता है, पर सत्य से विमुख होना नही जानता। आप मे से कई एक बात जानते होगे कि अरणक श्रावक जब जहाज मे बैठ कर समुद्र मे जा रहे थे, उस समय एक देवता उनकी परीक्षा करने के लिये आये और बोले—अरणक! तुम इतना कह दो कि मेरा धर्म झूठा है, मेरा सत्य झूठा है। मैने ऊपर कहा है कि सत्यधारी पुरुष मृत्यु का आलिंगन कर सकता है लेकिन उससे विमुख होना नही जानता है। सत्य के पालन मे अधिक से अधिक मृत्यु ही तो हो सकती है। इससे अधिक और क्या दुःख हो सकता है? अरणक ने भी मर जाना मंजूर किया, पर अपने सत्य को नही छोडा। लेकिन आज

हमारी क्या हालत है ? आज हम पैसो दो-पैसो मे ही अपना अनमोल सत्य बेच देते हैं, यह कितनी शोचनीय बात है ? लोग सत्य बोलने मे आज भय अनुभव करते है। लेकिन शास्त्रकारो ने कहा है—

सच्चस्स आणाए उवट्ठिए मेहावी मार तरति ।

'सत्य की आज्ञा में खडा हुआ विवेकी पुरुष मृत्यु को भी जीत लेता है ।' हमारे आर्य मनीषियो ने एक सूत्र कहा है—

सत्य शिव सुन्दरम्

यह सूत्र ग्रीस की सस्कृति से हमारे यहाँ आया है । ग्रीस की सस्कृति, कुछ लोगो द्वारा हिन्दुस्तान की सस्कृति से भी प्राचीन मानी जाती है । उन्होंने तीन हजार वर्ष पहले कहा

The Truth, the Good, the Beautiful

था—यही वाक्य-सूत्र हमने 'सत्य शिव सुन्दरम्' के रूप मे अपनालिया है ।

सत्य सुन्दर है और कल्याण प्रद है । लेकिन बहुत से लोग सुन्दरता मे ही सुख मान लेते हैं । एक तत्ववेत्ता के पास एक ऐसा ही आदमी आया– जो सुन्दरता मे ही सुख मानता था । उसने कहा-जव सुन्दरता मे ही सुख रहता है तो फिर सत्य और शिव को मानने की क्या जरूरत है ? तत्ववेत्ता वडा गहरा था । जो जितना अधिक तत्ववेत्ता होता है वह उतना ही गहरा भी होता है मकान जितना ऊँचा होता है, उतना ही गहरा । तत्व-वेत्ता ने उससे पूछा–क्या तुम्हे सुन्दरता ही प्रिय है ? उस व्यक्ति ने कहा—हाँ । तव तत्ववेत्ता ने पूछा–अगर तुम्हे कोई सुन्दर-सुन्दर ललित छन्द मे काव्यमयी वाणी मे गालियाँ दे तो क्या तुम्हे वह अच्छी लगेगी ? व्यक्ति ने कहा—नही ।

तत्त्ववेत्ता ने उसे दूसरी तरह से समझाते हुए कहा—अगर तुम्हे कोई फूलो के बजाय किसी नन्हे बच्चे के कोमल हाथ काट कर दे, तो क्या तुम्हे वह प्रिय होगा ? तब उसने समझ लिया कि कोरी सुन्दरता ही काम की नही है। एक स्त्री बडी रूपवती हो, गौरवर्ण की हो और सुन्दर वस्त्रभूषण वाली हो, पर बडी लडने-झगडने वाली हो तो क्या वह सबको प्रिय लगेगी ? देखने मे जो सुन्दर हो, हमे वह नही चाहिये, लेकिन सत्य और शिव-युक्त सौन्दर्य ही हमे प्रिय होना चाहिये। कोई स्त्री कुरूप क्यो न हो, पर वह अपने पति को प्राणो से भी अधिक चाहती हो और दूसरी तरफ एक सुन्दर स्त्री होने पर भी अपने पति से नफरत करती हो तो इन दोनो मे सुन्दर कौन होगी ? सत्य और शिव के अभाव मे कोरी सुन्दरता का कोई मूल्य नही होता। वह अभिशाप रूप होती है।

एक बार गाधीजी ने जब हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए उपवास किये थे तब रामचन्द्रन् नामक शान्ति निकेतन का एक छात्र महात्माजी के पास मे रहता था। उसने एक दिन महात्माजी से पूछा—बापू, क्या आप कला मे विश्वास नही करते ? गाँधीजी ने कहा—कौन कहता है कि मै कला को नही मानता ? मैं कला को जरूर मानता हू लेकिन मेरी कला की व्याख्या दूसरी है। मै सत्य मे ही कला देखता हूँ। और ऐसी सत्य मिश्रित कला ही मुझे अभीष्ट है।

हमे सर्व प्रथम यह समझ लेने की जरूरत है कि सत्य का स्वरूप क्या है ? ईश्वर कौन है, कैसा है और उसने सृष्टि की रचना कैसे की ? इत्यादिक दार्शनिक प्रश्नो का निर्णय आज तक नही हो सका है। और इसका निर्णय अभी पाँच

हजार वर्ष तक भी नही हो तो कोई हर्ज नही है, लेकिन सत्य का स्वरूप जो अपने जीवन मे नही जान सके तो उसका जीवन ही निस्सार होता है । अत सत्य क्या है ? यह अवश्य हमे सर्व प्रथम जान लेना चाहिये ।

जैसा देखे और सुने, वैसा ही बोलना सत्य है—यह व्याख्या सत्य की आशिक व्याख्या है । सत्य की व्यापक व्याख्या तो यह है कि वाणी, विचार और वर्तन मे भी सत्य का आचरण हो । वाणी का सत्य आज अत्यधिक आवश्यक हो गया है । पुराने ज़माने मे वाणी के सत्य का वडा महत्व था । सस्कृत मे कहा है—

सद्भिस्तु लीलया प्रोक्त शीला—लिखितमक्षरम्
असद्भि. शपथेनोक्त जले लिखितमक्षरम् ।

सज्जन पुरुषो का सहज मे बोलना भी शिला-लेख जैसा होता है, पर साधारण मनुष्यो का शपथ-पूर्वक बोलना भी पानी मे लिखने जैसा होता है ।

आज हमारी स्थिति कैसी है ? शिला लेख जैसी है या पानी मे लिखने जैसी ? आज की दुनियाँ मे असत्य बोलने वाले पूँजीपतियो की प्रतिष्ठा हो रही है । इस तरह सत्य आज असत् मार्ग पर जा रहा है । हम एक व्यभिचारी पुरुष को देखकर घृणा करते है लेकिन क्या कोई असत्य बोलने वाले से भी इतनी घृणा करता है । हमे जितनी घृणा व्यभिचारी पुरुष को देखकर होती है उतनी ही घृणा असत्य बोलने वाले से भी होनी चाहिये ।

अमेरिका के एक प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता, विलियम नेपियर ने एक दिन किसी लडकी को सडक पर रोती हुई देखकर उससे

रोने का कारण पूछा । लडकी ने कहा—"मेरा घडा फ़ूट गया है । और अब मै अगर यो ही घर जाऊँ, तो मेरी माँ मुझे मारेगी, इसलिये यदि आपको फ़ूटा हुआ घडा जोडना आता हो तो मेहरवानी करके जोड दीजियेगा ।" इतिहासवेत्ता ने कहा —"घड़ा जोडना तो नही आता है लेकिन मै तुम्हे पैसे देता हूँ इससे तुम नया घडा खरीद कर ले जाओगी तो तुम्हारी मा नही मारेगी ।" यह कह कर उसने अपने बटवे मे हाथ डाला तो बटुआ खाली मिला । उसने लडकी से कहा—"अभी मेरे पास पैसे नही हैं, अगर तुम कल मुझे इसी समय यहाँ मिलोगी तो मै तुम्हे जरूर पैसे दे दूगा । आज अपनी माँ से कह देना कि घडा कल लाऊगी ।" लडकी उसकी बात पर विश्वास कर अपने घर चली गई । इतिहासवेत्ता भी जब अपने घर आया तो उसे अपने मित्र का एक तार मिला । जिसमे लिखा था कि कल स्टेशन पर तुम मुझसे जरूर मिलना । स्टेशन पर जाने का समय भी वही था जो समय उसने उस लडकी को दिया था । अत अब वह कुछ दुविधा मे पड गया । उसने सोचा मित्र बडा है या धर्म ? मित्र तो इस दुनिया का ही है लेकिन धर्म तो पर लोक का भी है, अत उसने धर्म का साथ देना ही तय किया । स्टेशन पर उसने अपने नौकर को भेजा और आने वाले अपने मित्र को एक चिट्ठी लिख कर दी कि मुझे कुछ आवश्यक कार्य है मै नही आ सका हूँ । इसके लिये आप मुझे क्षमा करें । वह चाहता तो नौकर को पैसे देकर भी लडकी के पास भेज सकता था लेकिन उसने अपने वचन के पालन के लिये ही ऐसा किया । हमारी वाणी मे भी ऐसी दृढता होनी चाहिये । सत्य का पालन करने के लिये ऐसी दृढता

का सेवन करना आवश्यक है। पैसो की हानि उठाकर भी सत्य की हानि नही उठानी चाहिये। क्योकि पैसो की हानि तो अधिक से अधिक भूखो ही मार सकती है लेकिन सत्य की हानि तो जन्म-जन्मान्तर मे भी दु ख का कारण होती है। अत वचन की दृढता तो अवश्य होनी चाहिये। बगाल के एक सत्यनिष्ठ व्यापारी कृष्णयान्ति का किस्सा है। एक बार जब वे राधाघाट की नाव से मुसाफिरी कर रहे थे, तब चोरो ने उनकी नाव को घेर कर उनसे कहा—तुम्हारे पास जो भी हो सब दे दो, नही तो फिर खैर नही रहेगी। कृष्णयान्ति ने चोरो से कहा—भाई, अभी तो मेरे पास कुछ नही है। चोरो को जब कुछ नही मिला तो वे उन्हे मारने लगे। कृष्णयान्ति ने कहा–भाई,मारते क्यो हो ? अगर तुम्हे रुपये चाहिये तो तुम मेरे घर आना, मैं तुम्हे जितने मागोगे उतने रुपये दे दू गा। उनकी बात पर विश्वास कर जब वे चोर दूसरे दिन उनके घर गये तो अपनी इच्छानुसार रुपये लेकर लौट आये। इनके ही जीवन का दूसरा दृष्टान्त है—एक बार एक अग्रेज ने इनके साथ चावल का सौदा किया था। भाग्य से सौदा करते ही चावल के भाव तीन गुने अधिक बढ गये। कृष्णयान्ति चाहते तो वे इन भावो से अधिक मुनाफा उठा सकते थे, लेकिन उन्होने अपने वचन का खयाल रखते हुए उसका सब मुनाफा उस अग्रेज़ को दे दिया। इन दृष्टान्तो से सीखना इतना ही है कि हम मु ह से जो सत्य कहें उसका जीवन मे भी आचरण करे। ऐसे सत्य को प्राप्त करने के लिये महाभारत मे अहिंसा क्षमा, दया, तितिक्षा आदि ग्यारह उपाय बताये गये है। जिनका अनुसरण करने से सत्य का पालन किया जा सकता है।

तीर्थंकरो को तीर्थंकर बनाने वाला सत्य ही है। अत. तीर्थंकरो से भी ऊँचा सत्य है। इसीलिये कहा है कि 'सच्च खु भगव'—सत्य ही भगवान् है। यदि हम एक बार तीर्थंकर का स्मरण नही करे तो यह उतना भयकर नही है, जितना कि सत्य का स्मरण नही करना। सत्य का स्मरण नही करना, तीर्थंकर का स्मरण नही करने से भी अधिक भयकर है क्योकि सत्य ही ईश्वर है और वही ईश्वर को पैदा करने वाला भी है। अत मनुष्य किसी भी स्थिति मे क्यो न हो उसे सत्य का अहर्निश पालन करना चाहिये। सत्य के पालन मे ही शिव और सौन्दर्य है।

२६ जुलाई १६४६।

१०

सत्य और दया

कोई अगर रेतीली जमीन पर अपना महल खडा करे तो हवा का झोका आने पर वह धराशायी हो जायगा। इसी तरह अपना जीवन भी अगर असत्य के पाये पर घडा जाय तो वह भी एक ही झपाटे मे गिर सकता है। हमारे जीवन का पाया सत्य है, और इस पर अगर हमारा जीवन आश्रित होगा तो हम दुनिया मे टिक सकेगे अन्यथा हमे भी रेतीले महल की तरह धराशायी हो जाना पडेगा। सत्य के विषय मे एक अंग्रेज लेखक ने लिखा है—

The truth and love are most powerfull things in the world

'सत्य और प्रेम ये दो वस्तुएं जहाँ होती हैं वह दुनिया मे सबसे अधिक शक्तिशाली हो जाता है।' जिस व्यक्ति मे सत्य और करुणा होगी उसके सामने दुनियाँ की कोई भी शक्ति नही टिक सकेगी। जगत की सर्वोत्तम शक्ति, सत्य और दया ही है।

कल हमने जो सत्य के ११ उपाय बताये थे उनमे दया भी एक उपाय बताया गया है। दया के बिना सत्य का पालन नही किया जा सकता है। दूसरो की भलाई के खातिर अपनी

भलाई को—सुख को—न्यौछावर कर देना दया है । दयापूर्ण जीवन ही सच्चा जीवन होता है और वही सत्य का पालन भी कर सकता है । एक समय की वात है—एक रेल्वे पुल के पास मे एक छोटी-सी झोपडी थी । इसमे एक बुढिया और उसकी लडकी रहती थी । एक बार ऐसी घनघोर वर्षा हुई कि वह पुल टूट गया । रात अंधियारी थी और हवा खूब जोरो से चल रही थी । अचानक लडकी की नीद खुल गई । उसने अपनी खिडकी मे से देखा तो पुल टूटा हुआ उसे नज़र आया । गाडी के आने का भी यही समय था । उसने अपनी मा को उठाया और कहा—'माँ, पुल टूट गया है और गाडी अभी आने वाली हैं, अत. हजारो मनुष्यो की जान वचाने के लिये हमे कुछ करना चाहिये ।' एक तरफ तो वर्पा का भयकर तूफान चालू है, घर से बाहर निकलने की इच्छा भी नही होती है और दूसरी तरफ लडकी कहती है कि 'माँ, इन हज़ारो मनुष्यो की जान बचाने के लिये हमे कोई उपाय करना चाहिये ?' लडकी बडी होशियार थी । उसने अपने हाथ मे टूटे हुए खाट का एक डडा लिया और उस पर कपडा लपेट कर उसे जलाया । दूसरे हाथ मे अपनी लाल साडी का फटा हुआ कपडा लिया और माँ से कहा—'माँ, चलो, अब हम रेल के सामने खडी हो जायँ । ड्राइवर जब यह लाल कपडा देखेगा तो गाडी खडी कर देगा ।' माँ और बेटी दोनो अपनी झोपडी से निकल कर बाहिर आकर उस भयकर झझावात मे भी पुल के पास आकर खडी हो गई । गाडी ठीक समय पर आई, लेकिन ड्राइवर ने जब आग की रोशनी मे लाल कपडा उडता हुआ देखा तो कोई खतरा समझ कर गाडी रोक दी । चारो

मे जीवन मरे हुए-के समान-ही है।

मनुष्य को स्वभावत सत्य से प्रेम होता है। किसी मजदूर को आप कोई काम करने को कहे और वह बिना किये ही आपके सामने आकर कहे कि मैने वह काम कर दिया है तो आपका दिमाग कैसा गरम हो जायगा ? जिस तरह आपको झूठ बोलने वाला पुरुष नही रुचता है उसी तरह आप भी अगर झूठ बोलते है तो दूसरो को नही रुचेगे। अत इससे सिद्ध होता है कि सत्य मनुष्य को प्रिय है। असत्य उसे रुचता नही है लेकिन सत्य का आचरण उसे सुलभ नही है। यही एक कमी मनुष्य की सबसे बडी कमी है। जिसे मनुष्य को अवश्य ही दूर करनी चाहिये। सत्य बडा चमत्कारिक होता है। एक गुनहगार पुरुष भी सत्य बोलने पर दु खो से छुटकारा पा सकता है। पुराने समय मे फ्रान्स और इटली आदि देशो मे ऐसा नियम था कि जो पुरुष चोरी करते थे उनके हाथ बाँध-कर उन्हे नौकाओ पर बैठा दिया जाता था। एक बार एक बड़े आफिसर ने जब इन लोगो को देखा तो पूछा तुम लोगो ने ऐसा क्या काम किया है जिससे तुम्हे यहाँ बाँधकर रखा गया है ? चोरो मे से किसी ने कहा—जज ने मुझे झूठ-मूठ चोर समझ कर यह सजा दे दी है। किसी ने कहा—झूठी गवाही मे मुझे पकड लिया गया है। इस तरह दोषी होते हुए भी सब अपने को निर्दोष साबित करने लगे। लेकिन एक आदमी ने कहा—मेरे पास खाने को कुछ नही था अत. मैने चोरी की और पकड़ा गया। उसी की यह सजा मुझे यहाँ मिली है। इस आदमी के सत्य कथन से उसने समझ लिया कि और सब आदमी अपने दोष छिपाने के लिये झूठ बोले है, पर यह आदमी सत्य

बोलता है। तब उसने इस आदमी से कहा—भाई, तुम इन भले आदमियो (व्यग) के बीच मे रहने लायक नही हो, मैं तुम्हे इस दु ख से छुटकारा दिलाता हूँ। सत्य बोलने वाला दु खो से भी मुक्त हो जाता है, यह हमे इस कथा से ज्ञात हो जाता है। अत हमे यह समझ लेना चाहिये कि हमारे जीवन का पाया सत्य है और जीवन को स्थिर बनाने के लिये सत्य का ही पाया बनाना होगा। जितना ही जीवन अधिक उन्नत बनाना होगा उतना ही सत्य का पाया मजबूत करना होगा। जो इस सत्य का जितना गहरा पालन करेंगे वे उतनी ही अधिक अपने जीवन मे शान्ति स्थापित कर सकेंगे।

जो मनुष्य शर्मदार होता है वही सत्य का पालन कर सकता है। जिसमे धृति यानी लोक-कल्याण की भावना नही होती, वह कभी भी सत्य का पालन नही कर सकता है। जिसमे आर्यता यानी आगे बढने की भावना होती है वही सत्य का पालन कर सकता है। समता यानी समभाव रखने वाला व्यक्ति ही सत्य का पालन कर सकता है और क्षमा-शील व्यक्ति ही सत्य का आचरण कर सकता है। यहाँ क्षमा का स्वरूप समझ लेना आवश्यक है। क्षमा दो तरह की होती है—किसी को क्षमा देनी, यह क्षमा का पहला प्रकार है और दूसरो से क्षमा की याचना करनी, यह क्षमा का दूसरा प्रकार है। क्षमा मागनी और क्षमा देनी, यह भी सत्य-प्राप्ति की सीढी है। हम अपनी त्रुटियो के लिये क्षमा मागे और दूसरो को क्षमा दें तभी हम सत्याचरण कर सकते है। मानव से भूल होना तो स्वाभाविक ही है, लेकिन जैसे मनुष्य अपनी भूल के लिये क्षमा चाहता है वैसे दूसरो के दोषो को भी उसे क्षमा

कि उस समय लोभ लालचवश लड़ाइयाँ बहुत हुआ करती थी। उनको मिटाने के लिये ही निवृत्ति प्रधान चारित्र की शिक्षा दी जाती थी। लेकिन आज निवृत्ति मे भी आलस्य-प्रमाद, आराम आदि पाप घुस गये हैं। इसलिये आज निवृती प्रधान चारित्र को नही, बल्कि प्रवृत्ति प्रधान चारित्र की विशेष आवश्यकता है। इस चारित्र के पहले और दूसरे अग का वर्णन हम ऊपर कर चुके है। यहा अब अचौर्य का वर्णन हमे करना है, जो कि चारित्र का तीसरा अग है।

अचौर्य यानी चोरी नही करना। चोरी करके किसी का धन हज़म कर लेना या दरवाजा खोल कर कोई चीज़ उठा लेना चोरी कही जाती है, लेकिन यदि हमने किसी वस्तु को प्राप्त करके भी उसका सदूपयोग वैसा नही किया तो यह भी चोरी ही होती है। अपनी इन्द्रियो का उपयोग न कर दुरुप-योग किया तो यह भी चोरी है। अधिक गहराई से विचार करे तो आवश्यकता से अधिक रखना भी चोरी है। जब मनुष्य का काम सादे भोजन से चल सकता है तो फिर उसके लिये आचार आदि खाना भी चोरी नही तो और क्या है। प्रकृति इतना पैदा करती है कि सब मनुष्य उससे अपना गुजारा कर सकते है, वशर्ते कि सब अपने-अपने परिमाण मे ले, आवश्यकता से अधिक का सचय नही करे। चीटी कितनी छोटी होती है, पर इकट्ठा कितना करती है ? उसका निर्वाह तो एक छोटे से कण से भी हो जाता है, लेकिन वहुत सचय करती रहती है, अत यह भी चोरी ही है।

सत्य श्रवण करने के लिये हमें जो कान मिले है उनका उपयोग निंदाश्रवण मे करना और जीभ से सत्य के वदले

असत्य बोलना चोरी है। शरीर से सुस्त निकम्मे बने बैठे रहे, पर-सेवा नही करे तो यह भी चोरी ही है। क्योकि जो वस्तुएँ हमे जिस कार्य के लिये मिली हैं उनका वैसा उपयोग न कर विपरीत उपयोग करना भी चोरी ही कहा गया है। अचौर्य के साथ अपरिग्रह का वैसा ही सम्बन्ध है जैसा कि सुई के साथ डोरे का। जो अपरिग्रही होता है वही अचौर्य व्रत का पालन कर सकता है। पुराने जमाने की एक बात है—ईरान मे एक शाहजूसा नामक प्रसिद्ध पुरुष हो गया है। वह राजवशी होने पर भी बहुत पवित्र मनुष्य था। वहाँ के फकीर भी उसे पूज्य पुरुष मानते थे। एक दिन एक फकीर ने शाहजूसा से मुलाकात की और कहा—जो वस्तु हम फकीरो के जीवन मे देखना चाहते थे वह आज तुम्हारे जैसे राजवशी मे दिखाई दे रही है। मतलब यह है कि वह एक पहुँचा हुआ पुरुष था। उसके एक पुत्री भी थी, जो बडी लायक थी। वह जितनी शिक्षित और सस्कारित थी उतनी ही सुन्दर भी थी। एक दिन एक राजा ने उसके साथ शादी करने के लिये कहा, लेकिन शाहजूसा ने उत्तर दिया—मुझे लडकी के लिये राजा नही, त्यागी पुरुष चाहिये। कुछ दिनो बाद शाहजूसा ने एक मस्त फकीर को देखा, जिसे देखकर उसने कहा—क्या तुम शादी करना चाहते हो ?

फकीर ने कहा—शादी करना तो चाहता हूँ लेकिन मुझ फकीर को कौन अपनी लडकी देने को राजी होगा ? मेरे पास तो कुछ भी नही है ?

शाहजूसा ने कहा—मै तुम्हे अपनी लडकी दूँगा।

फकीर ने कहा—लेकिन मेरे पास तो केवल तीन पैसे है ?

शाहजूसा ने कहा—तुम अपने तीन पैसो से ही अगरवत्ती कुकुम आदि ले आओ, मैं अपनी लडकी का विवाह तुम्हारे साथ कर दूंगा।

जब फकीर सब सामग्री लेकर आया तो शाहजूसा ने उसके साथ अपनी लडकी का विवाह कर दिया। फकीर उस लड़की को लेकर अपने घर आया। लेकिन लड़की ने जैसे ही उस फकीर की झोपड़ी मे पैर दिया, कि वैसे ही उसने कहा—मैं इस घर मे नही रह सकती हूँ ?

फकीर ने कहा—यह तो मै जानता ही था कि तुम राज-घराने की होकर मेरे जैसे फकीर की झोपड़ी मे कैसे रह सकोगी ?

लडकी ने कहा—मै तुम्हारे झोपडी देखकर नही भागना चाहती हू, पर तुम्हारी इस रोटी को देखकर मै यहाँ नही रहना चाहती हूँ। क्या तुम्हे कल का भरोसा नही है ? जिससे तुमने यह रोटी रख रखी है ?

फकीर ने कहा—यह रोटी कल बच गई थी अत. मैंने रख छोडी है। लेकिन जब लडकी ने उस फकीर से कहा कि ज़रूरत से ज्यादा रखना चोरी है, तो उस फकीर ने वह रोटी एक भूखे मनुष्य को दे दी। तब वह लडकी उसकी झोपडी मे आई। लेकिन आज हमारी स्थिति बडी विषम हो गई है। ज़रूरत के मुआफिक रखने मे हमे विश्वास ही नही होता। सन्त फ्राँसिस भी एक ऐसा ही अपरिग्रही था। एक दिन उसके मठ मे एक दर्शनार्थी आया, जिसकी जेब मे से एक पैसा नीचे गिर गया था सन्त फ्राँसिस के एक शिष्य ने उसे उठाकर ऊपर रख दिया। तब सन्त फ्राँसिस ने अपने इस शिष्य को दण्ड

देते हुये कहा—तुमने जिस पैसे को अपने हाथो से उठाकर ऊपर रखा है, उसे अब अपने दाँतो से पकड कर बाहर फेंक दो। याद रखो, अगर तुम्हे अपना हित अभीष्ट हो तो पैसे से सदा बचते रहो, उसे छूना भी नही चाहिये। भगवान् महावीर ने भी यही कहा है कि–'परिग्रह को इकट्ठा करके नही रखना चाहिये। तुम्हे जो वस्तु चाहिये उसका अधिक सचय मत करो, वह तो तुम्हारी अन्तराय खुली होगी तो अवश्य मिलेगी ही। लेकिन हमे आज उनके वचनो पर विश्वास नही रहा है। इसीलिये हम परिग्रह को इकट्ठा करके रखते हैं। सच्ची पूजा या आराधना तो यही है कि भगवान् के वचनो का पालन किया जाय। पालन और विश्वास के अभाव मे केवल उनके नाम-स्मरण से क्या लाभ हो सकता हैं। अत मनुष्य को अस्तेय व्रत का पालन करना नही भूलना चाहिये। अस्तेय व्रत मे अहिंसा और सत्य का तो समावेश हो ही जाता है। क्योकि अस्तेयव्रत के पालन से ही सत्य और अहिंसा का भी पालन किया जा सकता है। इस अस्तेयव्रत के पालन करनें पर ही मनुष्य सयम क्षेत्र मे आगे चल सकता है तथा सत्य अहिंसा के पालन द्वारा अपना जीवन पवित्र बना सकता है।

३१ जुलाई, १९४८

: १२ :

ब्रह्मचर्य

हमारे शरीर मे दो तरह की शक्ति हैं। एक मस्क्युलर स्ट्रेन्थ—शारीरिक शक्ति और दूसरी नर्व स्टेन्थ—स्नायुविक शक्ति। अपने शरीर को पूर्ण स्वस्थ और चुस्त रखने के लिये इन दोनो ही शक्तियो का सचय करना जरूरी होता है हम अच्छी खुराक और व्यायाम आदि से मस्क्यूलर स्ट्रेन्थ इकट्ठी कर सकते है। शरीर मे जो भीने-भीने ज्ञान-तन्तु हैं उनको स्वस्थ रखना नर्व स्ट्रेन्थ है। पहली शक्ति व्यायाम से प्राप्त की जा सकती है और दूसरी ब्रह्मचर्य तथा चित्त की प्रसन्नता से कायम रखी जा सकती है। इस ब्रह्मचर्य का हमारे जीवन मे चौथा स्थान है।

ब्रह्मचर्य हमारे जीवन की खाद है। शारीरिक और मानसिक दोनो ही शक्तियाँ इस पर टिकी हुई हैं। खेत मे यदि खाद अच्छी हो तो सब अच्छा ही पैदा होता है। जिस तरह अच्छी खाद से दो-तीन तोले वाले टमाटर भी सेर-दो सेर तक के पैदा किये जा सकते हैं, उसी तरह बुद्धिबल और आत्मबल को और बढाने के लिये भी ब्रह्मचर्य रूपी खाद की जरूरत रहती है। बाल्यावस्था मे ही यदि यह खाद डाल दिया जाय तो उससे नर्व स्ट्रेन्थ बढ़ जाती है।

हमने ब्रह्मचर्य का बिल्कुल छोटा-सा अर्थ ले रखा है। लेकिन पूर्ण ब्रह्मचर्य तो पाचो इन्द्रियो से ही पालन किया जा सकता है। तभी बौद्धिक तन्दुरुस्ती यानी आत्मिक और शारीरिक तन्दुरुस्ती साधी जा सकती है। जैसे कि—

कान का ब्रह्मचर्य—जिसको सुनने से हृदय मे कुसंस्कारों की जागृति हो ऐसे सिनेमा आदि के गायनो को नही सुनना, कान का ब्रह्मचर्य है। आँख का ब्रह्मचर्य यह है कि सिनेमा-नाटक आदि नही देखना, जिससे कि हृदय मे बुरे विचार पैदा हो, क्योकि मनुष्य का यह स्वभाव है, कि वह अच्छाई को ग्रहण करने मे तो देरी लगाता है,परन्तु बुराई को वह तत्काल ग्रहण कर लेता है। नाटक और सिनेमा भले ही कितने अच्छे और महापुरुषो के भी क्यो न हो, लेकिन वे प्राय कुसस्कारो को ही जागृत करने वाले होते हैं। एक बार हमारे पास काका-साहब कालेलकर आये थे, उस समय प्रसगवश सिनेमा की बात चल पडी थी। तब उन्होने कहा था—'मनुष्य सन्त तुकाराम का सिनेमा देखते हैं, लेकिन क्या कोई मुझे यह भी बता सकते हैं, कि सिनेमा देखने से कितने तुकाराम के भक्त हुए है?' देखने वालो मे तो तुकाराम के भक्त होगे, लेकिन सिनेमा देखने से कोई तुकाराम का भक्त नही हुआ है। इस लिये जो लोगसिनेमा के नाम पर यह कहते हैं, कि उससे तो बडी-बडी शिक्षाएँ मिलती हैं, वे बडी भूल करते है। आज के सिनेमा और नाटको का अच्छा असर प्राय होता ही नही है।

ब्रह्मचर्य पालन के लिये विषय-वासना नही रखनी चाहिये यह निषेध आज्ञा दी गई है। लेकिन आगे जाकर पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिये विधेयात्मक-भावात्मक ब्रह्मचर्य का

स्वरूप भी जानना जरूरी है। अन्यथा ब्रह्मचर्य अधूरा रह जाता है, पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिये अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियो को परमात्मा की सेवा मे—जन-सेवा मे लगा देना चाहिये। जो मनुष्य अपनी इन्द्रियो को परमात्मा की सेवा मे लगा देता है, उसे फिर कभी विषय की चाह नही होती है। स्वामी रामतीर्थ ने कहा है—'काम की दवा काम है।' यानी मानव जब शारीरिक श्रम करने लग जाता है तब उसके सब विकार शान्त हो जाते है। कोई मनुष्य लकडी चीरता हो या लोहा गरम करता हो तो उस समय उसके सब विकार शान्त रहते है। इसलिये यह कहा जाता है कि काम—(विकार) की दवा काम ही है। यदि मनुष्य अपने हाथो से काम करता रहे तो वह वासनाओ को जीत सकता है। इसीलिये हमारी सस्कृति के मूल मे श्रम रक्खा गया है। जैन और बौद्धो की सस्कृति को श्रमण सस्कृति कहते है। जब मूल मे ही श्रम है, उसके लिये उद्योग तो चाहिये ही। लेकिन मनुष्य स्वभाव से ही आरामतल्वी होता है। कम काम करना और अधिक आराम लेना, यह उसकी भावना रहती है। मोटर की स्पिरिट बढाकर या रेल की चाल तेज करके भी वह समय की बचत करने का विचार करता है। क्योकि उसे आराम चाहिये। अत यह सब वह अपने आराम के लिये ही करता है। लेकिन वह जिसे आराम समझ रहा है, वह सचमुच आराम नही है। चुपचाप बैठे-सोते रहना भी क्या आराम है? श्रमण सस्कृति ने श्रम की प्रतिष्ठा कायम की, पर फिर भी मनुष्य आराम-तल्वी ही रहा। महात्माजी ने पुन उसकी प्रतिष्ठा स्थापित की और स्वय मेहनत कर लोगो को श्रम की महत्ता बताई।

आज की दुनिया का मनुष्य अपना सामान अपने हाथो से उठाने मे और खेत मे जाकर कुदाली से काम करने मे भी शर्म समझता है। लेकिन महात्माजी ने पुन इसकी प्रतिष्ठा की। भला, अपने हाथो से अपना काम करने मे भी शर्म क्यो होनी चाहिये ? शर्म तो दूसरो के सामने बीडी पीने मे या दूसरो से काम कराने मे आनी चाहिये। महात्मा जी ने जब सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की थी, तब एक बडा श्रीमन्त उनसे वहाँ मिलने के लिये आया था। उसने एक घडा लिये हुए व्यक्ति से पूछा—भाई, मुझे गान्धीजी से मिलना है, वे कहाँ मिलेगे ? हाथो मे घडा लिये हुए व्यक्ति ने कहा—आप मेरे साथ चलिये, मैं आपको गान्धीजी से मिला दूगा। वह उसे कुए पर ले गया। श्रीमन्त ने कहा—भाई, मुझे गाधीजी से जरा जल्दी मिला दो न ? घडा उठाने वाले व्यक्ति ने कहा—भाई मै ही गाधीजी हूँ। कहिये, क्या काम है ? आगन्तुक श्रीमन्त तो गाधीजी को अपटूडेट समझ रहा था, पर जब उन्हे अपने कधो पर घडा उठाये हुए देखा तो उसके आश्चर्य का पार न रहा। ऐसी ही एक घटना अफ्रिका मे हुई थी। गाँधीजी अफ्रिका के आश्रम मे कुदाली से मिट्टी खोद रहे थे। उस समय एक पुरुष आया और उसने गाधीजी से कहा—मुझे गाँधीजी सें मिलना है। गाधीजी ने कहा— मै ही गान्धी हूँ। कहिये, क्या काम है ? गान्धी जी के हाथ मे कुदाली देख कर वह भी आश्चर्य मे डूब गया था। कहने का मतलब यह है कि इस तरह स्वय मेहनते करने से ही शारीरिक शक्ति वढती है और उसीसे ब्रह्मचर्य का बल भी वढता है।

ब्रह्मचारी मनुष्य के ज्ञानततु बडे निर्मल हो जाते है। वे

जिस चीजको एक बार देख लेते है या सुन लेते हैं उसे फिर कभी नही भूलते है। स्वामी विवेकानन्द जब 'विश्व विद्या' नामक ग्रथ पढ रहे थे, तब उनसे एक शिष्य ने कहा—आप इतना बडा ग्रंथ तो पढ जाते हैं, लेकिन क्या यह सब याद रह जाता है ? विवेकानन्द ने कहा—बोल, तू क्या पूछना चाहता है ? शिष्य ने पूछा—अमुक पत्र पर किस विषय पर क्या लिखा हुआ है ? स्वामी विवेकानन्द ने जैसा उस पुस्तक मे लिखा हुआ था वैसा ही अपने मुँह से कह सुनाया। उनकी स्मरण शक्ति इतनी तेज थी। लेकिन स्मरण शक्ति के मूल मे ब्रह्मचर्य का ही तेज था। ब्रह्मचर्य से उनके ज्ञानततु इतने निर्मल और शुद्ध बने हुए थे, कि वे एक बार पढने से ही उसे ग्रहण कर लेते थे।

ब्रह्मचर्य की शक्ति असीम है, जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है वह दीर्घजीवी तो होता ही है। पुराने समय का एक किस्सा है—मगध के एक गाँव मे धर्मपाल नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसके एक पुत्र था। जिसका नाम था धर्मकुमार। उसने अपने पुत्र को तक्षशिला के विद्यालय मे अध्ययन के लिये भेज रखा था। वहाँ कुछ अर्से बाद धर्मकुमार के एक आचार्य के पुत्र का देहावसान हो गया। सब विद्यार्थी शोक मग्न हो गये। धर्मकुमार ने उन्हे देख कर कहा—भाई, तुम सब दुःख क्यो कर रहे हो ? लडको ने कारण बताते हुए कहा— आचार्य के एक ही तरुण पुत्र था और वह भी आज मर गया है। धर्मकुमारने कहा—तरुण तो कभी मरता ही नही है लडको ने कहा-क्या तुम्हारे घर मे कोई नही मरता है ? धर्मकुमार ने कहा—हाँ, मेरे घर मे तरुण नही मरता है।

पिता के देखते हुए पुत्र आज तक नही मरा है। लडको को धर्मकुमार की बात पर आश्चर्य हुआ। उन्होने आचार्य से आकर कहा–आचार्य, धर्मकुमार कहता है कि तरुण तो कभी मरता ही नही है। उसके घर मे पिता के देखते हुए आज तक कोई पुत्र नही मरा है। आचार्य को भी इस बात से आश्चर्य हुआ। लेकिन उन्होने अपने मन मे धर्मकुमार की बात सच है या नही, यह जानने का निश्चय कर लिया। मौका पाकर एक दिन आचार्य तीर्थाटन करने के बहाने तक्षशिला से निकले और सीधे धर्मकुमार के घर पर आकर ठहरे। धर्मकुमार के पिताने आचार्य का बडा स्वागत-सत्कार किया और बडी प्रसन्नता से पूछा—कहिये, क्या आज्ञा है ? आचार्य ने रुधे गले से कहा–"भाई तुम्हारा पुत्र धर्मकुमार मेरे यहाँ पढा और वेदो का ज्ञान प्राप्त किया, लेकिन अब वह मर गया है। मै उसके फूल लेकर तुम्हारे पास आया हूँ।" उसका पिता, आचार्य की बात सुनकर, ताली बजाते हुए कहने लगा—महाराज यह बात आप बिल्कुल झूठी कहते हैं। मेरा धर्मकुमार कभी नही मर सकता है। यह सुनकर आचार्य को धर्मकुमार की बात पर विश्वास हो गया। तब उन्होने धर्मपाल से कहा—भाई, तुम्हारा पुत्र मरा नही है। मै तो केवल यह जानने के लिये यहाँ आया हू, कि तुम्हारे कुटुम्ब मे तरुण की मृत्यु क्यो नही होती है ? धर्मपाल ने कहा—आचार्य, मेरे कुल मे कोई भी स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्य का उल्लघन नही करते हैं। इसीलिये कभी भी मेरे कुटुम्ब मे तरुण का मरण नही होता है। बन्धुओ! अब तनिक आप अपनी स्थिति का भी खयाल कीजिये। आज हमारे समाज मे पत्नीव्रत नष्ट हो गया है। समाज का एक पहिया बिल्कुल

चारित्र के मुख्य अङ्ग हैं। जिनमे से चार का वर्णन तो हम कर चुके हैं, आज पाचवे का वर्णन हमे यहाँ करना है।

चारित्र का पाचवा अङ्ग है अपरिग्रह। मानव श्रीमन्त हो, पर स्वत. गरीबी को स्वीकार करे तो यह अपरिग्रह है। (श्रीमन्त होकर भी स्वत. गरीबी को धारण करना अपरिग्रह है) भगवान् महावीर राजा के लडके थे और भगवान् बुद्ध भी राज-पुत्र थे, लेकिन उन्होने श्रीमन्त होते हुए भी स्वत. गरीबी मोल ली, यही उनका अपरिग्रह था। अपरिग्रह का मतलब ही यही है कि स्वत गरीबी धारण करना।

आज हिन्दुस्तान का सबसे बडा प्रश्न गरीबी का है। मनुष्य को जब तक भोजन नही मिलता है तब तक उसके लिये सब नीरस होता है। आज का हिन्दू दुनिया मे सबसे गरीब है। गरीब मानव के साथ सदा खाने का ही प्रश्न लगा रहता है। जब तक हम उसका यह प्रश्न नही हल कर सकते तब तक उसको हम दूसरा क्या उपदेश दे सकते हैं? आज के गरीब भारत का यह प्रश्न इतना विकट है कि यदि गाव का एक व्यक्ति बीमार होता है तो, वह, न एक रोज की दवा ले सकता है और न वह एक रोज आराम ही कर सकता है। दवा ले तो पैसे कहा और आराम करे तो खावे क्या?

आज इन्ही गावो पर सारा हिन्दुस्तान निभ रहा है। वकील और राजे महाराजे भी उनसे पल रहे है। वे सब को खिला-खिला कर जीवन-दान देते है, पर उनको कोई जीवन देता है? जिनके ऊपर हमारे जीवन का आधार है, क्या हम उनको भूल सकते है? लेकिन आज की स्थिति बडी विचित्र है। हम उन्हे भूल गये है। जब तक हम उनका सुधार नही

करेंगे तब तक याद रखिये कि हमारी स्थिति ठीक नही हो सकेगी। मानव का प्राथमिक कर्तव्य ही यह है कि वह जन-सेवा करे। लेकिन आज वह अपने इस उद्देश्य से कोसों दूर हो गया है और उसका ही यह परिणाम है कि हिन्द आज गरीबी की चक्की मे पिसता चला जा रहा है।

हम मानते है, कि पहले-दूसरे और तीसरे आरक मे धर्म नही होता है। क्योकि उस समय समाज मे किसी तरह की विषमता नही होती है। जब रोग ही न हो तो फिर रोगो की दवा क्यो रखी जाय ? अत उस समय धर्म नाम की कोई चीज नही होती थी। लेकिन आज तो सारी दुनिया मे ही विषमता ने अपना घर कर लिया है। आज एक तरफ तो एक मानव मेवा-मिष्टान्न खाता है, पर दूसरी तरफ दूसरे को चने भी खाने के लिये नही मिल रहे है। कैसी विषम स्थिति आ हमारी हो गई है। महाराष्ट्र का एक दृष्टान्त है—जस्टिस रान अपने घर से बाहिर जा रहे थे। रास्ते मे उन्होने एक कुत्ते को वमन करते हुए देखा और फिर वही एक भूखे मनुष्य को खाते हुए भी देखा। यह देख कर उनका अन्तस्तल काप उठा। उन्होने तत्क्षरण यह प्रतिज्ञा की कि जब तक मै इस गरीबी को दूर नही करूगा तब तक मै सादगी से अपना जीवन व्यतीत करूगा।

बधुओ ! एक तरफ तो किसी के गले मे मोतियो के हार लटकते हो और दूसरी तरफ किसी की आखो से मोती झरते हो तो ऐसी हालत मे कैसे कल्याण हो सकता है ? ऐसी विषमता को दूर करने पर ही गरीबो का कल्याण हो सकता है और उसी के धर्म का प्राथमिक कर्त्तव्य पूरा किया जा

सकता है ।

जैसे 'काम की दवा काम है' वैसे गरीबी की दवा भी गरीबी ही है । यदि आप गरीबी को दूर करना चाहते हैं तो उसके लिये स्वतः गरीबी का आचरण करना ही पड़ेगा ।

टाल्सटाय ने जब रूस मे गरीबी के दु.ख देखे तो वे अपनी सम्पत्ति को छोड़कर गरीब बन गये थे । इससे अर्थ-शास्त्री (लोग) भले ही यह कहे कि गरीबो की सख्या मे उन्होंने एक और अधिक सख्या बढाई, लेकिन पूंजीपतियो को या मूडीवादियो को उससे यह भली भाति समझा दिया था कि श्रीमन्ताई से ही यह विषमता है । इस विषमता को दूर करने के लिये ही अपरिग्रह व्रत पर इतना अधिक जोर दिया गया है ।

अपरिग्रह व्रत यानी गरीबी मानव जीवन का गर्व है । यह तो ईश्वर की प्रसादी है और वीरो का धर्म है । भगवान् महावीर और बुद्ध ने इसी गरीबी को अपनाकर अपना कल्याण किया था । जब तक हम भी ऐसी गरीबी धारण नही करेंगे तब तक अपना कल्याण नही कर सकेंगे । पुराने समय की एक बात है—

कन्नौज देश के राजा के दो पुत्र थे । बडे पुत्र का नाम राजवर्द्धन और छोटे का नाम हर्षवर्द्धन था । राजा की मृत्यु के समय राजवर्द्धन कही बाहर था । अत. मरते समय राजा ने हर्षवर्द्धन को अपने पास बुलाया और कहा—बेटा, मैं अपना सारा राज्य तुम्हे सौंपता हूँ । तू इसकी रक्षा करना और प्रजा का प्रेम से पालन करना । राजा के मर जाने पर राजकर्मचारियो ने हर्षवर्द्धन से कहा—महाराज ! अब आप

राजमुकुट धारण कर प्रजा का पालन कीजिये। हर्षवर्द्धन ने कहा—भाइयो! यह कैसे हो सकता है? राज्य का अधिकारी तो सदा बडा भाई ही होता है, मै तो उसका सेवक मात्र हूँ। कुछ दिनो बाद राजवर्द्धन जब अपने गाँव मे आया तो उसने सारा गाँव सूना-सूना सा देखा। उसे जब सारी हकीकत मालूम हुई तब वह हर्षवर्द्धन के पास आया और बोला—भाई, तुमने इतनी देरी क्यो की है? उठो, राज्य सम्हालो और प्रजा का पालन करो। हर्षवर्द्धन ने कहा—कौन कहता है कि राज्य मै लूँ? राज्य के अधिकारी आप हैं अत आप ही स्वीकार करे। इस तरह दोनों भाई एक दूसरे को राज्य सौंपने की जिद्द करने लगे। बन्धुओ! जहाँ आज राज्य के लिये एक भाई दूसरे भाई का खून कर रहा है, वहाँ वे दोनो भाई उसे छोडने को कह रहे है। अन्त में हर्षवर्द्धन को ही राज्य स्वीकार करना पडता है और राजवर्द्धन जगल में चला जाता है। इस प्रकार जो मनुष्य अपनी इच्छा से गरीबी स्वीकार कर लेता है वही अपना कल्याण कर सकता है और दुनियाँ की विषमता दूर कर सकता है।

हिन्द की गरीबी कितनी भयकर हो चुकी है और इसका कैसा दुष्परिणाम दिन प्रतिदिन आरहा है, यह हमसे छिपा हुआ नही है गरीबी इन्सान को एक न एक दिन मृत्यु के मुँह मे जाने को विवश कर देती है।

एक गाँव मे हरकचन्द सेठ नामक एक वनिया रहता था। उसके शक्कर का व्यापार था। सेठ वडा भला और ईमानदार था। गाँव के सब लोग उससे सलाह मशवरा लेने के लिये आया करते थे और उसका बडा मान करते थे। लेकिन मनुष्य

की स्थिति सदैव एक सरीखी नही रहती है। सुख और दु.ख दिन और रात की तरह आते ही रहते हैं। अतः एक दिन ऐसा भी आया कि जब हरकचन्द सेठ का व्यापार बिल्कुल ठण्डा हो गया।

मानव के पास जब तक पैसे होते है तब तक सब उसको हाँ मे हाँ करते हैं, लेकिन जब वह निर्धन हो जाता है, तब उसकी कोई खबर भी नही लेता है। दुनियाँ का यह स्वभाव होगया है कि वह किसी के गुण नही देखती, पैसे को ही सब कुछ समझती है। भले ही कोई नीच पुरुष हो, पर यदि वह पैसे वाला है तो दुनियाँ की नजरो मे वही कुलीन समझा जाता है। जैसा कि कहा है—

यस्यास्ति वित्त स नर कुलीनः
स पडित स श्रुतवान् गुणज्ञ :।
स एव वक्ता स च दर्शनीय;,
सर्वे गुणा काचनमाश्रयन्ति ॥

पैसे वाला पुरुष भले ही मूर्ख हो; पर वह समझदार समझा जाता है। एक दिन था, जब हरकचन्द सेठ हरकचन्द कहकर पुकारा जाता था, पर अब वह पैसो के अभाव मे हरको कहकर पुकारा जाने लगा। जब कि उसी गाँव का मगो, अब पैसा हो जाने से मगलसिह कहलाने लगा था। हरकचन्द ग़रीब हो जाने पर भी किसी के साथ अन्याय नही करता था। उसके पास अपने गाँव के ठाकुर की पाँच बीघा ज़मीन थी, जिसे वह २० वर्ष से जोतता आरहा था। बीस वर्ष बाद जब वह मर गया तो उसकी वह ज़मीन लोगों की आँखो पर आ गई। कुछ लोग मौका देखकर ठाकुर के पास गये और उस

जमीन की माग की । ठाकुर ने हरकचन्द के पुत्र को बुलाया और कहा—भाई, तुम्हारी जमीन पर सौ रुपये का लगान बढा दिया है अत या तो सौ रुपये और लाओ या ज़मीन को दूसरो के हवाले करो । हरकचन्द के पुत्र ने कहा—महाराज, पेट भरने का ही कोई प्रबन्ध नही है तो सौ रुपये कहाँ से लाऊँ । मेरे पास अभी रुपये तो नही है, पर दो ैल जरूर हैं । उन्हे बेचकर मै आपको अधिक से अधिक ५०) रुपये ही दे सकूँगा । अत मेहरबानी कर अभी आप ५०) रु० ही अधिक वढाइयेगा । ठाकुर ने कहा—अगर तुम्हे वह जमीन रखनी है तो जल्दी रुपये लाकर दो, नही तो वह जमीन तुमसे छीन ली जायगी । विवश हो हरकचन्द का पुत्र अपने दोनो बैलो को बेचता है, लेकिन उसे ५०) रुपये ही मिलते है । सौ रुपये की पूर्ति न होने से ठाकुर उसकी वह जमीन लेलेता है और दूसरे को सौप देता है । अन्त मे गरीबी का सताया हुआ हरकचन्द सेठ का लडका मौत का शिकार हो जाता है । हिन्द के निवासियो को गरीबी से कितने विकट दु खो का सामना करना पड रहा है, यह उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट हो जाता हैं ।

हम पैसा और समय का उपयोग करना नही जानते है । इसीलिये आज हमारा जीवन भारभूत प्रतीत होता है मनुष्य के पास पैसा हो तो उसे ट्रस्टी की तरह उसका उपयोग समाज के लिये करना चाहिये । उसे गरीब बनकर गरीबो के दु खो को दूर करना चाहिये । तभी वह अपरिग्रहव्रत का पालन कर सकेगा ।

मनुष्य जब अपनी श्रीमन्ताई को छोडकर गरीबी धारण करता है तो उसे यह प्रश्न होना स्वाभाविक है, कि मेरी गरीबी

से भविष्य मे मेरे बाल-बच्चों का क्या होगा ? उनके जीवन का आधार क्या होगा ? लेकिन जैसे उसे अपने बाल-बच्चो की चिन्ता का प्रश्न उठता है वैसे ही उसे समाज की चिन्ता भी करनी चाहिये। तभी वह अपरिग्रह व्रत को धारण कर अपना तथा देश का कल्याण कर सकेगा।

३ अगस्त १६४८

---

१४ :

परिग्रह पाप है

सस्कृत मे एक कहावत है 'बुभुक्षित न प्रतिभाति किंचित्' भूखे मनुष्य को कुछ भी अच्छा नही लगता है। हम रोगो को वेदनीय कहते हैं। क्षुधा भी एक रोग है। और यह भी वेदनीय है। दूसरे रोग तो छोटे-छोटे होते हैं और उनसे एक बार चिकित्सा करने पर मुक्ति भी पाई जा सकती है, लेकिन क्षुधा की बीमारी तो इतनी भयकर और जटिल होती है कि रोज तीन-तीन बार इसकी चिकित्सा करने पर भी यह दूर नही होती जब तक क्षुधा रोग की पूरी चिकित्सा नही की जाय, तब तक मनुष्य को कुछ भी अच्छा नहीं लगता है।

भूखे मनुष्य को यदि कोई सिनेमा-नाटक देखने ले जाये या उसे कोई धर्म का उपदेश दे तो क्या वह उसे रुचेगा ? अत ऐसी स्थिति मे उसे धर्म का उपदेश देने से पूर्व उसकी क्षुधा शान्त करने का उपाय करना चाहिये। क्योंकि तृप्त पुरुष पर ही धर्म के उपदेश का असर हो सकता है, भूखे पर नही। स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ भारत को छोडकर यूरोप मे उपदेश देने के लिये इसीलिये गये थे, कि वहाँ जनता भोगो से तृप्त हो गई थी। अत तब उन्हे धर्म के उपदेश की जरूरत थी। हिन्द तो भूखा था और भूखमरी

की हालत मे उपदेश करना निस्सार होता है, इसीलिये वे अन्य देशो मे गये।

गरीबी ऐसी चीज़ है, कि जिससे मनुष्य का तेज चला जाता है। यह जब तक दूर नही की जाय तव तक दूसरा कोई उपयोग या काम नही हो सकता है।

दुनिया मे अनेक भय है, पर सबसे वडा भय दो तरह का है—मृत्यु और भूख।

मनुष्य चाहे जितना बलवान् हो, पर जब वह भूखो मरता हो तो उसे कमजोर के सामने भी नमना ही पडता है तव उसे दूसरा कुछ भी अच्छा नही लगता है। अतः ऐसे मनुष्यो को उपदेश कब रुच सकेगा ? पानी का घडा जव पूरा भरा हुआ होगा तभी वह स्थिर रहेगा और हमारा प्रतिबिम्व भी उसमे पड़ सकेगा। अस्थिर पानी मे हमारा प्रतिविम्ब कभी नही पड सकता है। इसी तरह हम दूसरे को उपदेश तो दे, पर उसका दिमाग स्थिर न हो तो हमारे ज्ञान का प्रतिविम्व उसमे नही पड़ सकेगा। अत सर्व प्रथम गरीवी को दूर करने का उपाय करना चाहिये और इसके लिये स्वय गरीबी स्वीकार करनी चाहिये। क्योकि गरीबी ही ग़रीवी की रामबाण दवा है।

भगवान् बुद्ध जव श्रावस्ती के वन मे विचर रहे थे तव उन्होने किसी से सुना कि यहाँ से ६० योजन दूरी पर एक गरीव ग्वाला रहता है। जो कि बडा जिज्ञासु हृदय वाला है। महापुरुष जो होते है, वे दूसरो के लिये दुःख उठाने मे तनिक भी हिचकिचाते नही है। उनका शरीर ही दूसरो की सेवा करने के लिये होता है। इसलिये भगवान् वुद्ध ३० योजन चल कर भी उस ग्वाले को उपदेश देने के लिये गये।

ग्वाला शाम को अपने बैलो को चरा कर घर आ रहा था। रास्ते मे जब उसने यह सुना कि मेरे गाँव मे भगवान् बुद्ध पधारे है तो वह शीघ्र अपने बैलो को लेकर घर आया और बिना कुछ खाये पीये ही भगवान् बुद्ध की सेवा मे आ खडा हुआ। भगवान् बुद्ध ने जब यह सुना कि वह सारे दिन का भूखा है तो उन्होने उसे उपदेश देने से पूर्व अपने एक शिष्य से कहा—क्या तुम्हारे पास कुछ भोजन बचा है ? शिष्य ने कहा– हाँ, कुछ बचा हुआ पडा है। तब भगवान् बुद्ध की आज्ञा से उस शिष्य ने वह भोजन उसे खिलाया और उसकी क्षुधा शान्त की भोजन कर लेने पर भगवान् बुद्ध ने उसे चार सत्य का उपदेश दिया, जिसे सुन कर वह भी उनके भिक्षु सघ मे दाखिल हो गया। भिक्षुओ मे जब इस बात की ऊहा-पोह होने लगी, कि भगवान् बुद्ध और किसी को तो अपने पात्र मे से खिलाते-पिलाते नही हैं, तब फिर इसे क्यो भोजन कराया ? ऐसी चर्चा जब भगवान् बुद्ध ने सुनी तो उन्होने अपने शिष्यो से कहा–भिक्षुओ! यह व्यक्ति उपदेश का तो पात्र था, लेकिन भूखा था। भूख की हालत मे दिया हुआ उपदेश व्यर्थ जाता है, इसी लिये मैंने इसे उपदेश देने से पूर्व भोजन दिया था।' आज भगवान् बुद्ध का यही उपदेश हमे भी लेना है। क्योकि जब तक मनुष्य की भूख शान्त नही की जायगी तब तक उसे उपदेश देना व्यर्थ ही होगा। भूखा मनुष्य न तो धर्म ही कर सकता है और न धर्म का उपदेश ही सुन सकता है। हिन्दी मे एक कहावत है—

भूखे भजन न होई गोपाला।
यह लो अपनी कठी माला।

सकृत मे भी कहा है—

'बुभुक्षित किन्न करोति पापम्'

भूखा मनुष्य कौनसा पाप नही करता ? वह अपनी क्षुधा शान्ति के लिये वडे से वडा पाप भी कर सकता है। अत धर्मोपदेश देने से पूर्व हमे भी भगवान् बुद्ध की तरह पहले लोगो की क्षुधा शान्त करनी चाहिये।

परिग्रह रखना पाप है, यह बात आज हम भूल गये हैं। आज तो जो जितना पैसे वाला होता है, उसे ही बडा समझा जाता है। जो जितना अधिक पैसे वाला होता है वह उतना ही बडा आदमी माना जाता है। वडे आदमी का मतलब ही आज अधिक परिग्रही हो गया है और वही आज पुण्यात्मा भी माना जाता है। भला यह कितनी विचित्र बात है, कि जिसने अपेक्षा कृत अधिक पाप इकट्ठा कर रक्खा है उसे ही आज पुण्यात्मा कहा जाता है। यह कैसी विरोधी मान्यता हमारे दिलो मे आज घर कर गई है ? पुण्य के ४२ भेदो मे क्या कही धन का नामोनिशान भी आता है ? तो फिर आप धनवानो को पुण्यात्मा किस आधार से माने बैठे हैं।

सडक पर एक मोटर जा रही थी, जिसमें एक बडे सेठ बैठे हुए थे। उनके गले मे नीलम की कठी और हाथो मे सवा लाख की हीरे की अगूठी जगमगा रही थी। सेठ जी की आज्ञा से ड्राइवर मोटर को वडी तेजी से लेजा रहा था। अचानक सडक पर एक वालक मोटर के नीचे आ गया और वह वेहोश होकर गिर पडा। सेठजी आवेश मे आकर कहने लगे—साले, इन लोगो से यदि अपने छोकरे भी नही सम्हलते हैं तो वे पैदा क्यो करते है ? ऐसे लोगो पर तो केस चला देना

चाहिये। यह कह कर सेठजी ने अपनी मोटर आगे बढा दी और वह बालक वही बेहोश पडा रहा। उसी समय वहाँ एक फटे हुए चिथडो वाला एक आदमी आया। उसने जब बच्चे को बेहोश देखा तो उसे उठाया और अपने फटे कपडो से हवा कर उसे होश मे लाया। वताइये, अब पुण्यात्मा किसे कहना चाहिये ? क्या उस क्रोडीधज सेठ को या उस अकिंचन फकीर को ?

पैसा मिलना कोई पुण्य नही है। मनुष्य जन्म मिलना पुण्य है। लेकिन आज तो पैसे को ही पुण्य कहा जा रहा है, जो कि बिल्कुल असत्य है।

आज की स्थिति तो ऐसी हो गई है, कि जीवन निर्वाह के लिये पैसो की जरूरत नही, पर पैसो के लिये जीवन हो गया है। इसलिये इस परिग्रह को पाप कहा गया है। परिग्रह के आस-पास भी कई पाप लगे हुए रहते हैं, लेकिन जब तक मूल पाप को नही छोडा जाय वहाँ तक दूसरे पापो का अन्त नही आता है। हम मूल व्रतो को छोड कर दूसरो का पालन करे तो उससे क्या लाभ हो सकता है ?

एक दिन मैने कहा था, कि झाड को पानी पिलाने के बजाय अगर कोई उसके फूल और पत्तो को पानी पिलाये तो वह झाड हरा नही रह सकेगा ? इसी तरह अगर आप मूल व्रतो को छोड़ कर बाह्य क्रियाएँ—व्रत पौषध आदि करे तो उनसे कोई विशेष लाभ थोडे ही होने वाला है ? क्योकि व्रत पौषध आदि तो उत्तरव्रत हैं। अत जव तक हम मूल व्रत को—अपरिग्रह को नही सोचेगे तव तक हम धर्म रूपी वृक्ष को हरा नहीं रख सके गे। अत मूलव्रतो का—अहिंसा' सत्य, अचौर्य,

ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पहले पालन करना चाहिये। इनके पालन मे ही दूसरे व्रतो की कीमत समाई हुई है।

किसी के यहाँ पुत्र का जन्म हो तो यह खुशी की बात होती है लेकिन यदि किसी कुमारी कन्या के पुत्र हो तो यह शर्म की बात होगी। हम एक तरफ तो परिग्रह को इकट्ठा करते रहे और दूसरी तरफ धर्म क्रिया करते रहे तो यह भी वैसी ही शर्म की बात होनी चाहिये। आज अधिक पैसे वाला ही बडा समझा जाता है, लेकिन सच तो यह है कि जिसके पास जितना अधिक पैसा है वह प्राय उतना ही अधिक पापी है। क्योकि अधिकाश मे पैसा असत्य, हिंसा और चोरी से ही इकट्ठा किया जाता है। अत जो जितना अधिक पैसा इकट्ठा करता है वह उतना ही अधिक असत्य, चोरी और हिंसा का आचरण करता है। इसलिये अपेक्षाकृत वह दूसरो से ज्यादा पापी है। कोई यह कहे, कि मै प्रमाणिकता से पैसा इकट्ठा करता हूं, इसमे क्या पाप है? ऐसे भाइयो को यह समझ लेना चाहिये कि उनकी प्रामाणिकता से उनको असत्य, चोरी और हिंसा का पाप तो नही लगता लेकिन फिर भी परिग्रह का पाप तो शेष ही रह जाता है। अत इसे तो छोडना ही चाहिये। इसलिये जहाँ तक परिग्रह का त्याग नही किया जायगा वहाँ तक दूसरे सद्‌गुणो का असर नही हो सकता है।

आज हमारी बहिने पाँच-पाँच उपवास करती है, पर उनकी तपस्या का असर क्यो नही होता है? उनकी तपस्या से पूरा लाभ तो तभी हो सकता है, जब कि वे अपनी ५० साडियो मे से ४० साडियाँ विधवा बहिनो को बाँट दे। तभी उनकी तपस्या असर करने वाली होगी। हमारा अपरिग्रहव्रत

भी तभी सफल होगा जब कि हम अपनी सम्पत्ति गरीवो को बाँट देंगे।

शिवाजी महाराज एक बार सतारा के किले पर बैठे हुए थे, तब उन्होने अपने गुरु समर्थ रामदास को हाथ मे झोली लिये हुये घर-घर भिक्षा मागते हुए देखा। रामदास सचमुच समर्थ रामदास ही थे। बचपन मे जब उनका लग्न हो रहा था और वे जब लग्न-मडप मे वैठे हुये थे, तब उन्होने जैसे ही 'सावधान' शब्द सुना, वे सावधान हो गये और उससे ऐसे छूटे कि १२ वर्ष तक उनका कोई पता नही लगा। फिर तो वे सन्यासी हो गये और घर-घर भिक्षा माँगने लगे। शिवाजी ने जब उन्हे भिक्षा मागते हुये देखा तो अपने मन मे सोचा—मेरे जैसे शिष्य का गुरु भी भिक्षा माँग रहा है? क्या मै अकेला ही उनकी इच्छा पूरी नही कर सकता हू? जो वे घर-घर भिक्षा मागने जायँ। उन्होने तत्क्षण एक चिट्ठी लिखी, और अपने नौकर को देते हुये कहा—जब रामदास आवे तो उनकी झोली मे यह चिट्ठी डाल देना। यथा समय रामदास आये तो नौकर ने वह चिट्ठी उनकी झोली मे डाल दी। उसमे लिखा था—'महाराज! मै अपना सारा राज्य आपको सौंपता हू। आप घर-घर जाकर भिक्षा मागना छोड दे।' रामदास ने उसे पढा और चुपचाप वहाँ से चल दिये। दूसरे दिन वे शिवाजी के पास आये और वोले—बेटा तुमने अपना सारा राज्य मुझे दे दिया है। वोल अब तू क्या काम करेगा? शिवाजी ने कहा—महाराज, जो आपकी आज्ञा हो! मै तो सेवा मे सदा तैयार हू। रामदास ने कहा—यह मेरी झोली उठाओ और मेरे साथ भिक्षा माँगने चलो। यह सुन कर

शिवाजी बडे विस्मित हुये, पर वचनबद्ध थे। अत उन्होने झोली उठाई और रामदास के साथ चल पडे रामदास ने उन्हे सारे गाँव मे फिराया और अन्त मे नदी के किनारे आकर सबके साथ भोजन कराया। भोजन के बाद रामदास ने शिवाजी से कहा—बेटा, तुमने अपना सारा राज्य मुझे दे दिया है, लेकिन अब मै यह तुम्हे सौपता हूँ। तुम यह राज-काज मेरा समझ कर करना और यह मेरा भगवा कपडा भी साथ रखना, जिससे तुम्हे अपने राज्य से वैराग्य-भाव आता रहेगा। महाराष्ट्र मे आज भी उस भगवे झडे का महत्त्व कायम है। शिवाजी ने रामदास के कथनानुसार ही राज्य चलाया और उसके मालिक नही, ट्रस्टी बन कर काम किया था। हमको भी आज अपने धन का मालिक नही, ट्रस्टी बन कर रहना चाहिये। तभी हम अपने जीवन का कल्याण कर सकेगे।

४ अगस्त, १९४८

१५

शाश्वत धन

पानी बहता न हो तो वह गदा हो जाता है, उसमे से बास (दुर्गन्ध) आने लग जाती है। हवा भी बहती न रहे तो खराब हो जाती है। बन्द मकान मे जो हवा होती है वह खराब हो जाती है। इसी तरह हमारा जीवन भी अगर सच्चारित्र मे बहता हुआ न हो तो गदा हो जाता है। सडे हुए पानी की तरह उसमे से भी दुर्गन्ध आने लग जाती है। जिस मनुष्य का जीवन चारित्रहीन हो तो क्या आप उसके साथ बैठना पसद करेगे ? जिस तरह गदे पानी को कोई पीना नही चाहता है, उसी तरह चारित्रहीन मानव के पास भी कोई बैठना नही चाहता है। इसी चारित्र के पाँच अगो का हमने यहाँ वर्णन किया है। अपरिग्रह उसी चारित्र का पाँचवा अग है, जिसका कि हम यहाँ वर्णन कर रहे है।

परिग्रह यह सब पापों का मूल है। मूल को जब तक उखाडा नही जायगा तब तक डाली, फ़ल पत्ते आदि को उखाडा नही जा सकता है। अत मनुष्य को परिग्रह पर सर्व प्रथम नियत्रण करना चाहिये। तभी वह दूसरे पापो से भी छुटकारा पा सकता है।

मनुष्य ने मिल्कियत (पूंजी) एक ऐसा शब्द गढ लिया है और उसके आसपास ऐसा वातावरण बना दिया है, कि उससे मानव का सहसा छुटकारा नही हो सकता है।

एक बार पशुओ का एक बडा झुंड इकट्ठा हुआ और उसमे उन्होने 'मनुष्य मिल्कियत से बडा माना जाता है' इस विषय पर चर्चा की। उनमे से एक ने कहा—मानव भले ही मिल्कियत से बडा बना हो, लेकिन जब वह मिल्कियत के लिये जमीन खोदता है तो उसमे से क्या पाता है? कोयला और तेल ही तो उसे मिलता है। अधिक गहरा खोदता है तो चमकता हुआ कोयला, जिसे वह हीरा कहता है, उसे मिलता है। वह दरिया मे गहरा उतरता है तो मछलियो का पेट चीर कर उसमे से मोती निकाल लाता है। लेकिन वह इन सब मोती और हीरो के पाने मे कितना पाप कर डालता है? क्या इसका भी कभी उसने हिसाब लगाया है? ऐसी मिल्कियत मनुष्य को ही मुबारक हो, हम पशुओ को उसकी जरूरत नही है।

मनुष्य वासनाओ का गुलाम होता है वह दूसरो को भी इनका गुलाम बना देता है। जिसके पास मिल्कियत न हो वह उसे पशु तुल्य समझता है। लेकिन पशु कहते है, जो मिल्कियत वर्ग विग्रह का निमित्त बनती है, उसे यदि मनुष्य अपनी पूंजी समझे, तो भले ही वह समझे, हमे तो ऐसी मिल्कियत नही चाहिये। इस प्रकार पशु तो उससे बच गये, लेकिन मनुष्य ने तो आज उसे ही अपना सर्वस्व समझ रक्खा है।

[illegible] भगवान् बुद्ध के दर्शनार्थ उग्र प्रधान आया

और उनसे कहा—भगवान् ! हमारे नगर मे मिगार साहूकार बडा धनी है। उसके यहाँ अखूट धन-राशि का भण्डार है। भगवान् बुद्ध ने कहा—उग्र ! जिसको तुम धन कह रहे हो, वह सच्चा धन नही है। उसके पीछे तो कई तरह के भय लगे हुए है। चोर उसे लूट सकते है, अग्नि उसे जला कर खाक कर सकती है, और राजा उसका धन हरण कर सकता है। लेकिन मै जिसको धन कहता हू, उसमे ये भय नही है। उग्र ने कहा—भगवन् ऐसा कौनसा धन है जिसका नाश नही होता है। भगवान् बुद्ध ने कहा—मेरा धन सात प्रकार का है। श्रद्धा, शील, लज्जा, अवतृप्य, श्रुत, प्रज्ञा और त्याग ये सात प्रकार के धन ही सर्व श्रेष्ठ धन है। इनका कभी नाश नही होता है अत यही मिल्कियत वढानी चाहिये। लेकिन मनुष्य आज सुख-शान्ति के बजाय दु ख ही वढाता जा रहा है। पशुओ ने कहा—मानव रोज रोज हीरा-मोती वढाता जा रहा है, लेकिन इसके साथ वह रोज-रोज भूखमरी भी बढाता जा रहा है। इसलिये वह सुख नही दुख ही बढा रहा है। तब भगवान् बुद्ध ने कहा—पहली मिल्कियत दुख बढाने वाली है और दूसरी सुख देने वाली। अत पहली मिल्कियत छोड कर मनुष्य को दूसरी मिल्कियत वढानी चाहिये।

भगवान् बुद्ध ने सात प्रकार का धन बताया और उनमे सब से पहला धन 'श्रद्धा' को कहा। अब देखना यह है कि हमारे पास यह धन है या नही ? आज की श्रद्धा हमारी सच्ची श्रद्धा नही है। श्रद्धा यानी दृढ विश्वास। जैसे आज हमे यह विश्वास और श्रद्धा है कि अग्नि मे हाथ डालने से हाथ जल जाता है और सर्प के काटने से मनुष्य मर जाता है, वैसे ही

हमको यह भी श्रद्धा होनी चाहिये कि राग और द्वेष, विषय और कषाय मनुष्य को मार डालते हैं, अत इनसे भी बचकर रहना चाहिये। लेकिन आज के जीवन से यह सिद्ध होता है कि हमको इन पर विश्वास नही है।

श्रद्धा एक ऐसा तत्त्व है, कि मानव कितना भी बुद्धिशाली क्यों न हो, पर श्रद्धा के अभाव मे उसका जीवन विपरीत दिशा की ओर ही गति करेगा।

यूरोप मे माइकेल ऐंजिलो नामक एक चित्रकार था। उसकी चित्रकला बडी लोकप्रिय थी। उसकी लोक प्रियता को देखकर एक दूसरे चित्रकार को उससे ईर्ष्या हुई। उसने सोचा —लोग मेरा भी गुणगान क्यो नही करते हैं? क्या में चित्रकार नही हूँ? एक बार एक ऐसा चित्र बनाऊँ कि जिससे लोग माकेल ऐंजिलो को तो भूल जायँ और मैं ही लोगों की जबान पर चढ जाऊँ। यह सोचकर उसने एक स्त्री का चित्र बनाना शुरू किया। उसने देश-विदेश घूम-घूमकर सुन्दर स्त्रियो को देखा और उनके सुन्दर-सुन्दर अवयवो को देखकर अपने चित्र मे उन्हे उतारा। जब चित्र पूरा हो गया तो वह उसकी सुन्दरता का पता लगाने के लिये कुछ दूर जाकर उसे देखने लगा। चित्र मे उसे कुछ कमी दिखाई देने लगी। लेकिन कमी क्या थी? यह वह नही समझ सका। एक दिन माईकेल उसी रास्ते से जा रहा था। जब उसकी नजर उस चित्र पर पडी तो उसे वह चित्र वहुत सुन्दर लगा। लेकिन उसमे जो कमी रह गई थी वह उसे तत्काल याद आ गई। इसलिए वह उस चित्रकार के घर मे गया और उससे कहा—भाई, तुम्हारा चित्र तो वडा सुन्दर है, पर उसमे एक कमी रह गई है। चित्र-

कार ने कहा—कमी तो मुझे भी लगती है, पर क्या कमी है ? यह नही मालूम होती । माईकेलो ने कहा—तुम जरा अपनी तूलिका दो, मैं इसे ठीक कर देता हूँ । चित्रकार ने कहा—नही भाई, कही तुम मेरा चित्र विगाड दोगे तो मेरी सारी मेहनत ही वेकार हो जायगी । माईकेल ने कहा—तुम जरा अपनी तूलिका तो दो । मैं तुम्हारा चित्र खराब नही होने दूँगा । चित्रकार ने अपने चित्र की आँखो मे काली बिन्दी लगाना छोड दिया था, माईकेल ने दोनो ही आँखो मे दो टिपके लगा दिये । फिर तो वह चित्र बोलता हुआ नजर आने लगा । तव उस चित्रकार ने माईकेल से पूछा—भाई, तुम्हारा नाम क्या है ? माईकेल ने कहा—भाई, मेरा नाम माईकेल है तब तो उस चित्रकार ने माईकेल से क्षमा मागी और उससे कहा—भाई, वस्तुत तुम्ही सच्चे कलाकार हो । मैने तुम से ईर्षा कर बुरा ही किया । बन्धुओ ! हमारे जीवन मे भी श्रद्धा का स्थान आँख की काली कीकी जैसा है । जैसे आँख हो, पर उसमे काली कीकी न हो तो आँख होते हुए भी कुछ दिखाई नही देता है, वैसे ही श्रद्धा के बिना जीवन भी सुनसान होता है । श्रद्धा के बिना कोई काम पूरा नही हो सकता है । आज हम डाक मे पत्र डालते हैं, और तीन दिन के बाद वह अमुक पते पर पहुँच जायगा, ऐसा हमे विश्वास होता है । बैङ्क मे रुपये जमा करा देने पर भी हमे यह श्रद्धा होती है, कि जब चाहेगे तव वे हमे वापिस मिल जायेगे । उसी तरह हमे यह श्रद्धा भी अवश्य होनी चाहिये कि अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य का यदि हम पालन करते हैं तो इनका फल भी हमे मिलेगा ही । इसमे शका नही होनी चाहिये । लेकिन आज हमारे जीवन मे श्रद्धा

नही है। इसीलिए दो पैसे के खातिर भी हम अपने अनमोल सत्य को बेच देते हैं। हमारे शास्त्रो मे भी कहा है–'सद्धा परम दुल्लहा' श्रद्धा बडी दुर्लभ है और वही सच्चा धन है। लेकिन आज हमे इस धन पर विश्वास कहाॅ रहा है ?

भगवान् बुद्ध ने जो दूसरा धन बताया है, वह है शील। शील यानी सदाचार, जीवन का अच्छा आचरण। इसमे सत्य, अहिंसा ब्रह्मचर्य, मादक पदार्थों का त्याग आदि सभी आजाते है। मनुष्य चोरी करे या व्यभिचार करे तो उसे सदाचारी नही कहा जा सकता है। अत शील के विशाल अर्थ को समझ कर इसका पालन करना चाहिये। यह मनुष्य का दूसरा शाश्वत धन है।

तीसरा धन है–लज्जा। अर्थात् खराव काम करते हुए मनुष्य को शर्म आनी चाहिये। यह लज्जा तीसरा धन है।

चौथा है अवतृप्य यानी लोकापवाद का भय। खराब काम करते समय मनुष्य को यह भय होना चाहिये कि मै ऐसा कोई काम नही करूॅ जिससे कि लोग मेरी निन्दा करे। लोकापवाद अच्छे काम करने पर भी होता है और बुरे काम करने पर भी। लेकिन मनुष्य को दोनो ही अवस्था मे यह सोचना चाहिये, कि मै जो करता हू वह ठीक है या नही ? अगर ठीक है तो फिर लोकापवाद के भय से घवराना नही चाहिये और अपना काम करते जाना चाहिये।

जर्मनी के एक वडे तत्त्ववेत्ता के पास एक आदमी आया और बोला—भाई, तुम्हारी साधना की तो लोग वडी निन्दा करते हैं। अत तुम इसे छोड क्यो नही देते ? तत्त्ववेत्ता ने अपने सिर पर हाथ फिराते हुए कहा—भाई, कुदरत ने मुझे

दिमाग ही दिया है, उसके बजाय यदि उसने मुझे खूटी दी होती तो मै दूसरे के अभिप्राय पर भी लटक जाता। दुःख है कि मुझे वह रूप नही मिला। मुझे तो विचार-शक्ति मिली है, अत सारासार का निर्णय तो मै ही कर सकता हूँ। स्वामी विवेकानद ने भी एक बार कहा था—दुनिया भले ही तुम्हारे अच्छे काम की निंदा करे, पर तुम उसकी कुछ भी परवाह मत करो और अपना काम किये जाओ। यह लोकोपवाद चौथा धन है।

पाचवा श्रुत धन है—यानी चाहे जिस प्रसग मे भी ज्ञान का सतुलन कम ज्यादा नही होने देना और विवेक को सदा क़ायम रखना श्रुत है, दूसरे की भलाई के लिये क्या करना चाहिये ? यह सोचना श्रुत है। श्रुत का अर्थ केवल बाह्य शास्त्रो को याद कर लेना या बिना समझे बूझे ही बोलते जाना मात्र ही नही, पर विवेक को सतत जागृत रखना श्रुत है। दूसरो की सेवा मे सुख है—इसको याद रखना श्रुत है। यही श्रुत धन है।

छठा धन है प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि। आपत्ति के समय मे बुद्धि को जागृत कर प्राप्त सकट से छुटकारा पाना प्रज्ञा है।

सातवा धन है त्याग। उपरोक्त सब धन हो, पर स्वार्थ-त्याग की भावना न हो तो कोई भी वस्तु उपयोगी नही हो सकती है। जब तक मनुष्य त्याग का आचरण नही करेगा तब तक किसी का कल्याण नही हो सकता है। त्याग के बिना गाधीवाद या समाजवाद कोई भी वाद क्यो न हो, किसी से भी कल्याण नही हो सकता है। इसलिये भगवान् बुद्ध ने आखिरी धन त्याग को कहा है। इसके बिना कोइ भी सिद्धान्त

न तो जीवन मे उतारा जा सकता है और न दूसरो का कल्याण ही किया जा सकता है।

श्रद्धा भी त्याग से ग्रहण की जा सकती है। त्याग के बिना कुछ भी सारयुक्त नही है। अत भगवान् बुद्ध ने त्याग को आखिरी धन कह कर उसकी महत्ता बताई है। उक्त सात प्रकार के धन ही शाश्वत धन हैं, दूसरे सब नाशवान् जड धन है। शकराचार्य ने कहा है —

अर्थमनर्थं भावय नित्यम्

अर्थ को अनर्थकारी ही समझो। दुनियां की मिल्कतो ने जितने अनर्थ आज तक किये है, उतने दुसरो ने नही किये हैं। शंकराचार्य का यह वाक्य बड़ा ही सारयुक्त है। अत भगवान् बुद्ध ने उग्र से कहा—हे उग्र! अगर तू अपना कल्याण चाहता है तो ऐसे अनर्थकारी धन का त्याग कर और मेरे इस शाश्वत धन को ग्रहण कर। इससे तू अपना इहलोक और परलोक दोनो को सुधार सकेगा। हम भी अगर इन शाश्वत धन-सम्पत्ति का सग्रह करेंगे तो अपना जीवन सुखी बना सकेंगे।

५ अगस्त, १९४८

१६

परिग्रह के नये रूप

डाक्टर यो कहते हैं कि हमारे शरीर मे भले ही कितनी बीमारिया हों, पर जब तक अपना हृदय मजबूत हो, तब तक उस मनुष्य को किसी तरह का भय नही रहता। लेकिन यदि व्याधि न हो और हृदय कमजोर हो तो उस मनुष्य का जीवन खतरे मे रहता है। हमारे जीवन मे भी चारित्र हमारा हृदय है। मनुष्य भले ही धनवान् या विद्वान् हो, पर उसका चारित्र रूपी हृदय सुरक्षित न हो तो उसकी जिन्दगी भी खतरे में समझनी चाहिये। अत जैसे हमारे शरीर मे हृदय का स्थान महत्त्वपूर्ण है, वैसे ही हमारे जीवन मे चारित्र का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है। इस चारित्र के पाच अग हैं, जिनको अन्य धर्मों ने भी अहिंसा 'सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यमपरिग्रह' के नाम से माने हैं। अपरिग्रह उस चारित्र का पाँचवा अग है, जिसका अर्थ है जड वस्तुओ का सग्रह नही करना। यो तो हमारा शरीर भी जड़ है और इसको चलाने के लिये दूसरी जड वस्तुओ की भी ज़रूरत रहती है, लेकिन जीवन पूर्ति के हद तक ही, इससे अधिक का सग्रह करना परिग्रह है।

मानव आज धन को नही खा सका है, पर धन मनुष्य को खा गया है। क्या धन हमारी मनुष्यता हजम नही कर गया है? इस धन से जब तक दूर नही रहा जाय तब तक अहिंसा सत्य आदि का पालन नही किया जा सकता है। अत. जहाँ

तक जीवन मे परिग्रह रहेगा वहाँ तक अहिसा सत्य और अचौर्य की बुनियाद नही डाली जा सकेगी। क्योकि इनका पाया ही अपरिग्रह है। अपरिग्रह के पाये के बिना अहिसा और सत्य का महल कदापि नही बनाया जा सकता है।

अन्याय और हिंसा से जो चीज इकट्ठी की जाती है उससे हमारी बुद्धि ही नही बिगडती, जिसके पास भी वह जाती है उसकी बुद्धि भी बिगड जाती है, लाभ तो उससे कुछ होता ही नही है।

एक अब्बु-अब्बास नामक मुसलमान भाई था, जो बडा सीधा-सादा जीवन व्यतीत करता था। वह टोपियों को सीकर अपना गुजारा चलाता था। रोज़ वह एक टोपी सीकर दो पैसे लेता था, जिसमे से एक पैसा तो वह दान मे देता था और दूसरे पैसे से अपना गुजारा कर लेता था। वह जमाना ही ऐसा था कि उस समय एक पैसे मे भी गुजारा चल जाता था अब्बु अब्बास जब अपनी एक टोपी बेच देता था तब वह दूसरी टोपी बनाता और उससे भी वह दो पैसे लेता था। जिसमे से एक पैसा दान मे दे देता और दूसरे से अपना निर्वाह करता। ऐसा वह रोज-रोज किया करता था। बन्धुओ, वह जाति से तो मुसलमान था, पर क्या उसे अपरिग्रही नही कहा जायगा? इतना तो कहना ही पडेगा कि उसे हमारे अपरिग्रह व्रत का ज्ञान था। उसका एक दूसरा सबधी बडा धनवान था। उसने अपना सारा धन अनीति से सग्रह किया था। लेकिन था वह बडा जिज्ञासु। एक दिन वह अब्बु अब्बास के पास आया और बोला—भाई, मुझे कुछ रुपयो का दान करना है, अत जिन्हे तुम कहो उन्ही को

मैं यह दान दूँ। अब्बु अब्बास ने कहा—भाई, तेरा विचार तो अच्छा है, लेकिन तेरा यह पैसा अनीति का है अनीति का पैसा जिसके पास होता है वह उसकी बुद्धि भी भ्रष्ट करता है और जिसके पास जाता है उसकी बुद्धि भी बिगाड देता है। मेरी इस बात पर अगर तुमको विश्वास नही आता हो तो भले ही तुम अपने रुपयो का दान दो, लेकिन फिर उसका परिणाम अवश्य देखना। वह पुरुष अब्बु अब्बास की बात सुन कर बाजार मे आया और वहाँ उसने एक गरीब अन्धे भिखारी को एक मोहर दान मे दी। अन्धे भिखारी ने उससे शराब पी और वेश्या के यहाँ जाकर उसको खर्च कर दिया। बन्धुओ, शकराचार्य ने जो यह कहा है—'अर्थमनर्थ भावय नित्यम्, बिल्कुल यथार्थ कहा है। ऐसा अनर्थकारी धन जिसके पास होता है। उसकी बुद्धि तो बिगाडता ही है, साथ ही जिसके पास जाता है उसकी बुद्धि भी बिगाड देता है। जब उस पुरुष ने उस अधे भिखारी के काम को देखा तो उसने अब्बु अब्बास के पास आकर कहा—भाई, तुमने बिल्कुल ठीक बात कही थी। मेरे पैसे ने दूसरे की भी बुद्धी खराब ही की। तब अब्बु अब्बास ने उसे अपना एक पैसा दिया और कहा—लो, अब इसे तुम किसी गरीब को देना और फिर देखना कि वह क्या करता है? वह पैसा लेकर बाहर निकला तो चलते,चलते एक ऐसे भूखे पुरुष को देखा, जो एक मरे हुए पक्षी को देख कर खाने की सोच रहा था। जब उसने वह पैसा इस भूखे पुरुष को दिया तो वह बडा खुश हुआ और बोला—भाई, ईश्वर तुम्हारा भला करे। मै तो अभी इस मरे हुए पक्षी को खाने की सोच रहा था, पर अब इस पैसे से चने लेकर खाऊँगा

और भविष्य मे मजदूरी करके जीवन-निर्वाह करूँगा। जब उसने यह बात भी अब्बु से आकर कही तो अब्बु अब्बास ने कहा—अन्याय और अनीति का पैसा जहाँ भी जाता है अन्याय और अनीति ही पैदा करता है।

आज हम भी अपनी अनीति का पैसा छोड कर चले जाते है। लेकिन उसका प्रभाव हमारी सन्तान पर कैसा पडता होगा, इसका भी क्या कभी विचार किया है ? लाभा ल्लोभ प्रजायते" लाभ से लोभ बढता ही है। अत हमारा यह पैसा हमारे लिये तो दु खदायी होता ही है,, पर जिसको दिया जाता है उसका भी नाश करता है। इसीलिये शास्त्रकारो ने कहा है—"लोभो सव्व विणासणो' लोभ सबका विनाशकारी है। अत परिग्रह का त्याग करना सबसे पहले आवश्यक है। ज़रूरत से ज्यादा का त्याग करना ही अपरिग्रह है।

जड वस्तुओ का सग्रह करना तो परिग्रह है ही, साथ ही साथ साम्प्रदायिकता और राष्ट्रीयता का पूजन भी एक तरह का परिग्रह ही है। यह मेरा सम्प्रदाय है और साधु ही पूजनीय है, ऐसा समझना भी परिग्रह ही है। साम्प्रदाय भले ही एक नही अनेक हो, पर साम्प्रदायिकता हमारे मे नही होनी चाहिये। जहाँ पक्षपात है वही पक्षघात भी है, जो एक न एक दिन मरणासन्न कर ही देता है। अत ऐसा पक्षपात होना भी परिग्रह है।

आज जैसे हमारे समाज मे धन का परिग्रह है वैसे ही इस साम्प्रदायिकता का भी परिग्रह घर कर गया है। इसको दूर करने के लिये भगवान् ने स्याद्वाद का मार्ग बतलाया है। उन्होने कहा है—तुम सबको अपनी दृष्टि से ही नही, उनकी

दृष्टि से भी देखो। तुम्हारे माता-पिता तुम्हारे लिये पूज्य हैं, पर वे ही दूसरो के लिये भी पूज्य हो, यह कैसे कहा जा सकता है? तुम्हारे नियम तुम्हारे लिये ठीक हो, पर वे ही दूसरो के लिये भी उपयोगी हो, यह कोई नियम नही है। कोई स्वाध्याय से अपनी आत्म शुद्धि करे, पर दूसरा माला फिरा कर भी शुद्धि कर सकता है। अत. साम्प्रदायिकता का परिग्रह भी नही रखना चाहिये।

आज रूस की राजधानी मास्को की दीवारो पर लिखा हुआ है कि "जनता के लिए धर्म अफीम की गोली के समान है।" क्या सचमुच धर्म अफीम की गोली है? धर्म नही, पर धर्म के नाम पर फैली हुई साम्प्रदायिकता वस्तुत अफीम की गोली हैं। धर्म बुरा नही, लेकिन धर्म के नाम पर होने वाला लड़ाई झगडा बुरा है। धर्म के रूप अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य आदि को कोई खराब नही कहता है। सब इनको किसी न किसी अश मे मानते ही हैं। लेकिन इनके नाम पर होने वाली साम्प्रदायिकता बुरी है—ज़हर है। वह अफीम की गोली है। अत धर्म का नही, पर उसका त्याग करना जाहिये।

राष्ट्रीयता भी इसी तरह का एक परिग्रह है। अपने राष्ट्र के कल्याण के लिये जैसे चाहे वैसे कुकर्म कर सकते हैं, ऐसा मानना भी परिग्रह है। धर्म का परिग्रह अगर अफीम है तो राष्ट्रीयता का परिग्रह शराव है आज अणुबम की जो सृष्टि हुई है वह इसी राष्ट्रीयता के परिग्रह से हुई है। मनुष्य का ध्येय केवल अपने राष्ट्र के लिये ही नही होना चाहिये' पर उसमे विश्व-बधुत्व की कल्याणकारी भावना का समावेश होना चाहिये। अत अपने देश के कल्याण के लिये दूसरो का

अनर्थ करना भी परिग्रह है ।

किसी के पास पैसे का परिग्रह न हो, पर साम्प्रदायिकता का या राष्ट्रीयता का परिग्रह हो तो वह अपना कल्याण नही कर सकेगा । अतः पैसा के परिग्रह के साथ-साथ जब हम साम्प्रदायिकता और राष्ट्रीयता के परिग्रह से भी अलग होगे तभी हम अपना कल्याण कर सकेगे ।

प्राय. देखा यह जाता है कि जिनके पास पैसा नही होता वे अपने को अपरिग्रही समझ लेते हैं। लेकिन उनका यह समझना ठीक नही हैं । पैसे नही होने से कोई अपरिग्रही नही कहा जा सकता है । जब तक हृदय से धन-प्राप्ति की कामना दूर न हो तब तक परिग्रही होते हैं । धनवान तो अपना धन तिजोरी मे रखते है पर गरीब का धन उसके हृदय मे रहता है । अत जब तक इच्छाओ का अन्त न हो जाय, तब तक वह परिग्रही ही कहा जायगा । इस प्रकार चारो तरफ से विचार करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, कि धन का सग्रह न करना, दूसरो के प्रति असहिष्णुता न रखना, स्याद्वाद का अनुगमन करना, यानी 'ही' के बदले 'भी' का प्रयोग करना और अपने देश का ही नही सबका भला सोचना ही अपरिग्रह व्रत है । ऐसी त्रिविध कल्याण-भावना जब हमारे हृदय मे होगी तभी हम अपरिग्रह का पालन कर सकेंगे । और अपना जीवन स्थिर रख सकेगे । अपरिग्रह हमारे पूर्वोक्त चार व्रतो की दीवारो का पाया है । अत इस अपरिग्रह पर यदि हमारे समाज का जीवन आश्रित होगा तो हम इस दुनिया मे टिके रह सकेंगे और दीर्घजीवी बनकर जन-कल्याण कर सकेगे ।

६ अगस्त, १९४८

१७

शान्ति कहाँ है ?

दुनिया मे हर एक मनुष्य या प्राणीमात्र शान्ति चाहता है। वह शान्ति के लिये अथक प्रयत्न करता है। सुख के लिये वह कोई कसर उठा नही रखता है। लेकिन वह सुख है कहाँ और मिलता कैसे है ? यही हमे विचारना है। सुख और शाति को पाने के लिये, हमारे इतने प्रयत्न होने पर, हमको सुख मिला क्यो नही ? इसका यही कारण है कि शान्ति कही है ? यह हम जानते नही है। कई एक जड बुद्धि वाले मनुष्य पैसो मे सुख समझते हैं। लेकिन उसको इकट्ठा करने पर भी उन्हे सुख नही मिलता। कोई सत्ता मे शान्ति समझते है पर सत्ता पाकर भी उन्हे शान्ति नही मिलती। इस प्रकार मनुष्य बाह्य वस्तुओ मे सुख की खोज करता है, लेकिन उसे वह मिलता नही है। अन्ततः वह उससे वचित ही रहता है। सच है, जो वस्तु मनुष्य के हृदय मे रहती हो वह भला बाहिर की वस्तुओं मे मिल भी कैसे सकती है ?

एक गरीब बुढिया अपनी झोपडी मे रहती थी। वह इतनी गरीब थी कि उसके पास दीपक जलाने के लिये भी तेल नही था। एक दिन जब वह अधेरे मे बैठी-बैठी अपनी धोती सी रही थी तो सीते-सीते उसकी सुई नीचे गिर पडी। अधेरा होने से उसको वहाँ अपनी सुई नजर नही आई। तब वह अपनी

झोपडी से निकल कर म्यूनिसिपैलिटी के लैम्प के नीचे गई और वहाँ वह अपनी सुई खोजने लगी। इतने मे उधर से एक भला आदमी निकला। उसने बुढिया से पूछा—मा जी, तुम यहाँ क्या ढू ढ रही हो ? बुढिया ने कहा—मेरे घर मे सुई खो गई है, लेकिन वहाँ रोशनी नही होने से मै यहाँ ढू ढ रही हूँ। आदमी ने कहा—माजी, तुम्हारी सुई तो तुम्हारे घर मे गिरी है, यहाँ ढू ढने से कैसे मिलेगी ? बधुओ ! जैसे बुढिया भूल कर रही थी वैसे ही हम भी आज भूल कर रहे हैं। जो सुख हमारे भीतर ही है उसे हम बाहिर ढू ढ रहे हैं। तब वह कैसे मिल सकता है, यदि हमे शान्ति का अमृतपान करना है तो सद्गुणो की गिरिमालाओ के पास जाना ही चाहिये। वह शान्ति का अमृत धन, सत्ता या विषय-विलास मे नही है।

हम किसी पर क्रोध करे तो उससे पहले अपने को ही दु ख होता है। जो आग दूसरो को जलाती है, उसे अगर हम अपने हाथो मे लेकर दूसरे पर फेंके, तो दूसरो का जलाने से पहले वह हमारे ही हाथ जलायेगी। इसी तरह विषय-कषाय आदि दूसरो को तो दु ख पीछे देते हैं पर उससे पूर्व हम को ही दु खी करते है।

हमारे सुख या शान्ति का झरना धन मे नही है। शान्ति का निर्मल जल तो अपने हृदय मे ही होता है। प्रमोद आदि सद्गुणो से ही मनुष्य उसका पान कर सकता है और अपना जीवन उन्नत एव सुखी वना सकता है। मानव की आकृति होने पर भी यदि उसमे सद्गुण न हो, तो उसे मानव नही शैतान समझना चाहिये। सद्गुणो के विकसित होने पर ही मानव अच्छे से अच्छा वन सकता है और अपने चरम ध्येय तक पहुँच

सकता है। अग्रेजी मे कहा है–'भलाई का बदला बुराई से देना हैवानियत है। इसमे पाशविकता या पैशाचिकता समाई हुई रहती है।' तो फिर मानवता किसका नाम है ? इसका उत्तर यह है, कि जो बदला भी भलाई से लेता हो, लेकिन जो बुराई का बदला भी भलाई से देता हो, वह दिव्यत्व है। इसी मे ईश्वरत्व का अश भी छिपा हुआ रहता है। भगवान् महावीर को सगम ने कैसे भीषण कष्ट दिये थे ? भगवान् महावीर ने उन कष्टो को तो सहन किया ही था, लेकिन इसके फलस्वरूप सगम को कितना कष्ट उठाना पडेगा, यह सोचते हुए वे रो भी पडे थे। सगम के दिये हुए कष्टो को वे हसते-हसते सह गये, पर भविष्य मे होने वाले सगम के कष्टो को वे नही देख सके। उनकी आँखो से बरवस आँसू निकल ही पडे। यही ईश्वरत्व है। ईशु ख्रिस्त को जब सूली पर लटकाया जा रहा था, तब उसने कहा था—

Oh ! father forgive them, they do not know what they do.

'हे ईश्वर ! तू इन लोगो को क्षमा कर। इन्हे अपने कर्मों का भान नही है। तू इनके गुनाहो को माफ करना।'

इस प्रकार बुराई का बदला भी भलाई से देना दिव्यत्व कहा जाता है और यही ईश्वरत्व का अश भी है। मानवात्मा मे जब यह दिव्यत्व समा जाता है तब वह परमात्मा बन जाता है।

पत्थर फेकने पर भी वृक्ष हमे फल ही देता है। एकेन्द्रिय वृक्ष का भी जब यह हाल है तो फिर पचेन्द्रिय मानव का यदि कोई बुरा करे तो बदले मे उसे कितनी भलाई करनी

चाहिये ? बुराई करने पर भी जो भलाई करता है वही ईश्वरत्व को प्राप्त कर सकता है। रूप से मानव होते हुए भी यदि हममे सद्‌गुण न होगे तो हम मानव नही, दानव ही कहे जायंगे ।

मनुष्य आकृति से जन कहाते है। लेकिन सद्‌गुणो से सज्जन, और अधिक गुणो का उपार्जन करने पर वे महाजन बनते है, तथा दुर्गुणो के होने पर दुर्जन भी बनते है। अब हमे देखना यह है, कि आज हम जन से सज्जन और महाजन बनने के बजाय कही दुर्जन तो नही बन रहे हैं ? लेकिन सज्जन और महाजन तो उसे कहते है जो बुराई का बदला भी भलाई से देते हैं। कई मनुष्य तो ऐसे भी होते हैं जो भलाई करने पर भी बुराई करते हैं। उन्हे जन कहे या दुर्जन ? जैसे कोई मनुष्य सीढियो पर चढ कर खडा हो तो उसे ऊपर या नीचे जाना ही होगा। वहाँ वह नही रह सकता है। इसी तरह हम भी जन की सीढी पर खडे हैं। ऊपर चढेंगे तो सज्जन बनेंगे, नही तो दुर्जन होगे ही। घडी का काटा जैसे चाबी देने पर रुकता नही है और काल का चक्र सदा चलता रहता है रुका नही रहता, उसी भाति मानव की गति भी रुकी नही रहती। अगर वह ऊचा चढता है तो सज्जन बनता है, अन्यथा दुर्जन तो होगा ही। क्योकि मानव की गति तो जब तक सास है तब तक होने की ही है अत उत्थान नही तो पतन अवश्यम्भावी होगा ही।

हम लोगो को आज सब तरह के साधन सहज ही प्राप्त हुए है अमेरिका के लोगो को तो मीलो घूमने पर सद्‌गुरु के दर्शन होते हैं। लेकिन हमे यह सहज ही मिले हैं। इन

सहज ही मिले हुए साधनो का उपयोग कैसे करे ? यह समझ लेना आवश्यक है। तभी उनसे पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सकता है।

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर जब चीन गये थे तब उनका वहाँ बडा आदर-सत्कार किया था। चीन के लोगो ने भारतीय वाड्मय का अध्ययन किया था और उससे उन्हे जो अनुभव हुआ, उसके आधार से उन्होने कवीन्द्र रवीन्द्र से कहा –'तुम्हारे देश के मानव कभी चोरी नही करते है, लड़ते नही हैं, हिंसा नही करते है, झूठ नही बोलते है, अहा ! तुम्हारे देश के मानव कितने पवित्र होगे ? यह सुनकर रवीन्द्र की आँखो मे से आँसू निकल पडे थे। उन्होने कहा था–'भाई हिन्द देश जैसा तुम कह रहे हो वैसा आज नही रहा है। मेरे देश के मानव आज झूट भी बोलते हैं, और चोरी भी करते है और दुराचार भी करते है।'

बन्धुओ, जिस देश के प्राचीन शास्त्रो को पढ़ कर मनुष्य इस तरह का उच्च विचार करता है, उस देश के लोग अगर इन सहज ही मिले हुए साधनो का सदुपयोग नही करे, तो यह कैसी विस्मयजनक बात होगी ? क्या यह चिन्तामणि रत्न को काँच का टुकडा समझकर फेंक देने जैसी बात नही है ? अत हमे यह सदा याद रखना चाहिये की हम जन से सज्जन और महाजन बने। बुराई करने वाले का भी भला ही करे। किसी ने हमे गाली भी दी तो उससे हमारा क्या नुकसान होने वाला है ? नुकसान तो उसी को हुआ जिसने हमे गाली दी। अत यदि हम जन से सज्जन बनना चाहते हैं तो हमे गाली देने वाले को भी आशीर्वाद ही देना चाहिये।

बाईबल मे कहा है—Bless them, those eurse you ,जो तुम्हे शाप दे, उसे भी तुम आशीर्वाद दो।' Love your encmies 'तुम अपने शत्रु से भी प्रेम करो।' यही आदर्श हमारे 'मित्ति मे सव्व भूएसु' मे अंकित किया गया है। यदि हमारे साता वेदनीय कर्म का उदय होगा तो क्या किसी के शाप देने पर भी बुरा हो सकेगा ? और यदि असाता का उदय होगा तो क्या वह किसी से टाला जा सकेगा। हमारे हृदय मे ऐसा दृढ विश्वास होगा तो हम जन से सज्जन बन सकेगे। लेकिन आज ऐसी दृढ श्रद्धा कहाँ है। श्रद्धा होती तो आज हम बुरे के साथ भी भला ही करते होते। अनार्यों ने भी जब यह कहा है कि 'तुम्हारे साथ जो बुरा करे उसका भी तुम भला करो।' तो फिर अपने को जो आर्य कहते हैं उनको तो उससे भी ऊपर उठना चाहिये। तभी उनका आर्य कहना और होना सार्थक है। यदि हम भला नही कर सकें तो बुराई के बदले बुरा तो नही करे, किसी का नुकसान तो नही करे। हमारी तरफ से किसी का कल्याण हो या न हो, पर हमारी तरफ से किसी को कष्ट नही हो—ऐसी भावना तो ज़रूर होनी चाहिये। यही जन की कोटि है। मनुष्य महाजन या सज्जन न बने, पर उसे 'जन' तो बने रहना चाहिये। जन से दुर्जन की कोटि मे तो नही जाना चाहिये।

हमे आज इतने साधन मिले हैं। पुण्यशाली मनुष्यो को जो साधन मिलते है वे आपको मिले हैं। इनका सदुपयोग कर जब हम जन की कोटि से महाजन और सज्जन की कोटि मे पहुचेंगे तभी वास्तविक शान्ति और सच्चे जीवन-सुख को प्राप्त कर सकेंगे।

७ अगस्त, १९४८

: १८ :

सम्यक्-चारित्र

एक मकान का पाया बहुत गहरा और मजबूत हो, दीवारें चौडी और संगीन हो, रग-रोगन सुन्दर किया गया हो, चारों तरफ खिडकियाँ (झरोखे) बहुत हो, पर ऊपर की छत न हो तो ? सब सुन्दर और मजबूत हो, पर जैसे छत के बिना सारा मकान बेकार होता है, वैसे ही आचार के बिना—सम्यक् चारित्र के बिना ज्ञान भी व्यर्थ होता है। ज्ञान की दीवार भले ही बडी मजबूत और गहरी हो, पर आचार की छत न हो तो वह बेकार होती है—व्यर्थ होती है। रावण बडा बली था, पराक्रमी था। उसके बल के सब कायल थे। लेकिन फिर भी वह आज निन्दा का पात्र क्यो बना हुआ है ? सदाचार की उसमे खामी (कमी) थी, इसीलिये आज वह निन्दा का पात्र बना हुआ है। जरा सोचिये कि आज रामचन्द्र तो सब अपने लडके का नाम रखते हैं, पर रावण क्यो नही रखते ? इस प्रश्न के मूल मे भी अगर हम जावेंगे तो सदाचार की भावना ही पावेंगे, जिसके वशीभूत होकर ही मानव ऐसा करते हैं।

हमारे समाज मे आज मनुष्यो के दो भाग किये जा सकते है—१ ज्ञानवान्—चर्चा करने वाले और बाल की खाल

उतारने वाले, जिनको अध्यात्म-शास्त्रो का ज्ञान होता है। २ युवक वर्ग—जिसमे युक्त ज्ञान तो नही होता है, पर जो आज कल के भूगोल-खगोल शास्त्र के ज्ञाता होते है। दोनो (वर्ग) को ज्ञान तो है, लेकिन सब कुछ जानते हुए भी अगर हृदय का ज्ञान नही हो तो ऐसा ज्ञान निस्सार होता है। हमारे उक्त दोनो ही प्रकार के ज्ञान भी ऐसे ही निस्सार हैं।

हम भोजन करे, पर उसमे 'विटामिन' नही हो तो क्या वह हमारे शरीर को पुष्ट कर सकेगा ? इसी तरह भले ही किसी को भगवती सूत्र के भागो का बहुत अच्छा ज्ञान हो, पर जीवन मे उसका आचार-आचरण न हो तो वह आत्मा को पुष्ट नही कर सकेगा। कर भी कैसे सकेगा, जब कि उसे आचरण द्वारा पचाया ही न गया हो ?

कवीन्द्र रवीन्द्र ने एक वार कहा था कि 'मानव आध्यात्मिक शास्त्र की तो बडी-बडी बाते करता है, पर जब उसकी तमाखू की डिबिया गुम हो जाय तो वह लडाई लडने पर उतारू हो जाता है, और उसके लिये आकाश-पाताल एक कर देता है।'

हम रोज-रोज शास्त्रो को पढे और सुने, लेकिन बाजार मे जाकर ग्राहको से लडे—झगडे तो इससे क्या लाभ हो सकता है ? ऐसा ज्ञान तो उल्टे घडे पर पानी डालने जैसा या विटामिन रहित भोजन करने जैसा है। भले ही हमे भगवती के भागे याद न हो, पर सत्यं वद, क्षमा कुरु, धर्मंचर आदि वाक्य याद हो और ये अपने जीवन मे पूरे-पूरे उतरे हुए हो तो समझ लेना चाहिये कि हम बहुत बडे ज्ञानी बन गये है। लेकिन आज तो यह समझा जाता है कि जो धर्म की चर्चा अधिक कर सकता हो,

वही सबसे बडा धर्मज्ञ माना जाता है। एक तरफ भगवती के भागो का विवेचन करने वाला, समयसार का निचोड कर देने वाला या गीता, कुरान और पुराण की रटन करने वाला एव चर्चा मे सबको परास्त कर देने वाला पुरुष हो और दूसरी तरफ एक सीधा-साधा ग्रामीण पुरुष हो, जिसने कभी इनके नाम भी न सुने हो, पर वह कभी क्रोध नही करता हो, असत्य नही बोलता हो, लडाई झगड़ा नही करता हो, तो कहिये—आप किसको धर्मात्मा कहेगे ? क्या समयसार का निचोड कर देने वाले को या जीवन मे सत्य का आचरण करने वाले को ? समयसार का निचोड कर देने वाला पुरुष भी अगर आचार मे धर्म का पालन नही करता है, तो उसका वह ज्ञान व्यर्थ होता है—सार रहित, भारवाही होता है। क्योकि आचार में आने पर ही वह ज्ञान सारयुक्त और फल-दायी बनता है। अत आचार के पालने के लिये निम्न पाच बातो का सदैव ध्यान रखना चाहिये। इनसे मनुष्य की बुद्धि स्थिर होती है और वह श्रेय की तरफ आगे बढती है। उन पाच बातो मे सबसे पहली बात है—

जराधर्म—मनुष्य सदा यह विचार करता रहे कि मुझे वृद्धावस्था आने वाली है। इसका विचार करने से मनुष्य के हृदय मे जो तारुण्य का मद होता है वह निकल जाता है।

दूसरी बात है—व्याधि धर्म—शरीर व्याधियो का घर है, न जाने कब कौनसी बीमारी खड़ी हो जाय ? अत मनुष्य को सदा इसका खयाल होना चाहिये। इससे वह अपनी तन्दुरुस्ती कायम रख सकता है, बीमारो को देखने से उसे सेवा का भाव पैदा हो सकता है और अपने शरीर से ममत्त्व भी छूट सकता है।

तीसरी बात है—मरण धर्म—मनुष्य यह समझे, कि मुझे आखिरकार तो अपना कुटुम्ब छोडकर जाना ही है। भलें ही आज नही तो कल या दस साल बाद, लेकिन जाना तो है ही। फिर इतने अनर्थ मै क्यो करूँ ? ऐसा अगर वह विचार करे तो इससे बुरे काम सब रुक सकते हैं। जब मनुष्य यह समझ जाय कि मुझे कुछ काल तक ही जीना है तो फिर क्या वह किसी से लडेगा-झगड़ेगा ? अत. इससे अनिष्ट दूर किये जा सकते है।

चौथी बात हैं—प्रिय वस्तु का वियोग—मनुष्य यह समझे कि प्रिय वस्तुओ का वियोग तो होने का ही है, फिर मै उसमे दुःख या सुख क्यो समझूँ ? शास्त्र मे लिखा है—एक वार चण्डप्रद्योत राजा ने उदायी राजा के साथ युद्ध किया। युद्ध करने का कारण यह था कि उदायी राजा की एक दासी बडी सुन्दर थी, जिसको पाने के लिये ही चण्डप्रद्योत ने उदायी राजा पर आक्रमण किया था। इसी तरह कौणिक राजा ने हार और हाथी के लिये अपने नाना चेटक से युद्ध किया था। लेकिन जव मानव को इस वात का खयाल हो कि प्रिय वस्तु का वियोग तो होगा ही, तो फिर क्या वह ऐसे अनिष्ट कार्य कर सकेगा ? अत प्रिय वस्तु का वियोग भी अवश्यभावी है, ऐसा सदैव खयाल रखना चाहिये।

पाँचवी वात है—कर्मफल—मनुष्य यह सदैव याद रक्खे कि अपने कर्मों का फल मुझे ही भोगना है। कुटुम्व, परिवार या दूसरा कोई उसे नही भोगेगा। इस प्रकार यदि हम इन पाँचो वातों का स्मरण रक्खे तो पाप कार्य से वच सकते हैं। भगवान् बुद्ध के समय की बात है—

राजा प्रसेनजित, एक दिन अपनी सवारी सजा कर जा रहे थे। चलते-चलते वे जब भगवान् बुद्ध के सामने आये, तब भगवान् बुद्ध ने उनसे पूछा—राजन्! आज कहाँ जा रहे हो?

राजा ने कहा—मेरे राज्य मे कोई सिर ऊँचा करके तो नही देख रहा है—यही देखने के लिये मै जा रहा हू। भगवान् बुद्ध ने कहा—राजन्, अगर तुम्हारे ऊपर हिमालय जैसा महान् पर्वत टूट पडे और यह कहे कि तुम्हे जो करना हो कर लो तो उस समय तुम क्या करोगे?

राजा ने कहा—उस समय मैं धर्म के सिवाय कुछ नही करूँगा।

बुद्ध ने कहा—राजन्! जरा-मरण और व्याधि का महान् पर्वत तेरे सिर पर मडरा रहा है। तू उनसे बचने का प्रयत्न कर। नगर मे कौन मनुष्य सिर उठा कर तुझे देख रहा है, यह पीछे देख। पहले तू अपने सिर पर मडराते हुये शत्रुओ से बच। भगवान् बुद्ध ने इनसे बचने के लिए उसे सदाचार का उपदेश दिया था। भगवान् महावीर ने भी क्या हमे यह नही कहा है कि 'जन्म-जरा और व्याधि ससार की आग है! सारा ससार इस आग मे जल रहा है। अत. तुम्हे जो वस्तु चाहिए वह शीघ्र निकाल लो।' लेकिन आज आप कौनसी वस्तु निकाल रहे है? जो वस्तु नाशवान् है, आज आप उसी को निकाल रहे है। लेकिन नाशवान् वस्तु भी क्या कभी आपके साथ आ सकेगी? अत आप शाश्वत वस्तु—सदाचार और धर्म को निकालिये, जो कि अन्त समय तक आपके साथ रहने वाली है, धन की तरह नष्ट हो जाने वाली नही। अतः अगर हम इन शाश्वत वस्तुओ का सग्रह करेंगे तो हम अपना

कल्याण कर सकेंगे। जरा, व्याधि, मरण, प्रिय-वियो और कर्मफल ये पाँच वस्तुएँ तो मानव-जीवन के साथ सद से लगी हुई हैं। लेकिन इनके लिये यदि हम किसी तरह व अनर्थ नही करे तो यही ज्ञान मानव को उन्नत बना सकता है

आज हम क्रिया तो वहुत करते है, पर उनका असर क्यं नही होता है ? इसका कारण भी यही है कि हम खुराक तं खाते है, पर 'विटामिन' रहित खाते है। हमारे जीवन मे सदाचार का अभाव है। इसीलिये हमारी क्रियाओ का असर बिल्कुल नही होता है। अत सदाचार को अपने जीवन मे अवश्य उतारना चाहिए। पुराने ज़माने की एक बात है कौरव और पाँडव द्रोणाचार्य के पास पढते थे। एक दिन उन्होने सब लड़को को यह पाठ दिया कि क्षमा कुरु—क्षमा धारण करो। दूसरे दिन सब लडको ने यह पाठ याद कर गुरुजी को सुना दिया, लेकिन युधिष्ठिर ने अपना पाठ नही सुनाया। तीसरे दिन भी जब आचार्य ने उससे पूछा तो युधिष्ठिर ने कहा—अभी मुझे अपना पाठ याद नही हुआ है। इस प्रकार ४-५ दिन बीत गये, लेकिन युधिष्ठिर ने अपना पाठ नही सुनाया। तब द्रोणाचार्य उस पर वहुत क्रोधित हुए और युधिष्ठिर को खूब मारा-पीटा, लेकिन युधिष्ठिर शान्त रहा, उसके मन मे तनिक भी क्रोध नही आया। तब उसने कहा—आचार्य, अब मुझे यह पाठ याद हो गया है। द्रोणाचार्य ने कहा—इतने दिनो तक तो नही हुआ था और अब कैसे याद हो गया ? युधिष्ठिर ने कहा—मै इसकी कोशिश कर रहा था कि कोई मुझे मारे-पीटे या क्रोध करे, पर मै शान्त रहूँ, क्षमा रक्खू। आज आपने मुझे मारा-पीटा और

क्रोध भी किया, लेकिन मुझे तनिक भी रोष उत्पन्न नही हुआ है। अत आज आपका यह पाठ—क्षमा-कुरु—मुझे याद हो गया है। आचार्य युधिष्ठिर की बात सुन कर बडे खुश हुए और उनके विचारो की सराहना की। यहाँ कहने का मतलब इतना ही है, कि मनुष्य जितना भी जाने उसे आचरण मे उतारे, तो वह अपनी तरक्की कर सकता है। यही एक मात्र तरक्की का महान् साधन है। लेकिन आज हमारा क्या हाल हो रहा है ? आज हम जितना जानते है उसका शतांश भी आचरण मे नही उतारते हैं। तव फिर तरक्की न हो इसमे किसका कसूर है ? कौन नही जानता है कि गरीबो को नही सताना चाहिये, चोरी नही करनी चाहिये, व्यभिचार और हिंसा नही करनी चाहिये ? जानते तो सब है, लेकिन आचरण मे कोई नही उतारते है। अत कोरा जानना ही धर्म नही है, वल्कि जान कर अपने आचरण मे उतारना धर्म है। यह समझ कर जो अपने धर्म को आचरण मे उतारेंगे वे अपने जीवन का कल्याण कर सकेंगे।

९ अगस्त १९४८

१६ :

आचरण का महत्व

सस्कृत मे कहा है–आचार प्रथमो धर्म–आचार ही सब से पहला धर्म है। हम कई शास्त्र पढे और सुने, पर उनको अपने जीवन मे नही उतारे तो उससे क्या लाभ ? पशुओ पर चाहे जितने शास्त्रो का भार लादा जाय, लेकिन वह उन्हे नही समझता, अत उसके लिये वह भार ही होता है। हम भी शास्त्र पढे पर आचार मे उन्हे नही उतारे, तो यह भी भार जैसा ही है। शास्त्रकारो ने एक बडा रोचक उदाहरण देते हुए कहा है– गधे पर चाहे चन्दन का भार डाला जाय, पर वह जैसे उसको भारभूत ही होता है, वैसे ही मनुष्य चाहे जितना विद्वान् हो, पर आचरण मे ज्ञान न हो ,तो यह भी वैसा ही भारभूत होता है। इसीलिये आचार की महत्ता वताने के लिए उसे पहला धर्म कहा है।

आज से एक मास बाद सम्वत्सरि पर्व आने वाला है। हमने गत ११ महीनो मे जो पढा और सुना है, उसे इस एक मास मे पचाले यानी आचरण मे उतार ले–तभी उसकी सफलता है। कोई मनुष्य यह सोचे कि एक मास मे हम क्या कर सकते है ? तो उसका यह सोचना उचित नहीं है। मानव चाहे तो एक मास मे ही वहुत कुछ कर सकता है।

एक आदमी ने अपने पुत्र को १ पाई दी और कहा—तुम इस पाई को एक मास तक दुगुनी-दुगुनी करते जाना। आज इस पाई की दो करना, कल चार, परसो आठ और फिर सोलह। इस तरह एक महीने तक करते जाना। बधुओ! एक पाई को दुगुनी करते जाना कोई कठिन काम नही है, लेकिन आप को यह जानकर आश्चर्य होगा कि वह एक पाई ही महीने के अन्त मे ५५ लाख रूपये से भी कुछ ज्यादा रकम पैदा कर देती है हम एक मास को भी कम कहते है, लेकिन पौद्गलिक सम्पत्ति के लिये भी जब एक पाई से एक मास मे लाखो की सम्पत्ति पैदा की जा सकती है, तो हमारी आत्मिक सम्पत्ति क्या नही वढाई जा सकती है? हम भी अगर आत्म-साधना मे आज से एक-एक मिनिट का दुगुना समय लगाते जाय और उससे अपनी शुद्धि करते जाय तो सम्वत्सरि तक हम अपने जीवन की शुद्धि कर सकते है। यही बात आज का दिन (महीने का धर) हम से कहता है। लेकिन यह हो कैसे? इसी का विचार हमे यहाँ करना है।

विद्या सर्वश्रेष्ठ वस्तु है यह एक सत्य हकीकत है कि वडे से वडा राजा भी अपने देश मे ही पूजा जाता है, लेकिन कवि या विद्वान् सब जगह पूजा जाता है चीन का चागकाई शेक चीन के सिवाय और कही नही पूजा जाता है। रूस का स्टालिन रूस मे और अमेरिका का ट्रूमेन भी अमेरिका मे ही पूजा जाता है। लेकिन हिन्दुस्तान का रवीन्द्र सब जगह पूजा जाता है। क्योकि 'विद्या सर्वत्र पूज्यते'—विद्या के वल पर मनुष्य सब जगह पूजा जाता है। लेकिन ऐसी विद्या भी जिसके सामने झुक जाती है, वह है आचार। चारित्र के सामने विद्या

भी नतमस्तक हो जाती है। हर एक वस्तु को पहले अपने जीवन में उतारना चाहिये। तभी उसका प्रचार भी किया जा सकता है। हम आये दिन इसका दम भरते रहते है, कि हमे अपने धर्म का प्रचार करना है, लेकिन इसका प्रचार कैसे हो यह बात हम अभी तक नही जानते हैं। क्या अट्ठाई करके वरघोडा निकालने से धर्म का प्रचार होता है या बडे-बडे जिमनवार करने से धर्म का प्रचार होता है ?

आज के जमाने मे जहाँ लाखो पुरुष भूख से तडप-तडप कर अपनी जान खो रहे हो, वहाँ आप बडे-बडे जिमनवार करते हैं तो यह धर्म का प्रचार कहा जाय या धर्म का नाश ? धर्म-प्रचार का सच्चा मार्ग ही आचार है। आचार से ही प्रचार होता है। अगर आप अपने धर्म का सचमुच प्रचार करना चाहते है, तो आप अपने आचार से दूसरो पर ऐसा प्रभाव डाले कि जिससे कोई झूठ नही बोले, चोरी नही करे, हिंसा नही करे। यानी जैनी कहलाने वाले अपने आचार मे सत्य और अहिंसा को इस प्रकार उतारले कि जिससे दूसरे लोग यह कहे, कि जैनी कभी भी हिंसा नही करते हैं, झूठ नही बोलते हैं और चोरी नही करते है। तभी वह सच्चा प्रचार है और इसी से धर्म की सच्ची प्रभावना भी हो सकती है। अट्ठाई करके वरघोडा निकालना और जिमनवार करना तो कभी-कभी धर्म का प्रचार नही, हास्य कराते है। अत चारित्र ही एक ऐसी वस्तु है जिससे सच्चा प्रचार किया जा सकता है और जिसके सामने विद्या भी झुक जाती है।

गाधी जी का नाम आज सब लेते हैं, पर क्या इसलिये कि वे एक बैरिस्टर थे ? लोकमान्य आदि को आप क्यो याद

करते है ? क्या वे विद्वान् थे इसलिये ? उन्होने अपने विचारो को अपने जीवन मे उतारा था, इसीलिये हम उन्हे याद करते हैं। आज कई लोग अपने पुत्रो को विद्वान् बनाने की तो फिक्र करते है, लेकिन क्या वे उनको सदाचारी बनाने की भी फिक्र करते हैं ? हर एक मनुष्य चाहने पर भी धनवान या विद्वान् नही बन सकता है, लेकिन यदि वह चाहे तो सदाचारी अवश्य बन सकता है। रोगी भी सदाचारी बन सकता है और जवान भी खुशी-खुशी सदाचार का पालन कर सकता है। धनवान और विद्वान् बनना या शारीरिक बल प्राप्त करना हर एक के वश की बात नही है, लेकिन सदाचारी तो सब कोई बन सकते हैं। सदाचार एक ऐसी सर्वोत्तम वस्तु है, कि जिसे निर्धन और निरक्षर मनुष्य भी अपना सकता है और अपना जीवन सार्थक बना सकता है।

आज हम एक सुनार को आभूषण बनाने के लिये सोना दे या दर्जी को सीने के लिये कपडा दे तो क्या वह उसका हो जाता है ? एक माली बगीचे मे फल तैयार करता है, पर जैसे वे उसके नही हो जाते है, वैसे ही हमारे पास भी ऊचे से ऊचे अध्यात्म विद्या के शास्त्र हो—सिद्धान्त हो, पर जब तक हम उनको अपने जीवन मे नही उतारे तब तक वे हमारे नही हो सकते है। जैनी आज भले ही यह कहे कि हमारा धर्म जैन है, पर जब तक वे अपने जीवन मे उसको नही उतारे तब तक वे जैन धर्म के हो सकते है, पर जैन-धर्म उनका नही हो सकता।

पेरिस मे मिस्टर कोल नाम का एक आदमी हो गया है जो कि बडा प्रामाणिक था। उसकी स्थिति पहले ठीक थी पर बाद

भी नतमस्तक हो जाती है। हर एक वस्तु को पहले अपने जीवन में उतारना चाहिये। तभी उसका प्रचार भी किया जा सकता है। हम आये दिन इसका दम भरते रहते है, कि हमे अपने धर्म का प्रचार करना है, लेकिन इसका प्रचार कैसे हो यह बात हम अभी तक नही जानते हैं। क्या अट्ठाई करके वरघोडा निकालने से धर्म का प्रचार होता है या बडे-वडे जिमनवार करने से धर्म का प्रचार होता है ?

आज के ज़माने मे जहाँ लाखो पुरुष भूख से तडप-तडप कर अपनी जान खो रहे हो, वहाँ आप बडे-वडे जिमनवार करते हैं तो यह धर्म का प्रचार कहा जाय या धर्म का नाश ? धर्म-प्रचार का सच्चा मार्ग ही आचार है। आचार से ही प्रचार होता है। अगर आप अपने धर्म का सचमुच प्रचार करना चाहते है, तो आप अपने आचार से दूसरो पर ऐसा प्रभाव डाले कि जिससे कोई झूठ नही बोले, चोरी नही करे, हिंसा नही करे। यानी जैनी कहलाने वाले अपने आचार मे सत्य और अहिंसा को इस प्रकार उतारले कि जिससे दूसरे लोग यह कहे, कि जैनी कभी भी हिंसा नही करते है, झूठ नही बोलते हैं और चोरी नही करते है। तभी वह सच्चा प्रचार है और इसी से धर्म की सच्ची प्रभावना भी हो सकती है। अट्ठाई करके वरघोडा निकालना और जिमनवार करना तो कभी-कभी धर्म का प्रचार नही, हास्य कराते हैं। अत चारित्र ही एक ऐसी वस्तु है जिससे सच्चा प्रचार किया जा सकता है और जिसके सामने विद्या भी झुक जाती है।

गाधी जी का नाम आज सब लेते हैं, पर क्या इसलिये कि वे एक बैरिस्टर थे ? लोकमान्य आदि को आप क्यो याद

करते है ? क्या वे विद्वान् थे इसलिये ? उन्होंने अपने विचारों को अपने जीवन मे उतारा था, इसीलिये हम उन्हे याद करते है। आज कई लोग अपने पुत्रो को विद्वान् बनाने की तो फिक्र करते है, लेकिन क्या वे उनको सदाचारी बनाने की भी फिक्र करते है ? हर एक मनुष्य चाहने पर भी धनवान या विद्वान् नही बन सकता है, लेकिन यदि वह चाहे तो सदाचारी अवश्य बन सकता है। रोगी भी सदाचारी बन सकता है और जवान भी खुशी-खुशी सदाचार का पालन कर सकता है। धनवान और विद्वान् बनना या शारीरिक बल प्राप्त करना हर एक के वश की बात नही है, लेकिन सदाचारी तो सब कोई बन सकते हैं। सदाचार एक ऐसी सर्वोत्तम वस्तु है, कि जिसे निर्धन और निरक्षर मनुष्य भी अपना सकता है और अपना जीवन सार्थक बना सकता है।

आज हम एक सुनार को आभूषण बनाने के लिये सोना दे या दर्जी को सीने के लिये कपडा दे तो क्या वह उसका हो जाता है ? एक माली बगीचे मे फल तैयार करता है, पर जैसे वे उसके नही हो जाते है, वैसे ही हमारे पास भी ऊंचे से ऊंचे अध्यात्म विद्या के शास्त्र हो—सिद्धान्त हो, पर जब तक हम उनको अपने जीवन मे नही उतारे तब तक वे हमारे नही हो सकते हैं। जैनी आज भले ही यह कहे कि हमारा धर्म जैन है, पर जब तक वे अपने जीवन मे उसको नही उतारे तब तक वे जैन धर्म के हो सकते है, पर जैन-धर्म उनका नही हो सकता।

पेरिस मे मिस्टर कोल नाम का एक आदमी हो गया है जो कि बडा प्रामाणिक था। उसकी स्थिति पहले ठीक थी पर बाद

मे बिगड गई थी । उसकी पत्नी मेरी भी बड़ी समझदार और सुन्दर थी । वह सदा अपने पतिका ख्याल रखती थी और ऐसा कोई काम नही करती थी, जिससे कि उसके पति को दु ख हो । कोल एक अच्छा लेखक और वक्ता भी था । उसके घर मे लिखने के लिए एक छोटी सी मेज़ के सिवाय और कुछ नही था । वह म्युनिसिपल कमेटी का भी सदस्य था ।

एक दिन जब अपने घर देरी से आया तो उसकी पत्नी मेरी ने हँसते हुए उससे कहा—तुम म्युनिसिपल कमेटी के मेम्बर होकर भी इस तरह देरी से घर आते हो ? चलो जल्दी भोजन कर लो, फिर मुझे नीलाम मे से एक जाकिट खरीद कर लाना है । कोल को यह सुन कर बडा दु ख हुआ कि क्या मेरी पत्नी को एक जाकिट खरीदने के लिये भी नीलाम मे जाना पडता है ? लेकिन मेरी ने इस वात को भुलाते हुए उसे भोजन कराया । भोजन करने के बाद जब कोल भी उसके साथ चलने लगा तो मेरी ने कहा—नही, तुम अपना लेख पूरा करो, मे अभी जाकिट लेकर आजाती हूँ । कोल लेख लिखने बैठा ही था कि एक आदमी ने उसका दरवाजा खटखटाया । कोल उठा और आगन्तुक से पूछा—कहिये क्या काम है ? आगन्तुक ने कहा—आप म्युनिसिपैलिटी के मेम्बर हैं, अत मै आपसे एक राय लेने के लिये आया हूँ । क्या आप मुझे अपनी राय देगे ? कोल ने कहा—कहिये आप क्या पूछना चाहते है ?

आगन्तुक ने कहा—मेरा यह खयाल है कि म्युनिसिपैलिटी यदि अपनी एक रेल चलावे तो उससे उसे और फ्रेंच जनता को वड़ा फायदा पहुँच सकता है । क्या आप भी मेरी इस

सम्मति से सहमत हो सकेंगे ?

रेलवे-कमेटी के कुल सात मेम्बर थे, जिनमे से तीन इसके पक्ष मे थे और तीन विपक्ष मे। अब कोल की सम्मति ही बाकी थी और यही महत्त्वपूर्ण भी थी। क्योकि बहुमत का आधार इसी सम्मति पर था। लेकिन कोल ने कहा—भाई मै तो इसके विरुद्ध हूँ। रेलवे लाईन से प्रजा का हित नही, अहित ही होगा, अत मै अपनी सम्मति इसके पक्ष मे नही दे सकता। आगन्तुक ने कुछ कागजात देखने को दिये और कहा—लीजिये, पहले आप इन्हे देख ले और फिर अपनी सम्मति दे। कोल उन्हे देखने लगा तो उसमे ५० हज़ार का एक चैक दिखाई पडा। उसने कहा—यह क्या ? पचास हजार का फ्रंच चैक ? आगन्तुक ने कहा—साहब, आप यह चैक लीजिए और इसके पक्ष मे अपनी राय दे दीजिये। यह सुनकर कोल कुछ विचार मे पड गया। आगन्तुक ने कहा—साहब, प्रामाणिकता के ख़ातिर आप अपने जीवन मे दु ख अनुभव करे, और आपकी पत्नी एक जाकिट लेने के लिये भी नीलाम मे जावे, यह ठीक नहीं है। रहने के लिए मकान भी ठीक न हो, क्या यह आप जैसो के लिये योग्य है ? मेहरबानी कर आप यह चैक ले ले और मुझे अपनी सम्मति दे दे। कोल विचारने लगता है, इतने मे मकान मालिक आता है और कोल से कहता है—साहब, मकान का तीन महीने का किराया चढ रहा है, आप म्युनिसिपैलिटी के मेम्बर होकर भी ठीक समय पर किराया नही दे, तो यह आपके लिये ठीक नही है। कोल मकान मालिक को तो समझा-बुझाकर विदा करता है, पर आगन्तुक ने उससे कहा—साहब, यह कैसी बात है, कि आपके पास किराया

चुकाने को भी पैसे नही है ? आप रोज-रोज दु ख सहते हैं, यह ठीक नही है । अत आप यह चैक ले ले और मुझे अपनी सम्मति दे दे ।

कोल को पचास हजार के चैक ने उलझन मे डाल दिया । वह विचारो मे उलझ रहा था कि इतने मे उसकी पत्नी आ गई । उसने उसे देखकर कहा—मेरी, अब तू ही मुझे बचा, यह भाई कहता है, कि पहले यह पचास हजार का चैक लो और पीछे अपनी सम्मति मुझे दो । बता अब मै क्या करू ?

मेरी ने जब सारा किस्सा सुना तो उसने आगन्तुक से कहा—हमारी सच्चाई और हमारी प्रामाणिकता कोई धन से बिकने वाली चीज़ नही है । तुम अपना चैक ले जाओ, हमे अपनी प्रामाणिकता का मोल नही कराना है ।

प्यारी बहिनो ! क्या आज तुम भी अपने पति को इस तरह गलत मार्ग पर जाने से बचाती हो ? सचमुच अगर आप अपने पति को 'मेरी' की तरह प्रामाणिकता मे स्थिर रक्खेगी तो आपका यह सब सुनना सार्थक बन सकता है । जब हम इस तरह अपने आचार-धर्म को अपने जीवन मे उतारेगे तभी हम अपना और समाज का कल्याण कर सकेगे ।

१० अगस्त, १९४८

२०

प्रेम

अगर यहाँ पर इत्र की शीशी पडी हो तो वह सबको अपनी ओर खीच लेती है। लेकिन यदि उसमे इत्र के बजाय पानी भरा हो तो क्या कोई उसके पास जाने को राजी होगा? इसी तरह मानव के हृदय मे भी यदि सद्गुण रूपी इत्र भरा हुआ हो तो सब उसके पास जाते है, लेकिन दुर्गुण हो तो कोई नही आना चाहता।

हर एक मनुष्य सम्मान और प्रेम चाहता है। लेकिन जब तक उसके शरीर रूपी शीशी मे सद्व्यवहार रूपी इत्र न हो, तब तक वह दूसरो का प्रेम पात्र नही बन सकता है। अत सद्व्यवहार का इत्र सब मे होना चाहिये।

जब तक मनुष्य अपने स्वार्थ की ही चिन्ता करता है, तब तक उसे कोई नही चाहता है। लेकिन जब वह इससे कुछ आगे बढता है और अपने कुटुम्ब की भलाई करता है, तो वह अपने कुटुम्ब का प्रेम भाजन बन जाता है। लेकिन जब वह इससे भी आगे विकास करता है और समाज तथा राष्ट्र का भला सोचता है तो सबका प्रेम भाजन बन जाता है। और वही पुरुष धर्मात्मा भी कहा जाता है। क्योकि धर्मात्मा

पुरुष का मतलब ही यही है कि जो दूसरो के लिये हितकारी हो। स्वार्थ छोडकर परार्थ मे जाना धर्म भावना है और यही जीवन विकास का साधन भी है। अत इसी भावना का हमे विकास करना चाहिये। शरीर का विकास व्यायाम से होता है। इसी तरह हृदय का विकास करने के लिये भी व्यायाम की जरूरत है और वह व्यायाम है बुद्धि की शुद्धि यानी निर्मलता। हमारी बुद्धि इतनी निर्मल होनी चाहिये हम सारी दुनियाँ को अपना कुटुम्ब समझे। अपना दुख भूल कर भी विश्व-सुख की भावना हमारे मन मे होनी चाहिये। लेकिन आज हमारी स्थिति विल्कुल विपरीत है। आज हम अपना हीं सुख देखते हैं। स्व-शरीर का पोपरण और दूसरो का शोषरण, यही हमारा जीवन-मन्त्र हो गया है। लेकिन इससे आप यह चाहे कि हमारा जीवन सुगन्धित हो, तो यह कदापि नही हो सकता है। आपका सुगन्धित जीवन तो तभी हो सकता है, जब आप यह समझे, कि हमारा भले ही शोषरण हो, पर हम दूसरो का पोषरण ही करे। यह मन्त्र जब आपका होगा तभी आपके जीवन मे सुगन्ध का सचार हो सकेगा। एक अँग्रेज लेखक ने कहा—

'तू अपना सुख पीछे देख, पहले दूसरे का सुख विचार।'

जो व्यक्ति अपने बजाय दूसरे का सुख सोचता है वही व्यक्ति अपना व्यक्तित्व बढा सकता है।

मानव चाहे तो सब कुछ कर सकता है, असम्भव उसके लिये कुछ नही नैपोलियन ने कहा था—मेरी डिक्सनरी मे असंभव शब्द ही नही है।

मानव क्या नही हो सकता है ? मानव चाहे तो सिद्ध भी

हो सकता है। हमारे तीसरे तीथकर का नाम सभव है। जिसका मतलब भी यही है, कि असभव कुछ है ही नही। मानव जो भी चाहे कर सकता है, लेकिन होना चाहिये उसमें आत्म-बल और अपनी निर्मल बुद्धि।

इङ्गलैण्ड मे जब पहला विलियम राज्य करता था तब वहाँ अधिकतर लकडी के मकान बनाये जाते थे। उस समय बादशाह का ऐसा हुक्म था कि कोई भी रात को ८ बजे बाद अपने घर मे दिया नही जला सकता था। इसके लिये एक करफ्यू बैल (घन्टा) था, रोज-रोज़ रात को ठीक आठ बजे बजाया जाता था जिसे सुनकर सब अपने-अपने दीये बुझा देते थे। जो इस आज्ञा का उल्लघन करता था, उसे सजा दी जाती थी।

एक दिन एक फौजी सिपाही को, किसी अपराध मे, बादशाह ने मृत्यु-दण्ड का हुक्म सुनाया। सिपाही की शादी हुए छह मास ही हुए थे। जब उसकी पत्नी ने यह सुना तो उसे अपार दु ख हुआ। उसने सोचा—किसी न किसी तरह से मुझे अपने पति की जान अवश्य बचानी चाहिए। बादशाह का हुक्म हो चुका था, लेकिन फाँसी होने मे अभी १२ घन्टे का समय था। अत वह अपने पति से मिलने के लिए जेल मे गई और जेलर से कहा—मेरे पति को आज रात को ८ बजे फाँसी होने वाली है, अत क्या आप मुझे उनसे मिलने देगे? जेलर ने कहा—उससे मिलने का हुक्म नही है। स्त्री ने बहुत आजीजी की, पर जल्लादो का भी कभी हृदय पिघल सकता है? उसने उसे अन्दर नही आने दिया। लाचार हो तब वह वहाँ गई, जहाँ से करफ्यू बेल बजाया जाता था।

घन्टा बजाने वाला भाग्य से बहरा और अन्धा था। उस स्त्री ने उसे प्रलोभन देते हुए कहा—भाई, अगर तुम आज अपना यह घटा नही बजाओगे तो मै तुम्हे एक हज़ार रुपये दूगी। आदमी ने कहा—वहिन मैं कुछ लेना नही चाहता। मै तो जो काम करता हू, वह करूगा ही। तब वह विचार मे पड गई। अब उसके पास कोई चारा नही था। वह उस मजिल पर चढी जहाँ वह घटा लटक रहा था। ऊपर चढकर उसने उस घटे को अपने दोनो हाथो से मज़बूत पकडा और उस पर लटक गई। घटे बजाने वाले ने ठीक समय अपनी रस्सी हिलाई, पर घटे की आवाज नही हुई। बेचारा हिलाने वाला तो बहिरा था, उसने तो रस्सी हिलाई और समझ लिया कि घटा बज गया है। लेकिन जब नौ बज गये और तब भी घटे की आवाज नही सुनाई दी तो सब लोग आश्चर्य मे पड गये। फासी देने वाले तैयार खडे थे। वे तो घटा बजने की राह देख रहे थे कि कब घटा बजे और इसे फाँसी दी जाय। लेकिन जब घटा ही नही बजा तो वे भी विवश हो खडे थे। जब घटा वजा ही नही, तो बादशाह स्वय वहाँ आया और घटे वाले से कहा—तुमने आज घटा क्यो नही बजाया? घटे वाले ने कहा—जहाँपनाह! मैने तो ठीक समय पर रस्सी खीच ली थी, पर न जाने आज घटा बजता क्यो नही है? बादशाह ने अपना एक सिपाही ऊपर भेजा तो उसने वहाँ एक स्त्री को देखा, जो अपने हाथो से घटे को बडी मज़बूती से पकड़े लटकी हुई थी। उसने नीचे आकर बादशाह से कहा—ऊपर तो एक जवान स्त्री घटे पर लटकी हुई है, इसी कारण से आज घटा नही बज रहा है। बादशाह स्वय ऊपर

आया और उस स्त्री से पूछा—वहिन, आज तुम यहाँ क्यो लटक रही हो ? स्त्री ने कहा—पहले आप मुझे वचन दीजिये, फिर मैं अपनी वात आपको कहूगी। राजा ने कहा—वहिन, तुम अपनी वात तो कहो ? स्त्री ने कहा—आज जो व्यक्ति फासी पर लटकाया जा रहा है वह मेरा पति है। उसे फासी न दी जाय और उसका अपराध क्षमा कर दिया जाय। इस तरह की वात से जव पत्थर-सा दिल भी पिघल सकता है तो फिर मानव क्यो नही पिघले ? वादशाह ने उसकी फासी रोक दी और इस प्रकार वह सिपाही मृत्यु के मुँह मे जाने से बचा लिया गया।

वन्धुओ ! जब एक स्त्री भी इस तरह का साहस का काम कर सकती है तो मनुष्य के लिये असभव क्या है ? एक अँग्रेज ने कहा है—

"अच्छा काम करते हुए मानव को कभी नही रुकना चाहिये। भले ही उसकी सिद्धि हमे उस समय नजर नही आवे पर उसका फल तो होने का ही है।"

मानव, साधु-दर्शन के लिये ठेठ तक जावे या नही, पर एक कदम भी आगे वढा दिया तो उसका फल तो मिल ही गया। इस तरह अगर हम शक्ति, साहस, प्रेम और ज्ञान का विकास करेंगे तो अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकेंगे।

प्रेम एक ऐसी वस्तु है, जो हर एक के दिल मे स्थित है। सिंह जो क्रूर प्राणी माना जाता है उसके हृदय मे भी अपने बच्चो के प्रति प्रेम होता है। लेकिन आवश्यकता है प्रेम को विकसित करने की। इस प्रेम का विकास ही व्यक्तित्व का

विकास है। आयुर्वेदानुसार प्रेम करने वाला मनुष्य आयुष्य की भी वृद्धि करता है। आयुर्वेद के ग्रन्थ चरक संहिता मे लिखा है–

'अहिंसक मनुष्य ज्यादा जी सकता है।, क्योकि अहिंसक मनुष्य का हृदय प्रफुल्लित रहता है, जिससे उसका आयुष्य बढता है। द्वेष हृदय को सकुचित करता है, पर प्रेम हृदय को विकसित करता है। एक जगह लिखा है—

'द्वेष मन का पागलपन है।'

वस्तुत द्वेष-ईर्षा आदि मन का पागलपन ही है। पागल मनुष्य जैसे कुछ सोचता-विचारता नही है, वैसे ही क्रोधी मनुष्य भी कुछ सोचता नही है। अत प्रेम को अपने हृदय मे स्थान देना और सब से मैत्री रखना ही हृदय का विकास है। इसे हम एक भाई से लेकर धीरे-धीरे सारे मानव समाज तक विकसित कर सकते हैं। क्या आप मे ऐसा प्रेम है? आप दूसरो की बात तो जाने दीजिये, आज भाई-भाई का ही युद्ध हो रहा है–आपस मे लडाई-झगडा हो रहा है। आज आपके एक भाई की दूकान पर चार ग्राहक अधिक आजायँ या चार अगुल ज़मीन उसे अधिक मिल जाय तो क्या आप अपना प्रेम कायम रख सकेंगे? उस पर ईर्षा तो नही करेंगे? जब आप अपने भाई के साथ भी प्रेम स्थापित नही कर सकते तो मानव समाज के साथ कैसे कर सकेंगे? अत मनुष्य को क्रमश अपनी मैत्री, प्रेम और ज्ञान का विकास करना चाहिये। चौथी बात है शक्ति, जिसका विकास भी आवश्यक है। क्योकि शरीर-बल के बिना कोई काम नही किया जा सकता है। शक्ति होने पर भी ज्ञान, प्रेम और मैत्री—इन तीनो गुणो का होना अत्यावश्यक है। एक के अभाव मे भी हित के बजाय अहित

होने की ही सभावना रहेगी । माता प्रेम मे आकर बच्चे को कुछ खिला देती है, पर खिलाने का ज्ञान न हो तो वह अहित-कारक पदार्थ भी खिला देगी । ज्ञान हो, पर प्रेम न हो तो यह भी अनिष्टकारक ही होगा । जैसे कि आजकल का विज्ञान । उसमे ज्ञान है, पर प्रेम नही है । इसीलिये आज उसने अणुबम जैसी भयङ्कर चीज पैदा की है । इसलिये हमारे जीवन मे तीनो वस्तुओ की समान आवश्यकता है । मस्तिष्क मे ज्ञान, हृदय मे प्रेम और शरीर मे शक्ति हो तो हम हमारे व्यक्तित्व का विकास कर सकते है और अपना जीवन सफल बना सकते है ।

११ अगस्त, १९४८



: २१ :

भाव जीवन

हर एक वस्तु को पूर्ण समझने के लिये जैसे उसका बाह्य और आभ्यन्तर स्वरूप समझना पडता है, वैसे ही अगर हम अपने जीवन को भी समझना चाहते है तो द्रव्य और भाव जीवन को पूरा-पूरा समझना चाहिये। द्रव्य-जीवन तो खेलना कूदना, खाना-पीना आदि हैं, पर भाव-जीवन तो इससे कुछ जुदा होता है। द्रव्य-जीवन जैसे खुराक, पानी और हवा से जीवित रहता है, वैसे ही भाव-जीवन को भी जिन्दा रखने के लिये खुराक—पानी और हवा की जरूरत होती है। शरीर मे से यदि आत्मा चला जाता है तो शरीर खोखला हो जाता है, वैसे ही जीवन मे से भी यदि भाव-जीवन चला जाय तो वह भी खोखला हो जाता है। भाव-जीवन, द्रव्य-जीवन की आत्मा है। मानव शरीर मे से आत्मा चला जाय तो शरीर को जला देना पडता है, अन्यथा वह सड जायगा और उसमे से वदबू (गध) आने लग जायगी। इसी तरह द्रव्य जीवन मे से भाव-जीवन चला जाय तो उसमे भी विषय-कषाय के कीडे पैदा हो जाते है और वह सडने लग जाता है। द्रव्य-जीवन को टिकाने के लिये जैसे भोजन, हवा और पानी की ज़रूरत होती है, वैसे ही भाव-जीवन को वनाये

रखने के लिये भी वात्सल्य-भाव की खुराक, नि स्वार्थ सेवा का श्वासोच्छ्वास——हवा और पवित्रता का पानी होना आवश्यक है। इन्ही तीन चीजो से हमारा भाव-जीवन जिन्दा रह सकता है। एक मनुष्य श्वास तो ले, पर उसे वापस निकाले नही, तो उसकी मृत्यु निश्चित हो जाती है। जिन्दा रहने के लिये श्वास का लेना और निकालना आवश्यक है। इसी तरह सेवा भी एक ऐसी वस्तु है, कि जो लेनी भी पडती है और देनी भी। सेवा लिये बिना जैसे हमारा जीवन चलता नही है, वैसे ही सेवा दिये बिना भी (हमारा काम) नही चल सकता है। आप सडक पर चलते है, तो इससे आपने मजदूरो की सेवा ली या नही ? अन्न खाते हैं, तो अन्न पैदा करने वाले की सेवा लेते ही हैं। इसके बिना हमारा काम नही चल सकता है। कोई मनुष्य यह कहे कि न तो मै किसी की सेवा लू और न दू, तो क्या वह जीवित रह सकता है ? मानव को जीवित रहने के लिए पशु की भी सेवा लेनी पडती है। इस तरह लेना तो उसे पडता ही है, पर दिये बिना भी उसका काम नही चलता है। यही लेना-देना भाव-जीवन का श्वासोच्छ्वास है। लेकिन श्वासोश्वास के——हवा के होने पर भी यदि पानी न हो तो जीवन अधिक नही टिकाया जा सकता है। इसलिये भाव-जीवन को कायम रखने के लिये पवित्रता का पानी होना भी आवश्यक है। गुजरात के प्रसिद्ध कवि दलपत ने कहा है—

'मनुष्य कहता है कि सर्प मे ज़हर है, विच्छू के डक मे जहर है, पागल कुत्ते मे और समुद्र मे ज़हर है। लेकिन बुद्धिवान् मनुष्य तो यह कहते हैं कि अगर सबसे ज्यादा ज़हर कही है तो वह है मानव के हृदय मे।'

यह सच है कि हमारे हृदय मे सर्प से भी ज्यादा जह भरा हुआ है। विच्छू के डक से भी भयकर ज़हर हमारे शरी मे भरा हुआ है। इनका जहर तो ऐसा होता है, कि दो-चा घटे मे ही समाप्त हो जाता है, पर मनुष्य के मन का डक त इतना गहरा लगता है कि वह मिटना असभव स हो जाता है। यदि हम मनुष्य और पशुओ मे क्रूरत की तुलना करे तो किसे अधिक क्रूर कहेगे ? क्या पशुओ ने अधिक प्राणियो का संहार किया है या मानवो ने ? अगर मानवो ने अधिक संहार किया है, तो फिर पशुओ को अधि क्रूर कैसे कहा जा सकता है ? पशु तो अपनी खुराक के लिये ही प्राणी-संहार करते हैं, पर मानव ने तो हजारो प्राणियो को यो ही मार डाला है। फिर क्रूर किसे समझा जाय— मानव को या पशु को ?

दूसरी तुलना यह कीजिये कि पशु ने मनुष्यो का संहार अधिक किया है, या मानव ने पशुओ को अधिक मारा है ? तब आपको यह बात माननी पडेगी कि मनुष्यो ने पशुओ का जितना सहार किया है, उतना पशुओ ने मनुष्यो का नही किया। इससे सिद्ध यह होता है, कि हमारे हृदय मे जहर भरा हुआ है, पवित्रता का पानी नहीं है। तब भला हम क्रूर किसे समझे—पशु को या मानव को ?

मनुष्य के हृदय मे द्वेष का ज़हर भरा हुआ होता है और जब तक यह रहता है तब तक हृदय मे पवित्रता का पानी नही भरा जा सकता है। अत भाव जीवन को कायम रखने के लिये पवित्रता का पानी मानव हृदय मे अवश्य होना ही चाहिये। इसके बिना जीवन मे सुवास का सचार नही किया

जा सकता है।

इसके सिवाय भाव-जीवन को टिकाने वाली तीसरी वस्तु है वात्सल्य-भाव। वात्सल्य-भावना भाव-जीवन का आहार है। इसीसे निस्वार्थ सेवा के श्वासोश्वास को और पवित्रता के पानी को वेग मिलता है। भगवान् महावीर का जीवन उन्नत था। क्योकि उनका जीवन भाव-जीवन था। उनका पवित्रताका पानी था और निस्वार्थ सेवा का श्वासोश्वास था। उनके हृदय की पवित्रता ऐसी थी, कि हिंसक सिंह और मृग भी साथ-साथ बैठते थे। बिल्ली और चूहे भी साथ बैठते थे। ऐसे जन्म जात वैरी, जो एक दूसरे को देखते ही प्रहार कर देते हैं, वे भी अपना वैर भूल कर साथ-साथ बैठते थे। कैसी महान् थी उनकी पवित्रता! हमारे जीवन मे भी जब ऐसे भाव-जीवन का प्रकाश होगा तो हम भी दूसरे के जीवन को प्रकाशित कर सकेंगे, उनके हृदय के अन्धियारे को सदैव के लिये दूर कर सकेंगे। पतजलि ने कहा है—

'अहिंसा प्रतिष्ठायातत् सन्निधौ वैर त्याग'

'अहिंसक मानव के पास कभी वैर टिकता ही नही है।' हमारी अहिंसा की कसौटी ही यह है, कि अहिंसक मनुष्य के सामने आया हुआ हिंसक प्राणी भी अहिंसक बन जाय। जब हमारी अहिंसा का इतना प्रकाश होने लग जाय कि हिंसक प्राणी भी अपनी वृत्ति छोडकर अहिंसक बन जाय तो समझ लेना चाहिये कि हमारी अहिंसा सच्ची है—हम पूरे अहिंसक बन गये है। भगवान् महावीर के सामने जन्म-जात वैरी सिंह और मृग भी अपना वैर भूल जाते थे। इसका कारण यही था कि उनकी अहिंसा और प्रेम भावना इतनी विशाल थी कि,

जिसके प्रभाव से जन्म-जात वैरियो का वैर भी प्रेम मे परिणत हो जाता था।

एक मनुष्य यदि अन्धेरे मे दीपक लेकर चलता है तो उसका प्रकाश उसे तो मिलता ही है, पर सामने से आने वाले व्यक्ति को भी मिल जाता है। इसी तरह अगर आज हम इस दुनिया मे जहाँ कि सर्वत्र राग और द्वेष का अन्धकार फैला हुआ है, प्रेम का दीपक लेकर चलेगे तो वह हमे तो प्रकाश देगा ही, पर साथ मे दूसरो को भी प्रकाश देगा।

इग्लैड मे होमरलेन नामक एक विद्वान् पुरुष हो गया है। उसका हृदय बडा अहिंसक और प्रेम भरा था। वह जब किसी अनाथ या दुःखी पुरुष को देखता तो उसका हृदय दुःख से भर आता था। जब वह किसी खराब स्वभाव वाले बालको को देखता तो विचार मे पड जाता था कि ये बालक भविष्य मे उन्नत कैसे हो सकेंगे? अगर अभी से इनकी कुटेव सुधारी नही जायगी तो भविष्य मे इनकी जिन्दगी सुधर नही सकेगी। इन्ही विचारो के वशीभूत होकर उसने एक 'रिपब्लिकन' नामक आश्रम खोला, जिसमे वह बुरी आदतो वाले बालको को रखता और उनकी आदतें सुधारता था।

एक दिन कोर्ट मे ऐसा बालक पकड़ा गया जो तीन बार चोरी कर चुका था और सजा भी पा चुका था। होनमलेन को जब यह पता चला तो वह उस लडके को अपने आश्रम मे ले आया। लडका बडा तूफानी था, उसने आश्रम मे आते ही फल-फूल तोड़ने शुरू किये, लडको से लडने लगा और उनकी पुस्तके फाडने लगा। सब लोग उससे तंग हो गये थे। अन्त मे अध्यापकों ने होमरलेन से कहा—साहब,

यह लडका तो सारे आश्रम के लडको को बिगाढ देगा, अत मेहरबानी कर इसे यहाँ अब मत रखियेगा।

होमरलेन ने कहा—भाई, मुझे सबसे अधिक दया इसी लडके पर आती है, अत इसका जीवन सबसे पहले सुधारना चाहिये। तुम सब उसको अपने पास नही रखना चाहते हो, पर मै उसे अपने पास रखू गा। लडके का नाम था जौन। होमरलेन ने खाने के समय जौन से कहा—बेटा जौन, अपने खाने की प्लेट लेकर उस टेवल पर चलो और मेरे साथ बैठ जाओ। जौन ने कहा—मै धनी घर का लडका हू, मै अपने हाथो से अपनी प्लेट उठाकर नही लाऊ गा। अगर ऐसा था तो आप मुझे अपने आश्रम मे लाये ही क्यो? होमरलेन ने कहा—बेटा जौन, हमारे आश्रम का ऐसा ही नियम है देख, आज तो मै ले आता हु—पर कल से तुझे ही अपनी प्लेट उठाकर लानी होगी। खाना खाने के वाद उसने अपने हाथ मे एक पत्थर लिया और सबकी प्लेटे तोडने लगा। मास्टर ने होमरलेन से उसकी शिकायत की। होमरलेन ने उसे बुलाया और कहा—जौन! तू, खूब वदमाशी करता है न? अभी रसोई मे अगर कुछ प्लेटे वची रह गई हो, तो ले यह पत्थर और उन्हे भी फोड डाल। जौन ने वची हुई प्लेटें भी फोड डाली। तव होमरलेन ने कहा—वेटा जौन, तुमने सव प्लेटे तो फोड डाली, पर अभी मेरी यह कीमती घडी तो वाकी ही रह गई है। होमरलेन ने अपनी घडी खोली और उसे अपने ही हाथो से पत्थर देते हुए कहा—ले इसे फोड़ डाल!!

जोन ने सोचा—मै ने इतना तूफ़ान किया और सव कुछ तोडा-फोडा, पर यह अव भी मुझे नही रोक रहे हैं और वदले

मे प्रेम से कहते हैं, कि ले यह घडी और इसे भी फोड़ डाल ? जब होमरलेन ने अपनी घडी उतार कर नीचे रखी और जौन से फोडने के लिये कहा तो जौन ने अपना सिर उठा कर होमरलेन की आँखो की तरफ देखा। दोनो की आखे आमने-सामने हुई। होमरलेन की आँखो मे से प्रेम की किरणे निकली। और उसने उसे वश मे कर लिया। जौन तत्क्षण होमरलेन के पैरो मे गिर पडा और उससे अपने अपराध की माँफी माँगी। आगे चलकर वही जौन उस आश्रम का एक बडा आदमी बनता है। आज भी वह आश्रम इङ्गलैण्ड में चल रहा है, जहाँ कि कई अनाथ बालको का पोषण किया जाता है।

बन्धुओ, भगवान् महावीर का प्रेम तो जन्मजात वैर को भुला देता था, पर ऐसा प्रेम भी मानव की दुर्बुद्धि को दूर कर देता है। ऐसा जीवन ही भाव-जीवन होता है। भाव-जीवन बनाने के लिए विचारो की उदारता और हृदय की विशालता अवश्य होनी चाहिये। भाव-जीवन जीने के लिये अपने जीवन को सादा बनाना चाहिये। इस प्रकार अगर हमारे जीवन मे प्रेम की सुवास होगी, विश्व वात्सल्यता की खुराक होगी, नि स्वार्थ सेवा का श्वासोश्वास और पवित्रता का पानी होगा तो हम अपना भाव-जीवन जिन्दा रख सकेगे। ऐसे ही जीवन से हम अपने समाज का उद्धार कर सकेंगे।

१२ अगस्त, १९४८

२२

अमरता की पगडंडियाँ—१

दशवैकालिक सूत्र की एक गाथा मे कहा है—

'सव्वे जीवा वि इच्छन्ति जीविउ न मरिज्जिउ'

'जीवमात्र जीना चाहते है, मरना कोई नही चाहता।' यानी अमरता सबको प्रिय है, मृत्यु के मुँह मे कोई नही जाना चाहता। किसी मनुष्य को बीमारी हो और डाक्टर उसे जवाब दे दे तो उसे कितना अपार दु ख होता है? एक ब्राह्मण शास्त्र का मत्र है—

असतो मा सद् गमय मृत्योर्माऽमृत गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय

भगवन्! मुझे मृत्यु मे से अमरता की तरफ ले चल। इससे यह सिद्ध होता है कि अमरता सबको प्रिय है। मनुष्य अपनी हर चीज़ को अमर देखना चाहता है। वह मकान भी ऐसा बनाना चाहता है, कि वह टूटे नही, कुछ अर्से तक बना रहे। इस तरह सब अमरता तो चाहते है, पर अमरता का पथ क्या है? यह हम नही जानते है।

हम अमरता चाहते है, पर अमरता के लिए यदि हम नश्वर वस्तुओं का प्रयोग करे तो उसमे से अमरता कैसे हमे मिल सकेगी? काँच का टुकड़ा तो फ़ूटने का ही है, पर वह कब फ़ूटेगा—इसका हमे पता नही है। इसी तरह धन जैसी

नश्वर वस्तु से अमरता ढूढना भी वैसा ही है, न जाने कब वह नष्ट हो जाय ? अत अशाश्वत साधनो से अमरता नही प्राप्त की जा सकती है। उसके लिये तो शाश्वत साधन ही चाहिएँ। उपनिषद् मे एक कथा है—

याज्ञवल्क्य नामक एक ऋषि के दो पत्नियाँ थी। मैत्रेयी और कात्यायिनी। ऋषि अपने जमाने के बडे विद्वान् थे। एक दिन उन्हे विचार आया कि मुझे अब इस प्रवृत्तिमय जीवन से निवृत्ति ले लेनी चाहिये। यह तय कर उन्होने अपनी पत्नियो को बुलाया और कहा—मै तो अब-सन्यास लेता हू, लेकिन इससे पहले मै अपनी सारी सम्पत्ति तुम्हे बाँट देना चाहता हूँ। मैत्रेयी कुछ बुद्धिमान थी। उसने कहा—स्वामिन्! आप जो सम्पत्ति देकर निवृत्ति लेना चाहते हैं, तो क्या यह सम्पत्ति मुझे अमरता दे सकेगी ? याज्ञवल्क्य ने कहा—मैत्रेयी, यह सम्पत्ति अमरता नही दे सकेगी, भोग-विलासिता देगी। तब मैत्रेयी ने कहा—स्वामी! जब मुझे इससे अमरता नही मिलती है तो इस सासारिक सम्पत्ति की मुझे ज़रूरत नही है। यह आप मेरी वहिन कात्यायिनी को दे दे, पर मुझे तो आध्यात्मिक शक्ति दे, जिससे कि मै अमर वन सकूँ। याज्ञवल्क्य मैत्रेयी की बात सुनकर बडे खुश हुए और उन्होने उसे आध्यात्मिक मार्ग वताया। इस कथा से हमे मतलव इतना ही लेना है कि अमरता को पाने के लिये अशाश्वत साधन नही चाहिये। मर्त्यं साधनो से अमरता नही मिल सकती है। अमर साधनो से ही अमरता मिल सकती है। इसके लिये दस अमर साधन वताये गये हैं, जिन्हे हम दस धर्म के नाम से पहिचानते है।

'खति मुत्ति अज्जवे मद्दवे लाघवे सच्चे सजमे तवे चेइए वभचेर वासिए ।'

इन दस धर्मों के पालन से असत् से सत् मे और मृत्यु से अमरता मे पदार्पण किया जा सकता है। इनमे सबसे पहला धर्म है—खति—क्षमा । भर्तृहरिजी ने कहा है—

शान्तिश्चेत् क्वचेन किम् ?

यदि मानव के पास क्षमा का शस्त्र हो तो फिर कवच-ढाल आदि दूसरे शस्त्र रखने की उसे जरूरत नही होती है। दूसरे सैकडो शस्त्र मानव पर प्रहार करे, पर क्षमा की ढाल हो तो वह सबको सहन कर सकता है। यह क्षमा अहिंसा का ही एक रूप है और उसका बहुत कोमल विभाग भी।

कोई मनुष्य क्रोध से क्रोध को वश मे करना चाहे तो वह वश मे नही किया जा सकता है। वैर से वैर नही जीता जा सकता है, यह एक शाश्वत नियम है। सेर को मच्छर काटे और वह यह सोचे कि मै इन मच्छरो को मार डालूँ, तो क्या वह उनको मार सकता है ? वह थक जाय पर मच्छरो का नाश नही कर सकता है। इसी तरह क्रोध को भी क्रोध से जीता नही जा सकता है।

धर्मात्मा पुरुप क्रोधी मनुष्य को चाहे जितना उपदेश दे वह सुधरता नही है। लेकिन वही क्षमा से सुधर सकता है। दुनिया मे कई वस्तुएँ ऐसी है जो अग्नि से पिघलती हैं और कई पानी से भी। घी जैसे अग्नि से पिघलता है तो शक्कर पानी से पिघलती है। वैसे ही कुछ मनुष्यो को शिक्षा की ज़रूरत होती है तो कुछ को क्षमा की। दोनो से पुरुप सुधारा जा सकता है। लेकिन क्षमा की ज़रूरत ज्यादा रहती है। हमारे

व्रत उपवासादि तो बाह्य तप हैं पर क्षमा आन्तरिक तप है। शास्त्रकारो ने क्षमा के समान दूसरा तप नही कहा है। आध्यात्मिक प्रकरण नामक ग्रन्थ मे लिखा है—'एक मनुष्य ६६ करोड मास खमण करे और दूसरा पुरुप किसी सामने वाले आदमी का एक कटु बचन भी शान्ति से सहन कर ले तो इसका पुण्य ६६ करोड मास खमण करने वाले पुरुष से भी ज्यादा होता है।' इससे सिद्ध है, कि क्षमा के समान दूसरा कोई व्रत नही है। सामने वाला पुरुष चाहे जितने भी खराव बचन कहे, पर उसमे से भी सीधा अर्थ निकाल लें तो स्वर्ग है, अन्यथा नरक तो है ही।

कोई हमे नालायक, झूठा, अधर्मी आदि कहे, पर यह सुन कर भी हम यह सोचे कि क्या यह सच कह रहा है? इस पर मुझे अमल करना चाहिये। इस प्रकार यदि हम उनका सीधा अर्थ ले तो वही गालियाँ हमारे लिये शास्त्र भी बन जाती हैं और सन्मार्ग की तरफ ले जाने वाली हो जाती है। कुछ गालियाँ आशीर्वाद रूप भी होती है। जैसे कोई यह कहे कि तू तो अकर्मी है। भला अकर्मी तो सिद्ध होते हैं। अकर्मी कह कर क्या वह उसे सिद्धो की श्रेणी मे पहुँचने का आशीर्वाद नही देता है? कई कहते हैं तु तो कर्महीन है। कर्महीन तो भला अरिहन्त बनते हैं। क्या यह आशीर्वाद नही है? कोई 'साला, कहते हैं पर यह कह कर तो वह हमारी प्रशसा ही करता है। क्योंकि चारित्र शील मानव के लिये तो सभी स्त्रियाँ वहिन तुल्य ही होती है। इस प्रकार यदि हम गालियो का भी उल्टा अर्थ न लेकर सीधा अर्थ ही ले तो वे हमारी उन्नति मे साधक बन सकती है।

आप जानते होगे कि गौशाले पर जब किसी ने तेजोलेश्या फेंकी थी तो भगवान् महावीर ने उसको शान्त करने के लिये शीतल लेश्या फेंकी थी। अगर हम भी सचमुच भगवान् महावीर के सुपुत्र है तो क्या हमे भी अग्नि के ऊपर पानी नही छिडकना चाहिये ? क्रोध को क्रोध से शान्त नही किया जा सकता है, अत. क्रोध के सामने तो क्षमा ही रखनी चाहिये। तेजोलेश्या के सामने तो शीतललेश्या का ही आदर्श रखना चाहिये। अन्यथा हम शान्ति स्थापित नही कर सकते है।

ग्वाले भगवान् महावीर को गाये सोप कर गये थे तब भी वे मौन थे और जब वापिस आये तब भी वे ध्यानस्थ-मौन थे। उन्हे कुछ भी पता नही था। लेकिन ग्वालो की गाये जब इधर,उधर चरती हुई चली गई तो उन्होने भगवान् को ही चोर समझ कर खूब मारा-पीटा। यह सब देखकर, इन्द्र महाराज स्वर्ग से पृथ्वी पर आये और भगवान् से विनयपूर्वक बोले—भगवन् ! यह तो पहला ही परिषह है। ऐसे कई परिषहो का सामना आपको करना पडेगा, अत. आप कहे तो मैं आपके साथ रहूं। भगवान् ने इन्द्र को उत्तर देते हुए कहा—

कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि,

'इन्द्र ! किये हुए कर्मो का भोग भोगे बिना छुटकारा नही होता है। अत मेरे कर्म मुझे ही दूर करने होंगें। तेरे रहने से मेरी सिद्धि नही हो सकेगी।

कोई मनुष्य हमारे मैले कपडे धो डाले तो हम कितने खुश होते हैं ? इसी तरह कोई मनुष्य हम पर क्रोध करे और हमारे हृदय का कचरा ले जाय तो क्या हमे खुशी नही होनी चाहिये ? भला, इससे अधिक खुशी की बात और क्या हो

सकती है ? लेकिन आज तो हमारा यह हाल है, कि हम तिजोरियो मे से रुपये लेते हुए तो खुश होते हैं, पर कोई हमारा कचरा निकाल ले जाय तो बड़ा दुःख अनुभव करते हैं । कैसी विपरीत स्थिति आज हमारी हो गई है ?

क्रोध ज़हर है और क्षमा अमृत है, इसीलिये क्षमा शाश्वत धर्म है और उसीसे अमरता भी प्राप्त की जा सकती है । क्षमा ही हमारे जीवन का सरक्षण कर सकती है । क्रोध करना तो शराब पीने जैसा है । जैसे शराब पीने से क्षण भर शरीर मे उत्साह आ जाता है, पर बाद मे तो हड्डी-हड्डी चूर होने लगती है, वैसे ही क्रोध मे भी कुछ समय तक तो बल नजर आता है, पर अन्त मे तो वह मनुष्य की शक्ति का नाश ही करता है ।

क्षमा, स्वर्ग और मर्त्यलोक के बीच का पुल है । अगर हमने इस पुल को ही तोड दिया तो फिर हम आगे कैसे पहुँच सकेंगे ? अस्तु, यदि हमने इस क्षमा के पुल को बनाये रक्खा तो हम अमरता की भावना को सुरक्षित रख सकेंगे और अमर बन सकेंगे ।

१३ अगस्त, १९४८

२३

अमरता की पगडण्डियाँ—२

मनुष्य मे अमर होने की भावना रहती है, पर वह अमर होने के लिये आज जिन साधनो का अवलम्वन ले रहा है, वे सब नश्वर है। अमर होने के लिये तो साधन भी अमर ही होने चाहिये, तभी अमरता प्राप्त की जा सकती है। वेदो मे कहाहै —'असतो मा सद् गमय' असत् से सत् मे जाओ। सत्य अमरता दिलाने वाला है। अमरता प्राप्ति के जो हमने १० लक्षण बताये हैं उनमे सबसे पहला है खति यानी शान्ति। पृथ्वी को हम चाहे जितना मारे-पीटे, उस पर थूके और मल मूत्र का त्याग करे, पर वह सभी सहन कर लेती है। इसी तरह विवेकी पुरुष को भी चाहे जितने वाह्य-परिषह दिये जायँ, वह उन पर क्रोध नही करता है, सब पर सहिष्णुता रखता है। पाप-हिंसा आदि अधर्म मे सच्चा वल नही होता है, सच्चा वल होता है अहिसा और सत्य मे। पाप या हिसा तो नश्वर है, एक न एक दिन नष्ट हो जाने वाले है। लेकिन जव इन वस्तुओ को सामने से भी ऐसा ही वल मिल जाता है तो ये कुछ देर तक टिकी रह जाती है। जैसे कि एक मानव के हृदय मे द्वेष-भावना आई और सामने वाले पुरुष की भी द्वेष-भावना उसे मिली तो ऐसी हालत मे वह कुछ समय तक टिकी रह सके गी, अन्यथा नष्ट हो

गई होती। अत सामने का बल मिलने पर ही वह टिक सकती है। हम अनुभव से भी इस सच्चाई को देखते है। किसी क्रोध करने वाले आदमी के सामने यदि हम क्षमा धारण करले तो उसका क्रोध नष्ट हो जाता है। लेकिन जब उन्हे क्रोध के सामने क्रोध या हिंसा के सामने हिंसा का बल प्राप्त हो जाता है तो वे कुछ समय के लिए बने रह जाते है, पर अन्तत तो मिटते ही हैं। उत्तराध्ययन सूत्र के दूसरे अध्ययन की टीका मे कहा है—एक बार कृष्ण महाराज बलदेव, सत्यक और दारुक के साथ जगल मे घूमने गये थे। घूमते-घूमते वे बहुत दूर निकल गये और वहाँ उन्हे रात हो गई। वापिस घर आने का मौका नही था अत चारो ने सोचा कि आज की रात इसी जगल मे किसी पेड के नीचे बिताई जाय। हम मे से बारी-बारी से एक आदमी जगता रहे और शेष सोते रहे। यह तय कर वे एक पेड के नीचे आ बैठे। सबसे पहले दारुक जगा और पहरा देने लगा। जब दारुक को छोडकर तीनो सो गये तो इतने मे एक पिशाच उसके सामने आया और बोला—भाई, मुझे बडी जोरो की भूख लगी है अत मुझे इन तीनो आदमियो को खा लेने दे। दारुक ने कहा—यह कैसे हो सकता है ? मैं इनकी रक्षा के लिये खडा हुआ हूँ अत मेरे देखते हुए तू इन्हे कैसे खा सकता है ? तू खाना ही चाहता है तो पहले मुझे परास्त कर और फिर इनको खा। इस पर पिशाच लडने को तैयार हो गया। पिशाच और दारुक दोनो आपस में भिड गये और दोनों की गुत्थम-गुत्था होने लगी। जैसे-जैसे दारुक का रोष बढता जाता था वैसे-वैसे पिशाच का बल भी बढता गया। दारुक पिशाच को परास्त नही कर सका और उसका समय

पूरा हो गया। अब सत्यक की वारी थी। वह उठा, तो थका हुआ दारुक चुपचाप सो गया। कुछ देर वाद पिशाच फिर आया और उसने सत्यक से भी वही वात कही। सत्यक ने कहा—मेरे रहते हुए तू इनको नही खा सकता है। पहले मुझे हरा और फिर इनको खा। सत्यक भी पिशाच से लडा, पर पिशाच को परास्त नही कर सका। यह भी दारुक की तरह लोहूलुहान हो गया आखिरकार जव वलदेव की वारी आई तो वह भी थक कर सो गया। वलदेव भी पिशाच से लडा तो उसकी स्थिति भी दारुक और सत्यक जैसी ही हुई। वह भी थक कर चकनाचूर हो गया, पर पिशाच को परास्त नही कर सका। अब कृष्ण की वारी थी। जव वे पहरा देने के लिये उठे तो पिशाच ने उनसे भी यही वात कही। दोनो का युद्ध शुरू हुआ। कृष्ण शान्त खडे हो गये। पिशाच का जैसे-जैसे वल वढता गया वैसे-वैसे कृष्ण शान्ति से उसे कहते रहे—शावाश तू वडा वीर है! तेरी माता धन्य है, जिसने ऐसा वीर पुत्र पैदा किया! इस तरह जैसे-जैसे कृष्ण शान्त रहते गये वैसे-वैसे पिशाच का वल भी निर्वल होता गया और वह इतना निर्वल हो गया, कि कृष्ण ने उसे पकड कर अपनी जेव मे भर लिया।

वन्धुओ! यह एक रूपक है। क्रोध ही पिशाच है और नाशवान् है। जव तक उसे सामने से वल मिलता है तव तक वह टिकता है लेकिन जव उसे सामने से वल नही मिलता है तो वह निर्वल हो जाता है। कृष्ण के सामने वह पिशाच हार खा जाता है। सवेरे जव सव उठे तो तीनो के शरीर लाल-लाल हो रहे थे। जव कृष्ण ने उनसे पूछा तो उन्होने

कहा, कि हम रात मे एक पिशाच से लडे थे और उसी का यह परिणाम है कि हमारा शरीर खून से लथ-पथ, लाल-लाल हो गया है। तब कृष्ण ने उनसे कहा—भाई, पिशाच भयकर नही होता है। यदि हम उसे बल नही दे तो वह तत्क्षरण निर्बल हो जाता है। इसके विपरीत यदि हम जैसे-जैसे उस पर रोष करे, वैसे-वैसे वह भयकर होता जाता है। तुमने उस पर रोष किया था, इसलिये तुम उसे अपने वश मे नही कर सके। देखो, मैने उस पर तनिक भी रोप नही किया तो वह मेरे सामने इतना निर्बल हो गया, कि मैंने उसे अपनी जेव मे भर लिया है। अब वह मेरा दास बन गया है।

कहने का तात्पर्य इतना ही है कि क्रोधी के सामने क्रोध नही करना चाहिये। वह तो क्षमा से ही वश मे किया जा सकता है। धूल उडती हो और कोई उस पर पानी के वजाय धूल ही डाले तो क्या वह दब सकती है ? उसी तरह अगर हम क्रोध पर भी क्षमा का पानी नही डालेगे तो वह भी दवने का नही है। अत क्षमा, यह अमरता प्राप्त करने का पहला धर्म है, इसे अपने जीवन मे अवश्य स्थान देना चाहिये।

मनुष्य अपने कर्मानुसार उसी योनि मे पैदा होता है जहाँ वह अपनी प्रकृति का पूरा-पूरा उपयोग कर सकता है। सर्प, बिच्छू, सिह आदि की प्रकृति ऐसी ही है, अगर हमारे मे क्रोध की प्रकृति अधिक होगी तो उससे सर्प या विच्छू की योनि ही प्राप्त होगी। यदि लोभ की वृत्ति ज्यादा होगी तो उससे चीटी की योनि ही प्राप्त होगी। माया की वृत्ति होगी तो उससे मनुष्य को शृगाल या लोमडी की योनि ही प्राप्त

होगी। अत ऐसी प्रकृतियो को अगर हम वश मे नही करेगे तो ऐसी प्रकृतियाँ जहाँ रहती है वहाँ ही हमे जन्म लेना पडेगा और अकाल मृत्यु का सामना भी करना पडेगा। साप को देखकर क्या कोई उसे जीवित रखना चाहता है या स्वतत्र फिरने देना चाहता है, अत अगर आज हमे विवेक ज्ञान मिला है तो हमे ऐसी प्रकृतियो पर काबू पा लेना चाहिये। और इसीलिये क्षमा धर्म की सर्व प्रथम आवश्यकता बताई है, जो कि अमरता का प्रथम सिह द्वार है।

दूसरा धर्म है मुक्ति–निर्लोभवृत्ति -अपरिग्रहवृत्ति या अस-ग्रह वृत्ति।

पश्चिम का बादशाह पायरस एक बार युद्ध करने जा रहा था, तब उससे एक तत्त्ववेत्ता ने पूछा–महाराज, आप कहाँ जा रहे हैं? बादशाह ने उत्तर दिया—मै इटली को जीतने के लिये जा रहा हू। तत्त्ववेत्ता ने अपने प्रश्न को बढाते हुए कहा–इटली को जीत कर क्या करोगे? बादशाह ने कहा—फिर अफ्रीका जीतू गा। तत्त्ववेता ने फिर पूछा—तब क्या करोगे? बादशाह ने कहा–तब आराम करूँगा। तत्त्ववेत्ता ने कहा–तो आप अभी से आराम क्यो नही करते है? क्या युद्ध करने के बाद ही आराम कर सकेगे? बन्धुओ! हमारी भी आज ऐसी ही स्थिति हो रही है मनुष्य आज पैसा बटोरने मे लगा हुआ है और फिर उससे आराम करने की बात सोच रहा है। लेकिन विचारने की बात तो यह है, कि क्या वह इससे आराम पाता भी है? आप सच मानिये, उसका आराम तो एक तरह रह जाता है, पर वह पैसे मे ही उलझ जाता है। आज बम्बई मे ट्राम मोटर और

सीढी है---अपनानी चाहिये और जीवन मे शान्ति स्थापित क
अमरता प्राप्त करनी चाहिये ।

१४ अगस्त, १६५

२४

अमरता की पगडंडियां—३

अमरता का तीसरा मत्र है सरलता, जिसे दूसरे शब्दो मे 'आर्जव' कहा है। उत्तराध्ययन मे जब भगवान् महावीर से यह पूछा गया कि भगवान्! धर्म स्थिर कहाँ होता है? तब भगवान् महावीर ने कहा है—

'सोही उज्जु य भूग्रस्स धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ'

अर्थात्—सरल हृदय मे धर्म स्थिर होता है। कृष्ण वशी बजाते थे तो लोग अपना भान भूल जाते थे। ऐसा क्या था उस वशी मे? जिससे वे कृष्ण को भी भूल जाते थे और वशी को ही याद रखते थे? आज भी वशी बजती हो तो हमारा ध्यान झट उस तरफ लग जाता है। बताइए, ऐसा क्यो होता है? इसका कारण यह है कि बशी सिर से पैर तक पोली होती है—सरल होती है। अगर वह पोली न हो और उसमे कचरा भरा हुआ हो तो क्या उसमे से सुन्दर स्वर निकल सकेगा? त्रिकाल मे भी नही निकल सकता है। हमारा शास्त्र भी यही कहता है, कि जिसका हृदय सरल बना हुआ है। उसमे से ही धर्म का मधुर सगीत प्रादुर्भूत हो सकता है—निकल सकता है। इसीलिये मनुष्य को आर्जव यानी ऋजुभूत सरल बनने के लिये कहा गया है। ईशु खिस्त ने भी कहा है—

'तुम छोटे बालक जैसे बनोगे तभी तुम्हे ईश्वर मिलेगा।' इसका अर्थ भी यही है कि मनुष्य को सरल बनना चाहिये। अग्रेजी मे एक जगह और भी कहा है—'ग्रह मडल मे जो जितने छोटे ग्रह हैं, वे उतने ही अधिक सूर्य के पास है।' जैसे छोटे-छोटे ग्रह सूर्य के पास है वैसे ही बालक भी ईश्वर के ज्यादा निकट होते हैं। एक शत्रु का बालक भी क्यो न हो, पर उसके प्रति भी हमारे हृदय मे प्रेम ही पैदा होगा। बालक की निर्दोषता और सरलता ही प्रेम का कारण होती है।

मानव मे सरलता हो तो उसका हृदय आनन्दित और प्रफुल्लित रहता है। यही अमरता का तीसरा सिद्धान्त है।

निष्कपट भाव से यह मतलब नही समझना चाहिये कि किसी की गुप्त बात भी प्रकट करदी जाय, लेकिन किसी के अहित के लिये कोई बात छिपी हुई नही रखनी यही समझना चाहिये।

अमरता की चौथी पगडडी है मार्दव-मृदुता यानी मद का अभाव। मद-अहकार का जिससे मर्दन किया जाता है वही मार्दव है और उसका दूसरा नाम विनय है। विनय धर्म का मूल है और उसके बिना ज्ञान नही प्राप्त किया जा सकता है। बिना ज्ञान के धर्म कहाँ? धर्म के बिना चारित्र नही और चारित्र के अभाव मे मोक्ष कैसे हो सकता है? अत परम्परा से मोक्ष का कारण विनय ही है।

कुए मे घडा डाले, पर घडा नीचे जाकर नमे नही-झुके नही, तो क्या उसमे पानी भरा जा सकेगा? नमे बिना जैसे उसमे पानी नही भरा जा सकता है, वैसे ही ज्ञानी पुरुषो के पास ज्ञान तो होता हैं, पर हमारे मे नम्रता न हो तो हम कुछ

भी ज्ञान प्राप्त नही कर सकेंगे। एक विद्वान् ने कहा है—

'तुम खाली होकर जाओगे तो गुरू को भी खाली कर सकोगे।

सौक्रेटीज ने भी कहा है—

'जो मानव यह कहे कि मै कुछ नही जानता हूँ, समझ लो वही ज्ञानी है। जो अपने ज्ञान का अभिमान रखता है वह मूर्ख है।'

इस तरह का विनय जिसमे होता है, वही मोक्ष प्राप्त कर सकता हैं। अभिमान से जो भी कार्य किया जाता है वह व्यर्थ होता है। सेवा करने वाला या ज्ञानी अभिमान करे तो उसका फल निरर्थक हो जाता है।

एक बार नारदजी किसी जगल मे फिर रहे थे, वहाँ उन्होने एक तपस्वी को देखा। तपस्वी ने नारदजी से नमस्कार किया और पूछा—आप कहाॅ जा रहे है? उत्तर दिया ब्रह्म-लोक मे। तपस्वी ने कहा—आप जरा ब्रह्माजी से पूँछते आना कि मुझे मुक्ति कब मिलेगी? नारदजी ब्रह्मलोक पहुचे और उम तपस्वी का सवाल ब्रह्माजी से कहा—ब्रह्माजी ने चौपडो की तरफ इशारा करते हुए कहा—ये चौपडे पडे हुए है, इनमे देख लो। जहाॅ उसका नाम होगा वहाॅ उसकी मुक्ति के बारे मे भी लिखा हुआ होगा। नारदजी ने सारे चौपडे छान डाले, पर कही भी उस तपस्वी का नाम उन्हे नजर नही आया। तब ब्रह्माजी ने कहा—वह तपस्या तो करता है, पर उसका अहकार अभी नष्ट नही हुआ है, अत उसे मोक्ष नही हो सकता। नारदजी लौटकर पुन उसी जङ्गल मे आये तो तपस्वी ने उनसे पूँछा—क्या आपने मेरा नाम देखा? नारदजी

ने कहा—भाई, मैंने ब्रह्माजी के सारे चौपडे छान डाले, पर कही तुम्हारा नाम नजर नही आया। तपस्वी ने कहा—ब्रह्माजी के सभी चौपडे झूठे है। क्या मेरे जैसे तपस्वी का नाम भी उनमे नही है ? इसका कारण भी क्या आपने पूछा ? नारदजी ने उसे उत्तर देते हुए कहा—ब्रह्माजी ने कहा था कि वह तपस्या करता है, पर उसका अहकार अभी नष्ट नही हुआ है, अत उसे मुक्ति नही मिल सकती है। तपस्वी ने कहा सच है नारदजी, मै अहकार तो करता ही हूँ, अत यह नही करना चाहिये। इतने मे ही एक विमान आकाश से नीचे उतरा और तपस्वी के पास आकर खडा हो गया। नारदजी ने पूछा—यह विमान क्यो आया है ? तब विमान-चालक देव ने कहा—इन तपस्वी को स्वर्ग मे ले जाने के लिये। नारदजी ने आश्चर्य से कहा—अभी तो मै ब्रह्माजी से मिलकर आया हूँ और उनके सभी चौपडे देखकर आया हूँ, कही भी इनका नाम नही था और अब विमान आ गया है, यह कैसा अधेर है ब्रह्माजी के राज्य मे भी ? लेकिन जब उन्हे यह ज्ञात हुआ कि अब यह तपस्वी अहकार रहित हो गया है, तो उनके आश्चर्य का भी पार नही रहा। कहने का मतलब, इस कथा से इतना ही है कि अहकार रहित होकर ही जब हम तप करेगे तभी वह फलदायी हो सकेगा।

वाहुवली ने भी घोर तप किया और यहाँ तक कि उनके शरीर पर वेले (लताएँ) चढने लग गई, पर फिर भी वे सिद्धि लाभ से वचित ही रहे थे। क्या आप जानते है उसका कारण क्या था ? वे इतना घोर तप करते हुए भी अहकार को नही छोड सके थे। उनके मन मे यह मद भरा हुआ था कि मै वडा

होकर अपने छोटे भाइयो को (जो कि दीक्षा मे बडे थे) नमस्कार कैसे करूँ ? अत वे सिद्धि-लाभ केवल ज्ञान नही प्राप्त कर सके थे। लेकिन जव उनकी दोनो वहिने—ब्राह्मी और सुन्दरी उन्हे समझाती है और कहती हैं कि भाई, हाथी पर से नीचे उतरो, अहकार रूपी हाथी पर बैठे-बैठे तुम्हे सिद्धि कैसे मिल सकेगी ? तब उन्हे खयाल आता है कि मै तो अहकार रूपी हाथी पर बैठा हुआ हू। इससे मेरा कल्याण कैसे हो सकेगा ? यह सोच कर जैसे ही वह अभिमान को छोडते है और अपना कदम आगे बढाते है, वैसे ही उनका हृदय अलौकिक प्रकाश से जगमगा उठता है। उन्हे केवल ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। पहले तपस्वी ने जैसे ही मद का त्याग किया, वैसे ही विमान स्वर्ग से उसको लेने के लिये आया और बाहुबली ने जैसे ही मद को त्यागा और मृदुता धारण कर आगे कदम बढाया वैसे ही उन्होने कैवल्य प्राप्त किया। यह दोनो उदाहरण हमे यह स्पष्ट बताते है, कि विनय के बिना कोई फल नही मिल सकता है। विनय ही सबका मूल है। इसका होना जीवन मे अत्यावश्यक है।

मृदुता का दूसरा अर्थ भी होता है और वह यह कि मानव अपने दोषो के प्रति तो कठोर रहे, पर दूसरो के प्रति बडा उदार बना रहे। लेकिन हमारी आज की स्थिति बिल्कुल विपरीत हो गई है। हम आज दूसरो के दोषो को तो कठोर निगाह से देखते है, पर अपने दोषो के प्रति ध्यान भी नही देते। लेकिन जव हम अपनी इस भूल को सुधार कर अपने दोषो के प्रति कठोर बनेगे और दूसरो के प्रति उदार नम्र होगे, तभी हम मनुष्यत्व प्राप्त कर सकेंगे और तभी हमारे पास दूसरे मानव

भी आने को उत्सुक रहेगे।

मनुष्य का हृदय जब ऐसा हो जाय कि वह दूसरे के परमाणु जैसे गुण को भी महान् पर्वत जैसे समझे और अपने परमाणु जैसे दोष को भी पर्वत जैसा माने, तभी मृदुता या सौम्यता उसमे आ सकती है। लेकिन आज, हमारी स्थिति बिल्कुल इससे विपरीत है। बाइबिल मे एक जगह कहा है—

तुम दूसरो के दोषो को क्यो देखते हो ? पहले अपने ही दोषो को देखो।'

आज हम अपना मुँह नही देख सकते हैं, पर दूसरे के सिर पर लगी हुई काली बिन्दी हम देख लेते हैं। लेकिन जब हमे अपने जीवन मे मृदुता का सचार करना है तो हमे ऐसी दृष्टि छोड देनी चाहिये। क्योकि दुनिया का यह नियम है कि अगर मनुष्य दूसरो के दोषो पर ही अपनी नजर रखता है तो उसके जीवन मे भी वे दोष आये बिना नही रहेगे। अत अगर मनुष्य को अपने हृदय मे कचरा नही भरना हो तो उसे गुणो की तरफ ही नज़र रखनी चाहिये। गाँधीजी अपनी छोटी-सी भूल के लिये भी कठोर दण्ड लेते थे, पर दूसरो की भूलो को वे सरलता से निवटा देते थे। इस प्रकार जब मानव भी दुर्गुणो का समूह न बन कर सद्गुणो का समूह बनेगा तभी वह अपना कल्याण कर सकेगा।

१६ अगस्त, १९४८

२५

अमरता की पगडण्डियाँ—४

लघुता अमरता का पाचवा साधन है। इसके विना ज्ञान की प्राप्ति नही हो सकती है और ज्ञान के अभाव मे चारित्र और मोक्ष भी नहीं प्राप्त किये जा सकते। मनुष्य, जिसके पास भी ज्ञान प्राप्त करने जाय, वहा लघुता नही अपनावे तो कभी भी ज्ञान प्राप्त नही कर सकता है। स्वामी रामकृष्ण ने कहा है—'जीवात्मा माया के जाल से वँधा हुआ है, अत वह शिव-रूप नही हो सकता है।' माया-जाल से छूटने के केवल दो ही मार्ग हैं। पहला यह कि मनुष्य इतना सूक्ष्म हो जाय कि वह माया के जाल मे अटके ही नही, वह माया जाल के छिद्रो मे से भी निकल जाय। ऐसी लघुता इसी लाघव गुण से आती है। माया के पाश से वचने का दूसरा उपाय यह है कि मनुष्य अपना आत्म-भाव इतना विकसित कर ले, कि वह माया के पाश से वँध नही सके। लाघवता का गुण ऐसा ही चमत्कारिक है। वह एक तरफ मनुष्य को ऐसा छोटा वना देता है, कि वह-जाल के छिद्रो मे से भी निकल सके और दूसरी तरफ यह मानव को इतना विशाल वना देती है, कि माया-पाश की डोरी उसे बाँध भी न सके। हम तीर्थंकरो के लिये जो यह कहते हैं, कि वे किसी को अपना

सिर नही झुकाते है, इसका रहस्य भी तो यही है कि वे अहंकार को त्याग कर अपना आत्म-भाव इतना विकसित कर लेते है कि पृथ्वी के समस्त जीवो के प्रति उनकी करुणा-भावना रहती है। यही लाघवता का पाँचवा मंत्र है।

छठा मत्र है सत्य। सत्य के बारे मे क्या कहा जाय ? सत्य ही जीवन का पाया है। जो सत्य बोलता है वही ब्राह्मण है। एक शूद्र भी अगर सत्य बोलता है तो वह ब्राह्मण है। और जो ब्राह्मण होकर भी झूठ बोलता है तो वह शूद्र है। पुराने समय की बात है—महर्षि गौतम अपने आश्रम मे ब्रह्मचारियों को वेदाभ्यास कराया करते थे। उस समय आज की तरह कालेज और यूनीवर्सिटिया नही थी। उस समय तो तापसो के आश्रम ही, जो कि जगलो मे हुआ करते थे, यूनिवर्सिटियाँ थी। आज का हाल तो यह है कि गॉवो के लोगो को भी शहरो मे आना पडता है और शहरी जीवन बनाना पडता है। लेकिन पुराने ज़माने मे शहरी मानव भी जगल मे जाता था वैसा ही स्वाभाविक जीवन भी बिताता था।

आज मनुष्य भाषण सुन कर चला जाता है और उसे ५-७ रोज़ तक ही याद रख सकता है। लेकिन जो मनुष्य देख कर सस्कार ग्रहण करता है वह अधिक समय तक बना रहता है। पुराने समय मे तपस्वियो के आश्रम मे भी ऐसा ही जीवन घडता था कि जिससे शुरूआत मे ही मानव का जीवन त्याग मय हो जाता था। गौतम मुनि के आश्रम मे भी ऐसे छात्र पढते थे। एक दिन वे वट वृक्ष के नीचे बैठे हुए लड़को को पढा रहे थे, इतने मे एक ८ वर्ष का बालक गौतम के पास आया और बोला—महाराज, मुझे भी ब्रह्म-ज्ञान

दीजिये। गौतम मुनि ने बडे प्रेम से पूछा—बेटा, तेरी जाति (गोत्र) क्या है? क्या तुम ब्राह्मण हो? लडके का नाम था सत्यकाम। उसने कहा—महाराज, मुझे अपनी जाति का तो पता नही है, मै अभी अपनी मा से पूछ कर आपको कहता हूँ। लडका दौडा हुआ अपनी मा के पास गया और बोला—मां गुरूजी ने मेरी जाति पूछी है, बता, मेरा गोत्र क्या है मा? माता ने आसू बहाते हुए कहा—बेटा! तू मेरे विधवा होने के बाद जन्मा है। अतः तू अपने गुरूजी से यह कहना कि मेरी माता का नाम 'जाबाला' है और मै उसके विधवा होने के बाद (अमर्यादित कामचार से) पैदा हुआ हूँ।'

सत्यकाम ने यही बात साफ-साफ शब्दो मे गौतम मुनि से जाकर कह दी। उसकी बात को सुन कर सब लडके हँसने लगे। लेकिन गौतम मुनि ने कहा—'ब्रह्मज्ञान का सच्चा अधिकारी आज मुझे मिल गया है। मैं सत्यकाम को आज ब्रह्मज्ञान का उपदेश दूंगा।' गुरूजी की बात को सुन कर सब लडके आश्चर्य मे पड गये। सब एक दूसरे से काना-फूँसी करने लगे कि यह कैसी बात गुरूजी ने कही है। जिसके पिता का भी पता नही, भला वह कैसे ब्रह्मज्ञान का अधिकारी हो सकता है? दूसरे ने कहा—हमे तो छह-छह मास हो गये, पर अब भी ब्रह्मज्ञान का उपदेश नही मिला, और इस सत्यकाम को, जो कि अपने को विधवा-पुत्र कहता है, आज ही उपदेश मिल रहा है। यह कैसी विचित्र बात है? गौतम मुनि ने कुछ देर रुक कर कहा—लडको! जो सच बोलता है वही ब्राह्मण है और वही ब्रह्मज्ञान का अधिकारी भी है। भले ही कोई जाति से शूद्र हो, पर सत्य बोलता हो तो वह शूद्र होते हुए

भी ब्राह्मण ही है। यही सत्य अमरता का छठा मत्र है, जिसको धारण करने पर मनुष्य अमर बन सकता है।

अमरता का सातवाँ साधन है सयम। आज का वैज्ञानिक युग वासना तृप्ति मे ही जीवन की सार्थकता समझता है। लेकिन इस सिद्धान्तानुसरण से जीवन कैसा भारभूत हो जाता है? यह एक विचारणीय सवाल है। आज तो विवाह का भी कन्ट्राक्ट होने लग गया है। चार-छह मास मे ही ऐसे विवाह टूट जाते हैं। लेकिन प्राचीन जमाने मे ऐसी बात नही थी।

अमेरिका मे आजकल ऐसा कर्फ्यू चालू हुआ है कि कोई भी युवक या युवती रात के १० बजे के बाद बडे आदमियो को साथ मे रखे विना बाहिर नही निकल सकते हैं आप जान सकते हैं कि यह नियम असयम वृत्ति को दूर करने के लिये ही लगाया गया है।

पाश्चात्य सस्कृति चार पुरुपार्थ मे से अर्थ और काम को ही मुख्य समझती है जब कि प्राच्य सस्कृति धर्म और मोक्ष को प्रधान समझती है। इसीलिये पाश्चात्य देश अर्थ प्रधान और प्राच्य देश धर्म प्रधान कहे जाते हैं। आज आप भले ही हिन्द के किसी ग्रामीण मनुष्य से पूछे, वह भी दो चार ऐसी नई धार्मिक बाते सुना देगा जैसी कि आपने पहले नही सुनी होगी। इसका कारण अगर आप सोचेंगे तो आपको यह प्रतीत होगा, कि हमारे यहाँ धर्म साधन है और मोक्ष साध्य। लेकिन पाश्चात्य देशो मे अर्थ साधन है और साध्य है काम। इसलिये जहा हमारे यहाँ कई धर्म-शास्त्र लिखे गये, वहाँ पाश्चात्य देशो मे इनके बजाय कई अर्थ शास्त्र लिखे गये हैं।

क्योकि वहॉ अर्थ की ही प्रधानता मानी गई है। इस तरह हम देखते है कि दोनो की सस्कृति बिल्कुल भिन्न-भिन्न है। हमारी सस्कृति जहॉ सयम का महत्त्व सिखाती है, वहॉ पाश्चात्य सस्कृति सयम का महत्त्व नही बताती, वह तो योग के बजाय भोग मे प्रवृत्त होना सिखाती है।

आज वैज्ञानिक आविष्कारो के बल से हम २४ घटो मे ही पूर्व से पश्चिम मे चले जाते है। अत आज पाश्चात्य मुल्को के ये सस्कार भी हमारे दिलो मे घर करते जारहे हैं। गुण भी आये है, पर बहुत थोडे, जिन्हे कि गिन कर बताया जा सकता है। पर दोषो का तो कोई ठिकाना ही नही है। पाश्चात्य देशो के इस चर्म-रोग ने हमारा जीवन भी अशान्त बना दिया है। इसलिये आज हमारा जीवन भी धीरे-धीरे काम और अर्थ प्रधान होता जा रहा है और विपरीत मार्ग पर गति कर रहा है। अत आवश्यकता है उसे सयम बना कर सीधे मार्ग पर चलाने की। और यह तभी हो सकता है जब कि हमारा जीवन सयम प्रधान हो। यही सयम हमारा सातवॉ सोपान है जिस पर चलकर मनुष्य अमरता के द्वार खटखटा सकता है—अमर बन सकता है।

१७ अगस्त, १९४८

अमरता की पगडण्डियाँ—५

पुराने जमाने के तपस्वियो मे बहुत कठोर तप का प्रचलन था। वे गरम,गरम रेत पर सो जाते थे, पंचाग्नि का सेवन करते थे, ठण्ड सहन करते थे और इस प्रकार उग्र काय-क्लेश किया जाता था। उस समय तप की यही व्याख्या थी। भगवान् महावीर और बुद्ध के समय ऐसा ही तप किया जाता था।

तप अमरता का आठवा साधन है। लेकिन पुराने समय मे जो तप किया जाता था, वह कोरा बाह्य तप था। इसलिए भगवान् महावीर और बुद्ध ने आन्तरिक तप पर जोर दिया था हमारे शास्त्रो ने तप के दो भेद किये है—आभ्यन्तर और बाह्य। बाह्यतप–अनशन, उणोदरी आदि है। लेकिन ये तप जब आन्तरिक तप की पुष्टि करते है, तभी वे बाह्य तप कहे जाते हैं। एक दिन मैंने कहा था कि उपवास करने की प्रवृति भी भिन्न-भिन्न होती है। किसी को सेवा-कार्य ज्यादा रहता हैं, फलत. भोजन करने की फ़ुरसत नही मिली तो उसने उपवास कर लिया। अथवा भोजन करते समय भूखे को भोजन देकर उपवास कर ले तो ये उपवास हमारे आज-

कल के उपवासों से ज्यादा महत्त्वशील है। शास्त्र-स्वाध्याय मे रत होकर उपवास कर लेना या सेवा करते हुए उपवास कर लेना अधिक महत्त्वपूर्ण है। और ऐसे उपवास ही अन्तर तप के साधक होते है। कई लोग शरीर-शुद्धि के लिए भी उपवास करते है, पर वे तप मे नही गिने जा सकते हैं। क्योकि वे शरीर-सुख के लिए किये जाते है। कुछ लोग प्रतिष्ठा के लिए भी उपवास करते हैं। मैं अट्ठाई करूँ—इससे मेरी वाहवाही होगी। क्या यह तप कहा जा सकता है? तप तो यह है कि सेवा करते-करते भोजन नही करना, भूखे को देख कर अपना भोजन दे देना और उपवास कर लेना, और यही सच्ची तपस्या भी है। केवल वाहवाही के लिये आडम्बर करके जो लम्बे उपवास करते हैं और पत्रिकाएँ छपा कर ज़ाहिर करते हैं उनमे सच्चे तप का अश मात्र भी नही होता। वे सच्चे तप नही होते हैं। बुद्धिमान तो कहते हैं, कि ऐसे तप कुतप है। ऐसे ही शरीर के लिए किये गये उपवास भी तप नही हैं परोपकार के लिये किये गये उपवास ही खरे उपवास हैं और वही सच्ची तपस्या भी है। आयबिल के बारे मे भी मैंने कहा था कि हम पाँच पक्वान्न बनाकर खा रहे हो और पडौसी सूखी रोटी खा रहा हो तो उसकी रोटी खुद खा लेवे और उसे पक्वान्न दे दे तो यह कितना अच्छा आयबिल होगा? वस्तुत यदि आप ऐसा करेंगे तो आपको बडा आनन्द आवेगा। भगवान् महावीर ने ऐसे ही तप का निर्देश किया है। विना इसके अन्तरङ्ग शुद्धि नही हो सकती है। लेकिन आज बाह्य आडम्बर अधिक फैल गया है और उसीको तप समझ लिया गया है, जो कि दरअसल मे ना समझी ही है।

ईश्वर भी प्रसन्न होता है ।

मार्ग मे चलते हुए अगर किसी को हीरे का हार मिलता हो तो क्या कोई उसे फेंक देता है जैसे उसे कोई नही फेकता, इसी तरह मार्ग मे चलते-चलते अगर कोई दु खी प्राणी मिले तो उसकी सेवा का मौका भी नही गँवाना चाहिये। पडौस मे अगर कोई बीमार हो तो उसकी दवा लाना नही भूलना चाहिये लेकिन आज तो हमारे घर की दीवार के पास दूसरे घर मे कौन बीमार है, इसका भी खयाल नही रहता है तो दूसरो की हम क्या सेवा कर सकते हैं ? कम से कम अपने पडौसियो की सेवा का लाभ तो हर एक मनुष्य को लेना ही चाहिये। कई मजदूर जब नौकरी पर जाते हैं और घर मे उनकी मा या भाई बीमार हो तो पीछे से उनकी क्या दशा होती होगी ? क्या कोई पानी पिलाने वाला भी उनके पास होता है ? कलकत्ते मे सतीश बाबू नामक एक कैमिस्ट थे। उन्होने गरीबो की करुणा-जनक हालत देख कर हरिजनो का एक आश्रम खोला और वहाँ यह काम करना शुरू किया कि अगर कोई बहिन बीमार हो तो उसके बदले खुद जाकर उसका काम करना और उसकी आवक चालू रखना, जिससे उसे अन्य मूसीबतो का सामना नही करना पडे। इस आश्रम मे जितने भी आदमी रहते थे वे सब ऐसे ही काम करते थे। दुपहर के समय मे वे हरिजन वास मे जाते और उनके बच्चो को शिक्षा देते थे। अखबार पढकर सुनाते थे और इस प्रकार उनकी मानसिक उन्नति करते थे। ऐसी सेवा का तप ही आन्तरिक तप है और यही श्रेष्ठ तप भी है।

आन्तरिक तप के बिना जो बाह्य तप किया जाता है

उसका कोई मूल्य नही होता है। आन्तरिक तप को पुष्ट करने वाले बाह्य तप ही सार्थक होते है, दूसरे नही अत ऐसे तप को अगर हम अपने जीवन मे स्थान देगे तो हम अपना जीवन पावन कर सकेगे।

१८ अगस्त २६४८

२७

रक्षाबन्धन

आज हिन्दुओ का पर्व-दिवस है। यह पर्व दो तीन नाम से पुकारा जाता है—श्रावणी, नारियल पूर्णिमा और रक्षा-बन्धन। हमारी सम्वत्सरि तो आज से २० रोज बाद आने वाली है पर आज का पर्व ब्राह्मणो की सम्वत्सरि है। जैसे सम्वत्सरि महापर्व हमारा सर्वोच्च पर्व है वैसे ही ब्राह्मणो का भी यह महापर्व है इसके बाद विजयादशमी आती है, जिस दिन क्षत्रियो को अपनी आत्मशुद्धि करनी पडती है। उसके बाद वैश्यो का पर्व दीवाली आती है और फिर शुद्रो का त्यौहार होली रूप मे आता है। इस तरह चारो वर्णों के अपने-अपने महापर्व आते है।

आज ब्राह्मणो का पर्व है। इसे श्रावणी भी कहते है। आज चोपाटी पर लोगो की कतारे लगी हुई होगी जो नहा धो कर अपने पापो की आलोचना करेगे। हमसे २० रोज पहले ये ब्राह्मण शुद्ध हो जायँगे। ये आज समुद्र में स्नान करेगे पर क्या इनके समुद्र मे या नदी मे स्नान करने से इनका सारे साल का पाप धुल जायगा ? समुद्र मे या नदी के पानी मे ये आज ही नही, रोज-रोज डुबकी क्यो नही लगावे, पर इससे उनका पाप नही धुलने का। पाप तो तभी धुल सकेगा

जब कि वे समुद्र मे नही, विवेक के पानी मे डुबकी लगावेगे। इनको सबसे पहले पाप की आलोचना करने के लिये अपने कुटुम्ब से शुरूआत करनी होगी। आज के इस पर्व पर हर एक आदमी को यह विचारना है कि हम पहले अपने कुटुम्ब का सुधार करे। जिस पर्व मे या जिस धर्म मे मनुष्य की सेवा का विधान न ही तो वे पर्व और वे धार्मिक क्रिया-कलाप निस्सार होते है। मनुष्य की सेवा करना ईश्वर की सेवा करना है और वह सभी मानते भी है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने भी गीताँजलि' की ११ वी कविता मे जो लिखा है उसे रसियन लोगो ने बहुत पसन्द किया है। उसमे कहा है--

एक भक्त मन्दिर जाता है और मन्दिर के चारो तरफ के दरवाजे बन्द कर ध्यान करने लगता है। लेकिन जब किसी ज्ञानी पुरुष को यह ज्ञात हुआ तो वह उससे कहता है—इन दरवाजो को बन्द कर तुम किसका ध्यान कर रहे हो ? आखे खोलो और देखो—परमात्मा यहा कहा है ?

तो फिर परमात्मा कहा है ? तेरा परमात्मा वहा है जहाँ मजदूर सडक बना रहा है, यहाँ किसान खेत जोत रहा है, उन दु खियो के पास तेरा परमात्मा है। तुझे यदि अपना परमात्मा चाहिए तो उन दु खियो की सेवा कर।'

सचमुच परमात्मा दु खी प्राणियो मे ही मिलता है। ईश रिव्रस्त ने भी अपने गिरि-प्रवचन मे कहा है—ईसाई मत में एक न्याय-दिवस माला गया है। उसी को लक्ष्य कर ईशु ने कहा—"भाइयो ! उस दिन परमात्मा सत्कर्म और दुष्कर्म करने वालो के दो भाग करेगे। सत्कर्म करने वालो से कहेगे— भाइयो ! जब मे दु खी था तुमने मेरी सेवा की थी, जब मे

भूखा और प्यासा था तब तुमने मुझे अन्न और पानी दिया था। इसलिए मैं तुम्हे सद्गति देता हूँ। इस पर लोगो ने परमात्मा से पूछा—तुम कब दुखी थे ? तुम कब भूखे और प्यासे थे ? और कब हमने तुम्हारी सेवा की थी ? ईश्वर ने कहा जिस भूखे मनुष्य को तुमने भोजन दिया और पानी पिलाया, वह उसे नही, मुझे दिया और पिलाया है। जिस दुखी मनुष्य की तुमने सेवा की, वह उसकी नही मेरी सेवा की है। अत मै तुम्हे सद्गति देता हूँ। अब दूसरे आदमियो से ईश्वर ने कहा—तुमने मुझे भोजन नही दिया, न पानी पिलाया और न सेवा ही की, अत मैं तुम्हे दुर्गति देता हू। इन लोगो ने भी उसी तरह ईश्वर से पूछा—भगवन् ! हमने कब तुम्हारी अवहेलना की ? ईश्वर ने कहा—जब एक भूखा आदमी तुम्हारे पास आया तो तुमने उसे भोजन नही दिया और न पानी ही पिलाया, यह तुमने उसकी नही, मेरी ही अवहेलना की है। अत मैं तुम्हे दुर्गति देता हूं।

बन्धुओ ! आज निराश्रितो का प्रश्न भी कितना गंभीर प्रश्न हो गया है। उनको आश्रय नही देना, परमात्मा को जगह नही देना है। अत अगर हम उन्हे आश्रय नही देगे तो याद रखिये हमको मनुष्य जन्म से हाथ धोना पड़ेगा। और भविष्य मे हमे मनुष्य जन्म नही मिलेगा। ईशु ने कहा—'परमात्मा उन दुष्कर्मियो को अन्त मे दुर्गति देता है।' हमारा सिद्धान्त भी क्या यह नही कहता ? वह भी तो यही कहता है कि 'सत्कर्म करने पर सद्गति मिलती है और दुष्कर्म करने पर दुर्गति।'

मनुष्य का प्रधान धर्म सेवा है, जो कि हममे होना ही

चाहिये। लेकिन आज हमारा मूल्याकन बिल्कुल विपरीत मार्ग पर जा रहा है। जिस चीज को मुख्य समझना चाहिये उसे हम गौण समझने लग गये है और गौण को प्रधानता दे रहे है। महात्माजी ने कई बार यह कहा था कि 'बडा बनना सरल है, पर भला होना कठिन है।' एक योद्धा युद्ध मे सैकडो पुरुषो का खून कर सकता है, पर एक भी दुःखी पुरुष का आँसू पोछना बडा कठिन है। आँसू पोछना बडे आदमी का लक्षण है, लेकिन यह बडा कठिन काम है मनुष्य में जब यह गुण होता है तभी वह बडा बन सकता है। लेकिन आज हम इन गुणो की दृष्टि से नही, पैसे की दृष्टि से बडा और छोटा मानने लगे हैं। गुणो की कमी-वेशी कोई नही देखते है। एक लक्षाधिपति के पास भले ही लाखो की सम्पत्ति हो, पर उसका हृदय विशाल न हो, तो वह बडा नही बन सकता है। जब तक हृदय विशाल नही होता है तब तक कोई भला नही बन सकता है। पैसो से तो मनुष्य का हृदय दब जाता है, अत पैसो से किसी का बडप्पन नही आका जा सकता है। मनुष्य का जीवन मन्त्र तो यह होना चाहिये कि वह भला बने, बडा बनने की फिक्र नही करे। हमारा जीवन ऐसा होना चाहिये कि हमे देखकर दूसरे आदमी खुश हो और आशीर्वाद दें। अन्धे हमे अपनी आखे समझें और लँगडो के लिये हम उनके पैर सिद्ध हो। तभी हम सद्धर्मी कहे जा सकते है। हमारे जीवन मे अगर यह बात न हो तो सम्वत्सरि को इनकी आलोचना करना व्यर्थ है।

मैने पहले कहा था कि आज ब्राह्मणो की सम्वत्सरि है। आज वे अपने पापो की आलोचना करेंगे। पर यदि वे अन्तर जीवन मे अपनी शुद्धि नही करेंगे तो उनकी यह आलोचना

आपका भी किसी से द्वेष-भाव हो तो आप तो अपनी पत्नी को या पुत्री को राखी देकर भेजें और उस द्वेष का अन्त करे। यही रक्षा-बन्धन का महत्त्व है। अगर यह कार्य आज से ही शुरू कर देगे तो सम्वत्सरि की आलोचना बड़ी सरल और लाभप्रद हो जायगी।

बहिन, भाई के राखी बाँधती है। आज मैं भी आप सब भाइयो को 'जिनवाणी' की राखी बाँधती हूँ। लेकिन बदले मे आप मुझे कुछ देगे भी? देना ही चाहिये। बहिन राखी बाँधे तो भाई को कुछ देना ही चाहिये। मैं आपसे दो चीजे माँगती हूँ—पहली यह कि पर्युषणो के दिनो मे शान्ति रखना—व्याख्यान शान्ति से श्रवण करना। और दूसरी बात है—चर्बी के वस्त्रो का त्याग करना। कहिये, क्या आप मुझे यह देगे? आप में से कितने इसके लिये तैयार होंगे? हमारा जैन धर्म तो खादी का ही प्रतिपादन करता हैं। इसके लिये भी अगर आप खादी का प्रयोग नही कर सके तो यह कितनी अशोभनीय बात होगी? जो भाई यह प्रतिज्ञा करते हैं कि हम पर्युषण मे चर्बी के वस्त्र नही धारण करेंगे, उन्हे ध्यान रखना होगा कि वे मील के कपडे पहन कर स्थानक मे न आवे। मेरी यह छोटी-सी माग हैं। पर देखना यह है कि आप सब मेरी इस छोटी-सी माग को पूरी करेंगे या नही?

आज का रक्षा-बन्धन रक्षा माँगता है। छह काय के जीवो की हमे रक्षा करनी है। बडी-बडी मीलो मे जो हिंसा होती है उसको ८ दिन के लिये अटकाइये। अटका न सकें तो आप उसमे भागीदार तो मत बनिये। यह कोई बडी मांग नही है। अगर आप सचमुच आज रक्षा-बन्धन मना रहे हैं तो इन

प्राणियो की रक्षा करने के लिए कटिबद्ध हो जाइये। इस हिंसा का त्याग कर दीजिये। चर्बी के कपडो मे स्थावर काय के जीवो की तो हिंसा है ही, पर पशुओ की और मानवो की भी हिंसा हैं। चर्बी के लिये पशुओ का सहार होता ही है, पर मील-उद्योग से बेकार मानवो की, जो कि भूख से व्याकुल होकर मर जाते है, उनकी हिंसा भी होती है। इस प्रकार चारो तरफ से चरबी वाले कपडे पहनने वाले को दोष लगते है। उनको आप क्या ८ दिनो के लिये भी नही छोड सकते। शास्त्रो मे लिखा है कि जहा हिंसा की वृत्ति हो वहाँ शास्त्र नही पढा जा सकता है। आपके वस्त्रो मे तो हिंसा समाई हुई है, तब, क्या मै आपको शास्त्र सुनाऊँ या नही!

आप खादी का प्रचार कीजिये और ऐसा नियम बनाइये कि मील के कपडे पहनने वाले उपाश्रय मे नही आ सके। मै तो अभी आप पर अधिक दबाव डालना नही चाहती, केवल आठ रोज के लिये ही यह चाहती हूँ कि आप सब पर्यूषण के दिनो मे अपनी वस्त्र-शुद्धि कर आत्म-शुद्धि करे। अगर आपने ऐसा किया तो आप अपने जीवन की शुद्धि कर सकेंगे और चिर शान्ति प्राप्त कर सकेंगे।

१९ अगस्त, १९४८

२८

पन्द्रह अगस्त

आज का दिन आज़ादी का दिवस है। आज से एक वर्ष पूर्व हिन्दुस्तान ने विदेशी राजकीय बन्धन तोड कर स्वतन्त्रता पाई थी। आज जगह-जगह स्वातन्त्र्य दिवस मनाया जायगा। लेकिन इस स्वातन्त्र्य दिवस मनाने का अर्थ क्या है ? इसका मतलब भी किसी ने लगाया है ? आज हम स्वाधीन हैं, पर हमारी स्वाधीनता हिन्द के मानव से हिसाब माँगती है, कि तुमने इस एक वर्ष मे क्या-क्या प्रगति की है ? क्या नवीन सुधार किये हैं ? आज का आजादी दिवस अपना यही हिसाब माँगता है। वह कहता है, तुम्हे राजकीय स्वतन्त्रता तो मिली पर सार्वदेशीय स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिये तुमने क्या किया ?

राजकीय स्वतन्त्रता तो एकदेशीय है, पर सार्वदेशीय स्वतन्त्रता कुछ और ही है। हमे राजकीय आज़ादी तो मिल गई है लेकिन पूर्ण स्वतन्त्रता के लिये हमे सामाजिक, धार्मिक और शिक्षण-सम्बन्धी आज़ादी अपेक्षित थी। इस दिशा में हमने कहाँ तक प्रगति की है ? यही हिसाब आज का दिन हमसे माँगता है।

सच्ची आजादी क्या है और उसे कैसे प्राप्त किया जाय ?

यह हम अभी समझे नही हैं। हमे अभी पूर्ण आजादी पाने के लिये अपनी बुद्धि, मन और इन्द्रियो को स्वतत्र करना है।

हमारी बुद्धि आज भ्रम से भरी हुई है। सौराष्ट्र मे फैले हुए हैजे के लिये आज हरिजनो को दोषी ठहराया जा रहा है। यह बुद्धि-भ्रम नही तो और क्या है? यह बुद्धि जब तक भ्रम मे पडी रहेगी तब तक स्वतत्रता आई, यह कैसे कहा जा सकेगा? आज आपके माता-पिता देवताओ के फेर मे पडे हुए हैं। अत ऐसी स्थिति मे हमारी बुद्धि स्वतत्र है, यह कैसे कहा जा सकता है? हमारा हृदय तो कठोर बना हुआ है। इसको जब तक निर्मल और दयालु नही बनावे तब तक कौन कह सकता है, कि हम आजाद हैं। हमारा मन अनेक तरह के लोभलालच से और क्षुद्र स्वार्थ से भरा हुआ है। जब तक हम इन दुष्कर्मों से मुक्त नही हो जायँ तब तक हमने मुक्ति पाई है, यह नही कहा जा सकता।

आज ऊच-नीच का कितना भेद-भाव समझा जा रहा है। इसी भावना के कारण हमारे राष्ट्रपिता गाँधीजी का खून हुआ है। आज से २५०० वर्ष पूर्व इसी जाँत-पात के विरुद्ध भगवान् महावीर ने क्रान्ति की थी। उन्होने कहा था—'चारित्रशील मनुष्य ही ऊ च बन सकता है, दूसरा नही।' आज से पच्चीससौ वर्ष पूर्व यह बात कही गई थी, पर आज तक उसके ऊपर क्या हमने अमल किया है? भगवान् महावीर के समय तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार तरह की ही जाति थी। पर आज तो चार हजार जातियाँ हो गई है। जब चार जातियो के लिये भी उस समय भगवान् महावीर ने क्रान्ति की थी, तो आज, अगर हम उनके भक्त है, तो क्या उससे भी

अधिक क्रान्ति नही करनी चाहिये ?

भारत को आजादी मिली, तब जिन्ना साहब ने पाकिस्तान माँगा। इस पर हमे रोष उत्पन्न हुआ था। लेकिन आज हमने जो भिन्न-भिन्न जातियो के चार हजार पाकिस्तान बना रक्खे है, क्या उन पर भी कभी हमे रोष आया है ? ये पाकिस्तान तो जिन्ना साहब के पाकिस्तान से भी ज्यादा भयकर है, लेकिन इसके प्रति कब किसे रोष आता है ? ये सब मन के विकार ही है जिन्होने आज मनुष्य को मनुष्य से इस बुरी तरह अलग कर दिया है। एक किस्सा मुझे याद आता है—

बगाल मे त्रिपुरा जिले के एक गाँव मे एक बार हैजा फैला, जिससे उस गाँव मे रहने वाले केवल दस, बीस हिन्दुओ को छोड़कर सब मर गये। एक मुसलमान का केवल ६ मास का एक बच्चा जीवित बचा था। उस बच्चे को देख कर एक हिन्दू स्त्री का प्रेम जाग उठा। आज हम स्त्रियो को अबला कह कर पुकारते है, पर सचमुच ये अबला नही, सबला है। पाशविक बल भले ही इनमे कम हो, पर दैवी बल का तो ये खजाना होती है। उस हिन्दू स्त्री को उस बच्चे पर दया आई और उसने उसका लालन-पालन किया। कुछ अर्से बाद किसी के यहाँ लग्न प्रसग का मौका आया। उस समय उस स्त्री से कहा गया कि तूने एक मुसलमान का पालन किया है अत तुझे हमारे लग्न मे आने का कोई अधिकार नही है। अन्त मे उस गांव के हिन्दुओ ने मिलकर उस स्त्री को ही नहीं, बल्कि उसने जहाँ-जहाँ भी भोजन किया था उन सबको भी जात बाहर कर दिया। मनुष्य समाज मे रहने का आदी होता है अत उन्होने बहुत कहा—सुना भी, पर उन्हे जाति

मे कोई स्थान नही दिया गया। तब विवश हो वे सब मुसलमान हो गये।

बन्धुओ ! अभी जो नोआखाली मे हत्याकाण्ड हुआ था, क्या उसमे ये मुसलमान बने हुए हिन्दू भाई नही रहे होगे ? अगर हम उन्हे अपने मे समा लेते तो क्या वे मुसलमान हो सकते थे ? ऊँच-नीच की भावना से ही वहाँ हत्याकाण्ड हुआ था। अत हमे सम्प्रदाय के भेदो को तोडकर सत्य को अपनाना है। अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये ही मुख्य चीज हैं, साम्प्रदायिक भेद तो गौण है, अत उन्हे दूर कर जब हम एक ही मानव जाति कायम करेगे, तभी सच्ची स्वतन्त्रता पाई, कहा जा सकेगी।

आज स्वतन्त्र शब्द का प्रयोग भी बढ गया है लेकिन सच बात तो यह है कि आज स्वतन्त्रता के बजाय स्वच्छन्दता बढती जा रहीं हैं। एक अंग्रेज लेखक ने कहा है--स्वतन्त्रता दो तरह की होती है-एक सच्ची स्वतन्त्रता और दूसरी खोटी स्वतत्रता मनुष्य जब अपनी इच्छानुसार जो चाहे, करे, तो यह खोटी स्वतन्त्रता है। आप दूसरे का शोषण कर पैसा इकट्ठा करो और उसे स्वतन्त्रता कहो तो यह स्वतन्त्रता नही, स्वच्छन्दता है। सच्ची स्वतन्त्रता तो यह है, कि जब मानव अपना कर्त्तव्य करता हो और बीच मे उसे कोई रोकना चाहे तो वह रुके नही और अपना कर्त्तव्य करता जाय। यही सच्ची स्वतन्त्रता है। स्वतन्त्रता मे सयम न हो तो वह शोभित नही होती है। दोनो मे दोनो का समावेश होना ही चाहिये। स्वतन्त्रता मे जब तक सयम न हो तब तक खोटी स्वतन्त्रता ही पल्ले पडने की है। कई मनुष्य सयम की मखौल करते है। लेकिन वे जरा कुदरत

की तरफ भी तो देखे। झाड ज़मीन के साथ बँधा हुआ होता है। अगर वह झाड़ यह कहे कि मै तो आकाश मे रहूँ, मुझे ज़मीन के साथ बधना नही चाहिये, तो उसका परिणाम क्या होगा ? वह मर जायगा। जब तक वह ज़मी के साथ बधा हुआ है, तब तक वह जीवित भी है। अत यह बन्धन ही उसके विकास का कारण है। नदी कहे कि मै दो किनारो मे बधी हुई नही रहूगी, तो क्या वह अपना पानी स्वच्छ रख सकेगी और महासागर से मिल सकेगी ? इसी तरह हमारी स्वतन्त्रता भी अगर सयम से नही बधी होगी तो वह भी नदी के पानी की तरह गन्दी हो जायगी।

सितार के तारो से मधुर सगीत निकलता है, लेकिन वे ही तार यदि ज़मीन पर पडे हो और हम उन पर अपनी अंगुलियाँ चलावें तो क्या उनमे से सगीत निकलेगा ? लेकिन वे ही तार यदि किसी कीली से बधे हुए हो और फिर हम उन पर अ गुलियाँ चलावे तो उनमे से कैसा बढिया सगीत ध्वनित होगा ? स्वतन्त्रता का भी यही हाल होता है। जब वह सयम से बधी हुई होगी तो सच मानिये उसमे से भी बडा मीठा-मीठा मधुर सगीत निकलेगा।

हमारे शास्त्रो मे कछुए का दृष्टान्त आता है। उससे सयम का आदर्श बताया गया है। जब वह अपने विकास का अवसर देखता है तो अपने अवयवो को बाहर निकालता है और जैसे ही सकट का समय देखता है वैसे ही वह अपनी इन्द्रियो को सकुचित कर लेता है। इसी प्रकार मनुष्य को भी विकास का समय देखकर ही अपनी गति-विधि करनी चाहिये, अन्यथा अपनी इन्द्रियो पर नियत्रण रखना चाहिये।

आज स्वतन्त्रता शब्द का खूब प्रयोग हो रहा है। लेकिन उसके अर्थ का आज विस्मरण हो गया है। स्व यानी अपना तन्त्र यानी नियत्रण अर्थात् अपना नियत्रण होना स्वतन्त्रता अपने पर दूसरो का नियत्रण हो गया हो तो यह परतन्त्रता है। अब देखना यह है कि आज हमारे पर हमारा ही नियत्रण है या वासना का ? अगर वासना का नियत्रण है तो हम स्वतन्त्र कैसे कहे जा सकेंगे ? अत स्वतन्त्र बनने के लिये पहले हमे अपनी वासना पर नियत्रण करना होगा। तभी हम स्वतन्त्र कहे जा सकेंगे।

आज हमे स्वतन्त्र हुए एक वर्ष हो गया है, पर उसमे हमने किया क्या ? एक सद्गृहस्थ हमे मिले थे। उन्होने कहा हिन्द आजाद हो गया है। लेकिन मैंने कहा—हम कहाँ आजाद हुए है ? जहाँ तक हम आजाद नही हो वहाँ तक क्या हम स्वतन्त्र है ? यह सच मानिये कि सयम न हो तब तक हमारी स्वतन्त्रता सच्ची स्वतन्त्रता नही है।

भाप (स्टीम) जब अनियत्रित होती है तो उसका कोई मूल्य नही होता है। लेकिन जब वही एक लोहे की नली मे बध जाती है तो बडे-बडे जहाज और स्टीमर चला देती है। इसी तरह हमारी आत्मा की शक्ति भी जब सयम मे बध जाती है तो वह भी सबल हो उठती है। इस समय की सामाजिक और व्यक्तिगत दोनो दृष्टि से जरूरत होती है। सामाजिक जीवन मे जो आज सघर्ष दिखाई दे रहा है, वह सयम के अभाव से ही तो हो रहा है। एक लकडी का छोटा-सा पुल हो और उस पर दानो तरफ से दो भेडे निकलती हो तो कहिये क्या हाल होगा ? अगर वे अपने शरीर को संकुचित

कर लेंगी तो दोनो पार हो जायँगी, अन्यथा नतीजा यह होगा कि वे दोनो ही नीचे गिर जायँगी। आज सामाजिक जीवन मे भी हमे ऐसे सयम की आवश्यकता है। जब यह होगा तभी सच्ची स्वतन्त्रता आई, कही जा सकती है।

महात्माजी ने जब सर्वप्रथम अग्रेजो के साथ लडाई शुरू की थी, उस समय उनके पास केवल १९ आदमी ही थे। अग्रेजो के पास जहाँ करोडों मानव थे वहाँ गाधीजी के पास सिर्फ १९ आदमी थे फिर भी क्या कारण था कि गाधीजी उनके सामने मोर्चा लेते रहे? आप जानते है उनके पास चारित्र का एक ऐसा बल था जिसके सामने इतनी बड़ी अग्रेजी सल्तनत भी परास्त हो गई। आज के पाच हजार वर्ष के इतिहास मे क्या कोई ऐसा उदाहरण भी है, कि किसी देश ने विना लडे ही स्वतन्त्रता पाई हो? हिन्द ने आज बिना खूनी लड़ाई के स्वतन्त्रता पाई है, पर इसके मूल मे अहिंसा और सयम की शक्ति रही हुई थी। उसी के बल पर गाधीजी ने आज हिन्द को आजादी दिलाई है। ऐसी सयम पूर्ण स्वतन्त्रता ही सच्ची स्वतन्त्रता है।

आज स्वतन्त्रता के साथ कई स्वातन्त्र्य बोले जाते है। जैसे वाणी-स्वातन्त्र्य, मुद्रा-स्वातन्त्र्य, आचार-स्वातन्त्र्य, विचार-स्वातन्त्र्य, मत-स्वातन्त्र्य आदि। लेकिन सच बात यह है, कि स्वातन्त्र्य कोई ऐसी सस्ती चीज नही है, कि वह हर किसी को मिल जाय। वैज्ञानिक संस्कृति जहाँ यह कहती है, कि स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है, वहाँ धार्मिक सस्कृति यह कहती है, कि मानव बधा हुआ है, उसे योग्यता विना स्वतन्त्रता नही मिल सकती है। अधे मनुष्य को क्या

भ्रमण-स्वातन्त्र्य दिया जा सकता है ? अगर देगे तो फल यह होगा, कि वह कुए मे गिर कर मर जायगा। इसी तरह लडाई करने वाला वाक्-स्वातन्त्र्य चाहे और दुराचारी आचार-स्वातन्त्र्य चाहे तो क्या उसे दिया जा सकेगा ? अत वैज्ञानिक सस्कृति ने जो यह स्वतन्त्रता पाने का हक दिया है, वस्तुत यह हक नही है, अधिकारी होने पर ही वह प्राप्त की जा सकती है। स्वतत्र तो एक ईश्वर ही है। मनुष्य तो वधा हुआ है और उसे स्वतत्र होने के लिये सयम और अहिंसा का पालन करना ही पडता है। जव हममे निर्भयता, प्रेम आदि अमरता के ईश्वरीय गुण आयँगे तभी हम स्वतन्त्र वन सकते हैं।

हिन्दुस्तान अध्यात्म प्रधान देश है। हर एक शास्त्र ने कहा है, कि आत्मा अमर है। लेकिन क्या हिन्द मे एक भी ऐसा बच्चा है जो मृत्यु से भयभीत न होता हो ? दूसरे देशो के मुकाबले भी हम मृत्यु से अधिक डरते है। दूसरे देशो वाले तो अपने राष्ट्र के लिये अपनी जान कुर्बान कर जाते है, पर क्या आप इसके लिये तैयार होगे ? अगर इतनी हिम्मत आप मे नही है तो फिर आप स्वतन्त्र कैसे कहे जा सकेंगे।

सन् १६०५ मे जव जापान और रूस का युद्ध हुआ था तव ५० जापानियो की टुकडी को २५० रूसियो ने एक जगल मे घेर लिया। उनमे से ४८ जापानी तो लडते-लडते मर गये, पर २ जापानी, जिनका नाम था—ओक और युत्स, वच निकले। आगे चल कर ओक भी वच नही सका, उसे रूसियो ने कैद कर लिया। लेकिन इससे पूर्व उसने अपने दूसरे साथी युत्स को एक रसियन भडा देते हुए कहा—भाई, मेरी जिन्दगी का अव कुछ ठिकाना नही है। जीना या मरना अव भगवान्

. २९

अमरता की पगडंडियां—६

अमरता के अमर साधनों मे 'त्याग' नौवाँ साधन है। कोई यह चाहे कि मै मर्त्य साधनो से अमर बनू तो यह असभव है। अमर बनने के लिये तो अमर साधन ही होने चाहिये। उन अमर साधनो मे त्याग नौवा साधन है। पूर्ण त्याग होना तो कठिन है पर इसके अभाव मे अल्प त्याग यानी दान किया जा सकता है। उत्तराध्ययन सूत्र के नवें अध्ययन मे नमि राजर्षि से इन्द्र कहता है—'तुम घर रहकर भी गौओ का दान दो तो त्याग-धर्म का पालन कर सकते हो फिर सन्यास लेने से क्या लाभ ?' इसका उत्तर देते हुए नमि राजर्षि ने कहा है—

जो सहस्स सहस्साए मासे-मासे गव' दए।
तस्सवि सजमो सेओ अदिन्तस्स वि किंचण।

प्रति माम दस-दस लाख गायो का दान देने पर भी त्याग करना ज्यादा प्रशसनीय है।

आज का दान तो ऐसा हो गया है, कि कई पापो के करने पर कुछ दान दे देना, दान बन गया है। जो कि सचमुच दान नही है। सर्वस्व त्याग करना तो बड़ा महत्व रखता है, पर जो ऐसा न कर सके उनके लिये दान का मार्ग बताया है।

इससे हम त्याग धर्म की पूर्णता धीरे-धीरे प्राप्त कर सकते है। दान के महत्व को समझने मे आज भूल की जा रही है। आप अपने घर मे यदि कुर्सी, टेबिल न रखकर चटाई पर बैठे तो क्या आपका काम नही चल सकता है? ऐसे-ऐसे फिजूल खर्च न कर वह धन गरीबो को दे देना ही दान है। और सर्वश्रेष्ठ दान तो यह है, कि अपनी पूर्ति योग्य वस्तु रख कर ही सब कुछ अनाथो को दे दे।

भगवान् बुद्ध के एक शिष्य ने दूसरे शिष्य अनाथपिंड से कहा—'तुम श्रावस्ती जाओ और भगवान् बुद्ध को भिक्षा देने के लिए जनता से कहो।' अनाथपिड श्रावस्ती जाकर कहता है और लोग भगवान् बुद्ध का नाम सुनकर मान देते है। कोई सोना देता है, कोई मोती देता है, कोई हीरा देते है इस तरह सब देते है। पर सब व्यर्थ का देते थे, जो कि उसे चाहिये नही था। अन्त मे वह एक जङ्गल मे जाता है और वहाँ भी यही कहता है, कि तुम भगवान् बुद्ध के लिए दान दो। इतने मे उसे एक आवाज सुनाई दी। अनाथपिंड, ठहरो, मेरी यह छोटीसी भेंट भगवान् बुद्ध को दे देना। यह कहते हुए एक बुढिया अपने शरीर पर से एक कपडा उतार कर दे देती है। भिक्षु वह कपडा लेकर सिर पर रखता है और नाचता हुआ कहता है—दुनियाँ मे अब भी दातार रहते है।' इस तरह सर्वस्व का दान ही पूर्ण दान होता है। एक करोडपति पचास हजार रुपया दे दे, पर कोई गरीब अपनी दो पाई मे से एक पाई का दान करदे तो इसका दान उस करोडपति के दान से भी आगे बढ जाता है। क्योकि दान का महत्व ही यह है कि कम से कम रखकर ज्यादा दे देना। दान सम्पत्ति का मोह छोडने

पर ही दिया जा सकता है। फूटे घडे पर सारी नदी का पानी डाल दो पर वह भरा नही जायगा। धन-सम्पत्ति की ममत्व-बुद्धि भी ऐसी है, कि वह कभी शान्त होने वाली नही है। संतोष के सिवाय वह कभी शान्त नही हो सकती है। एक अग्रेज तत्त्ववेत्ता ने कहा है—

'ये सासारिक सम्पत्ति सुपारी जैसी हैं।'

सुपारी काटने के लिये कइयो के कपडे फटे है, सुपारी ने कइयो के दाँत तोडे हैं, पर उसने कभी किसी का पेट भी भरा है? सम्पत्ति भी ऐसी ही वस्तु है उससे कोई तृप्त नही होता है। भगवान् महावीर ने लोभ विजय का महत्त्व कोई कम नही बताया है। उत्तराध्ययन मे तृष्णा को लता कहा है जिसमे मनुष्य वध जाता है। अत त्याग, जो कि नोवाँ है, उसको प्राप्त करने के लिये तृष्णा का त्याग करना चाहिये और दान देना चाहिये।

दसवाँ साधन है ब्रह्मचर्य। इसका अर्थ है ब्रह्म अर्थात् परमात्म भाव मे चर्य अर्थात् विचरना और उसमे रहना ब्रह्मचर्य है। हम स्थानक वासी कहे जाते है, पर इसका मतलब क्या आप जानते हैं? स्थानक मे रहना स्थानकवासी है तो क्या पत्थर? नही, चैतन्य मे रहना स्थानकवासी का अर्थ है। यही अर्थ ब्रह्मचर्य का भी है। आत्मा मे स्थिर रहे, वह ब्रह्मचर्य है। लोभ मे जाना, क्रोध मे जाना आदि व्यभिचार हैं। जैसे एक सती अपने व्रत मे रहती है और समय पर प्राण भी दे देती है पर ब्रह्मचर्य का पालन करती है, वैसे ही हमें भी पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये।

एक आदमी ने एक साधु से कहा—मुझे क्रोध बहुत आता है

इसका क्या करूँ ? मुनि ने कहा—तुम अपने पास अफीम की एक डिब्बी रक्खो। जैसे एक पतिव्रता मर जाती है, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये जब तुम्हे भी क्रोध आवे तो अफीम खाकर मर जाओ। यह उपदेश मुनि का बडा मननीय है। प्रत्येक मनुष्य को ब्रह्मचर्य के लिये ऐसा आत्म-गौरव जरूर रखना चाहिये। आत्मा मे रहना ब्रह्मचर्य है और इससे दूसरी भावना मे जाना व्यभिचार है। औरव्यभिचार मे जाने से पहले अफीम की गोली खा लेना क्या बुरा है ? अत लोभादि विकारो से बच कर पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये।

ये उक्त दस साधन अमरता के अमर साधन हैं। अगर हम इन दस साधनो को अपनावेंगे तो हमे अमर बनने के लिये दूसरी जगह नही जाना पडेगा। हम स्वत अमर हो जायेंगे।

: ३०

पर्यु षण

सुज्ञ भाइयो और बहिनो !

जिसका हम कई दिनो से इन्तजार कर रहे थे और तैयारी कर रहे थे, वह हमारा पवित्र पर्युषण-पर्व आज आ गया है। हमारे देश मे जैसे आजकल खादी-सप्ताह, राष्ट्रीय-सप्ताह आदि चलते है, वैसे ही हमारा यह धार्मिक सप्ताह कई वर्षो से चला आरहा है। यह पर्व हमारा लोकोत्तर पर्व है। दीवाली आती है तो हम अपने रुपये-पैसो की गिनती करते है और यह देखते है कि इस वर्ष की आमद कितनी रही ? लेकिन पर्युषण पर्व मे रुपये-पैसो के बजाय गुणो की गिनती करनी पडती है। यह वह परीक्षा का समय है, जब हमे यह देखना पडता है, कि हमने इस एक वर्ष मे कितने गुणो को अपनाया ? बारह महीनो के दिनो मे हमने अपने जीवन मे धर्म को कहाँ तक उतारा है। इसी की जॉच करने के लिए प्रतिवर्ष यह पर्यु षण पर्व आता है।

आज का दिन पर्यु षण का पहला दिवस है, जिसे 'अट्ठाई धर पर्व' कहा जाता है। यह पर्व हमे सम्वत्सरि की याद दिला देना है। धर का अर्थ है—पकडना—और मराठी मे तो धर का सीधा अर्थ ही पकडना होता है। तो अट्ठाई धर का अर्थ है—

सम्वत्सरि को पकड, यानी सम्वत्सरि को याद रख, जो कि आठ दिन बाद ही आने वाली है। 'महीने के घर' ने तो हमे यह कहा कि आज से ठीक एक मास बाद सम्वत्सरि आने वाली है, अत. अगर तुमने आज से ही उसकी तैयारी न की हो तो 'पन्दर के घर' जरूर कर लेना। परन्तु यदि तुम उस दिन भी भूल गये हो तो यह तीसरा 'अट्ठाई का घर' आया है, अब तो उसके लिए पूर्ण तैयार हो जाओ। यही आज का घर हमसे अपील करता है।

पर्व जो होते है, वे किसी न किसी कारण को लेकर पैदा होते है। जितने भी पर्व हमारे यहाँ मनाये जाते है उन्हे हम दो तरह के भेदो मे विभक्त कर सकते है—लौकिक और लोकोत्तर। जिन्हे मानुषी और दैवी पर्व के नाम से भी पुकार सकते है। दीवाली लौकिक पर्व है। वह मनुष्य की वाह्य शुद्धि करने आती है, पर पर्यूषण-पर्व आन्तरिक शुद्धि करने के लिए आता है। पर्वों के आरम्भ का इतिहास यदि हम विचारे तो हमे यह स्पष्ट ज्ञात होगा, कि हर एक लौकिक पर्व तीन कारणो से पैदा हुए है और होते है। कई पर्व भय से, कई लालच से और कई विस्मय से प्रारम्भ हुए है। नागपचमी और शीतला जैसे पर्व भय से उत्पन्न हुए हैं। नागपचमी को अगर नाग की पूजा नही की तो नाग काट जायगा और शीतला की पूजा नही की तो मानव बीमार हो जायगा——इसी भय से आज ये पर्व मनाये जाते हैं। लालच से पैदा होने वाले पर्वो मे मगला-गौरी और लक्ष्मी-पूजन आदि मुख्य है। कई पर्व विस्मय से भी पैदा होते है। जिनमे समुद्र-पूजा, सूर्य-पूजा, चन्द्र-पूजा, अग्नि-पूजा आदि मुख्य हैं। मनुष्य ने जब पहले ही पहले समुद्र देखा तो

उसे देखकर विस्मय हुआ और तभी से वह उसकी पूजा कर लग गया। इस प्रकार उक्त तीन कारणो से लौकिक पर्वों क शुरूआत होती है। लेकिन लोकोत्तर पर्वों की शुरूआत ऐस नही होती है। वे किन्ही दूसरे कारणो को लेकर आते है।

सब धर्मों में लौकिक और लोकोत्तर दोनो तरह के प हैं। मुसलमानो मे रमजान का पर्व लोकोत्तर पर्व है। इन दिनो मे वे कोई बुरा काम नही करते हैं। ईसाइयो मे 'क्रिस मस' के दिन लोकोत्तर पर्व है। इसी तरह हिन्दू धर्म मे भ है। लेकिन जैन धर्म की इन सबसे अपनी अलग ही विशेषता है। उसके जितने भी पर्व है, सब लोकोत्तर पर्व ही हैं। लौकिक पर्वों का कही नामोनिशान भी नही है। लोकोत्तर पर्व जो होते हैं, वे आत्म-शुद्धि के लिये ही होते हैं। हमारा पर्युषण पर्व भी लोकोतर पर्व है। अत यह हमे सन्देश देता है, कि तुम अपनी आत्म-साधना करो। पर्युषण का अर्थ भी पर्युपासना यानी देवाधिदेव की उपासना करना ही होता है। लेकिन आज हमारे सामने देवाधिदेव अरिहन्त या सिद्ध तो हैं नही, तब फिर हम उपासना भी करे तो किसकी? यह एक सवाल हमारे सामने खडा होता है। आप जानते होगे, कि देवाधिदेव जो होते है वे तीन गढ के भीतर विराजते है—यानी उनके चारो तरफ तीन गढ होते है। इसी तरह हमारे देवाधिदेव भी तीन गढ के भीतर विराजमान हैं। मन, वचन और काया के तीन गढ को लाँघकर जब हम भीतर प्रवेश करेगे तभी हम आत्मदेव के दर्शन कर सकेंगे। आत्मदेव और देवाधिदेव मे आप कोई अन्तर न समझे, आत्मदेव ही देवाधिदेव बनता है। अत हमे इसी आत्मदेव

की उपासना करनी चाहिए। लेकिन आत्मदेव की उपासना हो कैसे ? यह हमे समझ लेना जरूरी है। आत्मा की उपासना मन, वचन और काया को स्थिर रखकर की जा सकती है। मन को शुद्ध रक्खे—यानी मन मे ऐसा दृढ निश्चय करलें कि सम्वत्सरि तक कोई भी बुरा विचार हृदय मे नही आवे। बुरे विचार आवे भी तो उन्हे सद्विचारो से दूर कर देना चाहिये। ईर्ष्या का भाव आया तो तत्क्षण उसे प्रमोद-भाव से दूर कर देना चाहिये। क्रोध आवे तो गजसुकमाल जैसे क्षमा-वीर को याद करना चाहिये, जिसने कि जलते हुए अगारे अपने सिर पर सहन किये, पर रखने वाले के प्रति तिल भर भी क्रोध नही किया। उसे याद रखते हुए मनुष्य को यह विचार करना चाहिये, कि गजसुकमाल को तो अग्नि से जलाया गया था, पर मुझे तो कोई अग्नि से नही जला रहा है। फिर मैं क्यो किसी पर नाहक क्रोध करूँ ? इस प्रकार सोच कर मनुष्य को अपना क्रोध दवा देना चाहिये। यदि अहकार की भावना उत्पन्न हो तो तत्क्षण बाहुबली का स्मरण करना चाहिये और यह याद रखना चाहिये कि सम्पत्ति असार वस्तु है, एक न एक दिन नाश होगी ही। तव मै इसका अहकार क्यो करूँ ? ज्ञान भी हो तो यह सोच कर कि केवल ज्ञान के सामने मेरा यह ज्ञान नगण्य है, अहकार नही करना चाहिये। लोभ का विचार आवे तो यह सोचना चाहिये कि आशा और तृष्णा का अन्त नही है। मै जिस वस्तु का लोभ कर रहा हू, वह अन्त तक मेरे साथ आने वाली नही है, तव मै क्यो उसके पीछे-पीछे फिरूँ ? ऐसे निर्मल विचारो से सर्व, प्रथम मन को पवित्र रखना चाहिये। ऊँच नीच के भेद-भावो

का जब हमारे हृदय मे विचार उत्पन्न हो तो उस समय हम यह विचारें कि मेरा जैसा कोई भी दूसरा नीच इस जगत् मे नही है, फिर मै दूसरों को नीच क्यों कहू ? क्यों समझू ? इस प्रकार कोई भी बुरी वृत्ति मन मे उत्पन्न हो तो उसे तत्क्षण दूर कर देनी चाहिये।

मन, वचन और काया के इन तीन गढों मे से सर्व प्रथम मन के दरवाजो को खोलना चाहिये, और आगे बढ कर आत्मदेव के दर्शन करना चाहिये। मन के दरवाजों पर जो कुविचारो के ताले लगे हुए है, उन्हे सद्विचारो की चावियो से खोलना चाहिये और उसे शुद्ध रखना चाहिये। तभी हम अपने आत्मदेव का दर्शन कर सकेंगे।

मन के ऊपर लोभ और अनुदार वृत्ति के ताले लगे हुए है, जो कि सद्गुणो से और मन की उदारता से खोल कर फेंके जा सकते हैं। मनुष्य मे उदारता सब से पहले होनी चाहिये। जिस मनुष्य मे उदारता की मनोवृत्ति नही होती है और जो जड वस्तुओ से भी अपना मोह नही हटा सकता, वह कुछ भी नही कर सकता। इसलिये उदारता को अपनाकर सद्गुणो को अपनाना चाहिये और उससे मन के ऊपर लगे हुए तालो को खोल कर फेंक देना चाहिये। इस प्रकार मन का गढ पार कर जैसे ही मनुष्य आगे बढता है तो उसे वचन का दूसरा गढ मिलता है। इस गढ मे प्रवेश करने के पूर्व मनुष्य को अपनी वाणी शुद्ध कर लेनी चाहिये। आज से ही हम यह तय कर लें, कि सम्वत्सरि तक हम किसी को अप्रिय वचन, क्रोधपूर्ण वचन, लोभकारी वचन नही कहेंगे। हमारी वाणी सत्य, हितकारी और मृदु होनी चाहिये। ताकि

सुनने वाले हमारी बाते सुनें और हमारी तरफ बरबस आकर्षित हो जायँ। इस तरह हम वचन का गढ पार कर काया के गढ मे पहुँच सकते हैं, जो कि तीसरा गढ है। और इसे पार कर आत्मदेव के दर्शन किये जा सकते है। काया के ताले खोलने के लिये काया से शुभ काम लेना चाहिये। कान से शास्त्र-श्रवण आँख से अच्छा देखना और हाथ-पाँव से धार्मिक काम करना या असहायो की मदद करना चाहिये। कोई हमारे सामने निन्दा करे, पर हम अपने कानो से वह निन्दा नही सुनें। उससे तो शास्त्र श्रवण या असहाय गरीबो की बाते ही सुननी चाहिये। ऐसा करने से ही काया के कपाट पर लगे हुए ताले खुल सकते हैं।

तीन बन्दरो का एक जापानी चित्र आपमे से बहुतसो ने देखा होगा। उस चित्र मे एक बन्दर ने अपने दोनो कानो को अपने हाथो से बन्द कर रक्खे है, दूसरे ने अपनी आँखे बन्द कर रक्खी है और तीसरे ने अपना मुँह बन्द कर रक्खा है। इस चित्र का बडा रहस्य है—कान पर हाथ रखने से वह बन्दर हमे यह कहता है कि हम कान से किसी की बुराई न सुने। आँखो पर हाथ रखने वाला बन्दर कहता है, कि आँखो से तुम किसी का बुरा मत देखो। तीसरा बन्दर मुँह पर हाथ रख कर हमे कहता है कि तुम किसी की निन्दा मत करो।

बन्धुओ! हमारा पर्युषण पर्व यही कहने के लिये आया है, और आठ दिनो के लिये ऐसा करना कोई कठिन काम नही है। इन आठ दिनो मे हमे सिर्फ इतना ही ध्यान रखने का है, कि मन मे बुरे विचार न आवे, वाणी मे कठोरता न हो और आचरण मे बुराई न आवे। इस प्रकार अगर हम मन,

वचन और काया इन तीनो गढो को पार कर आगे पहुँचेगे तो अवश्य ही आत्मदेव के दर्शन कर सकेगे। आत्मदेव के अगर आप सचमुच दर्शन करना चाहते है तो इसके लिये यह एक ही मार्ग है। आप अपने मन, वचन और काया के ऊपर लगे हुए अशुद्ध विचारो के तालो को सद्गुणो की चावियो से खोल डालिए और फिर आत्मदेव को निहारिये। इसी मे हमारे पर्युषण पर्व की सफलता है।

दूसरी वात जो हमे खयाल मे रखनी है, उसे मैने पहले भी एक बार कहा था कि कृष्ण-पक्ष मे से शुक्ल-पक्ष मे आने के लिये हमे अपने आचरण की शुद्धि कर लेनी होगी। अत आज मै फिर आपसे यह कहती हू कि अगर आप अधिक समय तक अपनी चित्त-वृत्ति शान्त न रख सकें तो कम से कम इन आठ दिनो मे तो किसी तरह का 'ब्लेक-मार्केट' स्वय न करे और न ऐसा करने मे किसी को सहयोग ही दे। सरकारी कानून-कायदो का उल्लघन करना भी जुल्म है, अत आप धर्म की वात तो दूर जाने दीजिये, पहले सरकारी आज्ञा का तो पालन कीजिये। आप इस तरह का कोई काम न करें जिससे कि कानून-भग का जुर्म वनता हो। भले ही आप के घर मे 'धान' नही हो, और आपको उपवास करना पड़ता हो तो करले, पर 'ब्लेक' का नाज लाकर नहीं खावें। जव आपकी ऐसी दृढ भावना होगी तभी आपके ये पर्युषण पर्व सफल कहे जा सकेगे। ठाणा जिले के वोरडी गॉव का एक किस्सा है—एक जैन साहूकार वहाँ रहता था और अव भी शायद वह वहाँ रहता होगा। व्याज का वह धन्धा करता था। उसी गॉव मे एक ताँगे वाला भी रहता था। जो रोज

ताँगा चलाता था, पर उससे उसका निर्वाह नही होता था। अत विवश होकर वह रात मे कसाई का धन्धा भी करता था। ताँगे वाला इस धन्धे से खुश नही था, पर गुजारा करने के लिये उसे मजबूरन वह काम करना ही पडता था। कोई दूसरा चारा उसके पास नही था। उसने सेठ से दो सौ रुपये उधार ले रक्खे थे, पर ब्याज के पैसे भी मुश्किल से चुका पाता था। ऐसी हालत मे पूरी रकम कैसे चुका सकता था? एक दिन वह कुछ रुपये लेकर सेठ के पास गया और बोला—"सेठजी, मेरे पास अभी पूरे रुपये जमा कराने को नही है, अत मेहरवानी कर कुछ दिन और मोहलत दीजिये, मै बहुत जल्दी आपके रुपये जमा करा दूँगा।" सेठजी ने कहा—"अगर तुम अब मेरे रुपये जमा नही कराते हो तो मै तुम्हारे ऊपर मुकदमा दायर करूँगा। और तुम्हारी सब जायदाद नीलाम करा कर अपने रुपये वसूल करूँगा।" ताँगे वाले ने कहा—"सेठजी, मेरे पास केवल अपने बाप-दादो का एक घर ही शेष रहा है। क्या आप उसे भी ले लेगे! गरीब पर दया करिये? मै आपके रुपये धीरे-धीरे चुका दूँगा।" सेठ ने कहा—"यहाँ कौन सी दया होती है? दया तो उपासरे मे की जाती है। जब कभी मैं जाता हूँ कबूतरो और गायो के लिये रुपया भर आता हूँ यहा लेन-देन मे दया कैसी?"

बन्धुओ! आप उपाश्रय मे तो रुपये दान-दया के खातिर लिखा दे, पर व्यवहार मे दया का बरताव न करे तो क्या यह दया कही जा सकेगी? बेचारा ताँगे वाला निराश होकर अपने घर लौटा। उसकी स्त्री बडी सुशील थी। उसने जब अपने पति की चिन्ता का कारण जाना तो कहा—"हम बकरो

की गरदन पर छुरी चलाना नही चाहते हैं, पर यह सेठ हमारी गरदन पर छुरी चलाकर हमे भी छुरी चलाने के लिये विवश कर रहा है।" ताँगे वाले की स्त्री ने कहा—"अब हमें इस काम से डरने की कोई आवश्यकता नही है। अगर इस काम मे कुछ रुपये और लगा दिए जायँ तो इस धन्धे से हम अपना गुज़ारा कर सकेंगे और सेठ के रुपये भी चुका सकेंगे। आप सेठ के पास जाकर सौ रुपये और ब्याज पर ले आइये और यह कहियेगा कि हम ब्याज के सिवाय रोज-रोज़ एक रुपया आपको जमा कराते रहेगे और इस प्रकार धीरे-धीरे सारी रकम चुका देगे।" तागेवाला सेठ की दुकान पर गया। पर्युषण के दिन थे। सेठानी उपवास कर घर मे बैठी थी। तागे वाले ने जब सेठजी से आकर अपनी बात कही तो सेठ जी सौ रुपये देने को तैयार हो गये। वे रुपये लेने घर के भीतर गये तो सेठानी को उदास देखकर पूछा—'क्या उपवास कुछ कठिन लग रहा है ?" सेठानी ने कहा—"मुझे उपवास तो कठिन नही लगता है, पर तुम्हारी यह कषायवृत्ति मेरे हृदय को चोट पहुँचा रही है।" सेठ ने कहा—"यह तो हमारा रोज का धंधा है।" सेठानी ने कहा—"कसाई को रुपये देना और बकरे कटवाना, क्या यह अपना धधा है ?" सेठ ने कहा—'तू समझती नही है। धर्म तो स्थानक और मन्दिर मे करने का है, यहाँ भी धर्म आ जाय तो फिर पेट कैसे भरे ?" सेठानी ने बहुत कहा-सुना, पर सेठजी नही माने। वे रुपया लेकर बाहिर आये और बही मे नाम लिखाने लगे। इतने मे सेठानी घर से उठकर बाहिर आई और सेठजी से कहा—'अभी पर्युषण के दिन हैं। इन दिनो मे तो हमको ऐसा काम

नही करना चाहिये। अगर आप अब भी नही मानेंगे तो मैं अपना उपवास चालू रखूँगी। पारणा नही करूँगी।" प्यारी बहिनो! अगर आप भी इस तरह का व्रत ले ले तो क्या आज के ये चोर-बाजार टिक सकते हैं? कौन ऐसा मूर्ख और लोभी होगा, जो अपनी पत्नी की हत्या करके भी चोर-बाजार करना चाहेगा? सेठानी ने जब अपना निश्चय सेठजी से कहा तो वे विचार मे पड गये। एक तरफ उनके ३०० रुपये थे और दूसरी तरफ थी उनकी पत्नी। इसी दुविधा मे कुछ देर रहे, पर आखिर सेठ ने अपनी पत्नी से कहा—'तो अब मुझे क्या करना चाहिये?' सेठानी ने कहा—'पहले के दोसौ रुपये आप इसको माफ कर दीजिये और इन सौ रुपयो की सहायता देकर इसकी कसाईवृत्ति दूर करिये। इन रुपयो से यह अपना तागा चलाये और गुजारा करे।' सेठ ने वैसा ही किया। तागेवाला बडा खुश हुआ। उसकी पत्नी भी बडी खुश हुई। गाव वालो ने सेठजी और तागेवाले की बडी तारीफ की। तागे वाले ने अपनी कसाई-वृत्ति छोड कर अपना तागा चलाना आरभ किया और अपना गुजारा करने लगा। सुनते हैं, वह आज भी बोरडी मे अपना तागा चलाता है और सुख से जिन्दगी के दिन गुजार रहा है। लोग उसके तागे मे बैठ कर आने-जाने मे खुशी समझते है।

बन्धुओ! हमे भी आज ऐसा ही सफल पर्युषण बनाना है। हम भी अगर एक आदमी का जीवन सुधार दे तो समझ लीजिये कि हमने अपना पर्युषण पर्व सफल कर दिया है। लेकिन पहले हममे ऐसा ज्ञान होना चाहिये, भावनाएँ होनी चाहिएँ, जीवन मे सुसस्कार होने चाहिएँ तभी हम अपने

पर्युषण को और अपने जीवन को सफल कर सकते हैं। मेरी बहिनो मे अजब शक्ति भरी हुई है, पर आज वे केवल भोग की पुतली समझ ली गई हैं। अगर ये अपने वास्तविक रूप में आजायँ तो भूली हुई दुनिया को सन्मार्ग पर ला सकती हैं। मदालसा सती का नाम आप जानते होगे वह एक राजा की महारानी थी। लेकिन उसने अपने पुत्रो मे ऐसे सस्कार डाले कि वे सब त्यागी महात्मा बने। नैपोलियन सदा यह कहा करता था कि मुझे बहादुर बनाने वाली मेरी माता ही थी। अत मूल बात ज्ञान की है—सुसस्कार की है। अगर हमारी बहिने सस्कारी होगी, तो वे अवश्य अपने कुटुम्ब को और अपने देश को भी सस्कारित कर सकेगी। बोरडी की सस्कारित सेठानी ने सेठ को सुधार दिया था, वैसे ही हमारी बहिने भी सस्कारित हो अपने पतियों को सन्मार्ग पर चलने को प्रेरित करे और बालको मे सुसस्कार डाले तो पर्युषण की सफल साधना समझी जा सकती है।

अन्धे मनुष्य को कोई आँख दे दे तो वह कितना खुश होगा! क्या उसकी खुशी की भी कोई सीमा होगी? जब चर्म-चक्षु जैसी बाह्यवस्तु के मिलने पर भी इतनी खुशी होती है, तो भाव-चक्षु जैसी आन्तरिक ज्योति के प्राप्त होने पर कितनी खुशी होनी चाहिये? द्रव्य-चक्षु हो या न हो, पर भाव-चक्षु के बिना तो मानव का जीवन दच मात्र भी आगे नही बढता है। अत भाव-चक्षु की तो उससे भी ज्यादा ज़रूरत है। इसी लिये अन्धे से अज्ञानी का दुख ज्यादा कहा गया है। अन्धे का दुख तो इस जीवन का ही होता है, पर अज्ञानी का दुख तो जन्म जन्मान्तरो तक का होता है। प्रकाश बिना जैसे

अन्धेरा दूर नही किया जा सकता है, वैसे ही ज्ञान के बिना अज्ञान का अन्धेरा दूर नही किया जा सकता है। ज्ञान न होने से ही अनेक कष्ट सहने पडते हैं। अत आज्ञानी को ज्ञान देना और अधार्मिक को धर्म का बोध कराना, वह अन्धे को आखे देने से ऊ चा उठ जाता है। ज्ञान बचपन से ही देना चाहिये। तभी वे सस्कार दृढ हो सकते हैं। रानी मदालसा एक राजा की महारानी थी, पर थी बडी समझदार। उसने अपने पुत्रो मे ऐसे सस्कार डाले थे कि वे भोगी नही, त्यागी बने, कायर नही, वीर बने।

बालक उत्पन्न होता है तो आज की हमारी माताएँ कैसा हालरिया गाती हैं ? लेकिन सती मदालसा ने हालरिया से भी अपने बच्चो मे त्याग और वीरता के भाव भरे थे। इस प्रकार उसने एक नही, अपने सात पुत्रों का जीवन त्यागमय बना दिया था। सातो ही पुत्र वडे होकर जगल मे चले गये थे और त्यागी महात्मा वन गये थे। रानी के जव आठवाँ बालक पैदा हुआ तो राजा ने सोचा—अगर यह भी त्यागी बन जायगा तो मेरा राज्य कौन सँभालेगा ? अत उसने अपने इस पुत्र को मदालसा से लेकर लालन-पालन के लिये धायों को सौंप दिया। यह लडका सातो लडको की तरह त्यागी तो नही वना, पर फिर भी गर्भ के सस्कारो का असर तो उस पर पडा ही। रानी विवश थी। उससे उसका पुत्र ले लिया गया था और धाय्यो को सौप दिया गया था। अत उसे इस वात का दुःख ही रहा कि वह अपने इस पुत्र को भी सातों की तरह त्यागी नही वना मकी। अन्त में रानी ने मरते समय अपने इस पुत्र को बुलाया और एक कागज देते

हुए कहा—"पुत्र! इस कागज को तू तावीज मे रख कर अपनी भुजा पर बाँधे रहना, और कभी सकट के समय उसे खोल कर पढ लेना। उस समय तुझे यह शान्ति प्रदान करेगा।' पुत्र ने अपनी माता के कथनानुसार उसे अपने हाथ पर बाँध लिया। कुछ दिनो वाद राजा भी मर गया और यही पुत्र राज-काज चलाने लगा। कई दिनो बाद एक आदमी आया और राजा से बोला—"महाराज! आपके सातो भाई आपका यह राज्य छीनने के लिये आ रहे हैं। अत या तो आप अपना यह राज्य उन्हे दे दे या युद्ध के लिये तैयार रहे" सातो भाई अपने छोटे भाई की परीक्षा लेना चाहते थे और यह देखना चाहते थे कि वह भी हमारी तरह सस्कारित है या नही? अत उन्होने ही अपना एक आदमी राजा के पास भेजा था। राजा उसकी बात सुनकर विचारो मे पड़ गया। उसके मन मे तरह-तरह के विचार आने लगे और वह घवडा-सा गया। इतने मे उसका ध्यान अपनी भुजा पर बँधे हुए मदालिये (यत्र) की तरफ गया, जिसमें उसकी माता का लिखा हुआ एक पत्र बन्द था। उसने उसे खोला और पढा, तो उसमे लिखा था—'पुत्र! तू राजाओ का भी राजा है। यह राज्य जिसका तू मालिक है, नश्वर है। तेरी आत्मा अविजयी है। तू डरना नही, और यह याद रखना कि यह राज्य तेरा नही है। तेरा राज्य तो इससे भी कई गुना विशाल है और तू उसी राज्य का मालिक है।' ऐसे प्रेरक पत्र को पढ कर वह उस आदमी से कहने लगा—'भाई, तुम मेरे भाइयो से जाकर कहो कि वे खुशी से मेरा राज्य ले ले। यह मेरा राज्य थोडे ही है! मेरा राज्य तो

मेरे ही हाथ मे है, उस पर कौन अधिकार जमा सकता है ? तुम जल्दी जाओ और उनसे कहो कि आपका भाई आपका इन्तजार कर रहा है। आप शीघ्र चलिये और पिता का राज्य सम्हालिये।"

जब इस आदमी ने राजा का यह सन्देश उन सातो भाइयो से कहा तो वे भी यह भली भाँति समझ गये कि इसका जीवन भी हमारी तरह ही सस्कारित है। सातो भाई तो वचपन से ही राज्य-सुख को छोड कर त्यागी बन गये थे। इन्हे अब राज्य से क्या मतलब था। वे तो केवल अपने भाई की परीक्षा लेने आये थे। अत वहाँ से लौट गये। लेकिन राजा का जीवन तव से साधु-जीवन हो गया। अब उसे अपना और पराया स्पष्ट ज्ञात होने लगा।

वन्धुओ, इससे आप यह समझ सकेंगे, कि ऐसा ज्ञान उन्हे अपनी माता मदालसा से मिला था। अगर आज भी हमारी माताएँ ऐसी सस्कारित हो तो क्या वे सारे समाज को नही सुधार सकती ? अन्धेरा तो हमेशा प्रकाश से ही दूर किया जा सकता है। अत जब तक हमारी माताएँ आज्ञानान्धकार मे रहेगी और उनका जीवन सस्कारित नही होगा तव तक समाज का उद्धार कैसे हो सकेगा। अत समाज की काया-पलट करने के लिये आप सर्व प्रथम अपनी वहिनो को सस्कारित कीजिये, अपनी वहिनो को ज्ञान दीजिये। अगर आप सचमुच अपने पर्युषण पर्व की आराधना करना चाहते है और तीन गढ के भीतर वैठे हुए आत्मदेव के दर्शन करना चाहते है तो इसके लिये आपको अहर्निश ज्ञान का दीपक प्रज्ज्वलित रखना होगा। क्योकि ज्ञान के प्रकाश से ही

अज्ञान का अन्धकार दूर हो सकता है। इसलिये अज्ञान को दूर करने के लिये ज्ञान का दीपक जलाना ही होगा। इसके साथ-साथ आपको उदारता की अगरबत्ती भी जलानी होगी। और चारो तरफ सुवास फैलानी होगी। इस तरह अगर हम ज्ञान का दीपक जलाकर और उदारता रूपी अगरबत्ती की सुगन्धि फैला कर आत्मदेव की साधना करेंगे तो हम अवश्य उसके दर्शन कर सकेंगे और सम्वत्सरि पर्व को भी सफल कर सकेंगे। प्रति वर्ष की भाति यह सम्वत्सरि भी आपकी ऐसी ही नही चली जाय, इसका ध्यान रखते हुए आप उसके लिये अपनी पूरी-पूरी तैयारी रक्खेंगे तो आप अपने इस पर्व की साधना सफल कर सकेंगे।

सम्यग्-दर्शन—१

जिस हद तक मनुष्य मुक्ति को चाहता है—पसद करता है, उस हद तक वह उसके मार्ग पर नही चलता—चलना नही चाहता। अगर इन्सान उल्टे उपायो का सहारा न ले और सीधे उपायो का आधार लेकर चले तो वह मुक्त बन सकता है—स्वतन्त्रता को पा सकता है। शास्त्रकारो ने सम्यग्-दर्शन-सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चारित्र ये तीन मुक्ति के मार्ग बताये हैं। अविकारी आत्मा का स्वरूप ऐसा ही होता है। आत्मा कोई दिखाई जाने वाली चीज नही है, कि हाथ मे पकड कर या शीशे मे बन्द कर दिखाई जा सके। वह तो गुणो का समूह है—ज्ञान, दर्शन और चारित्र का समूह ही आत्मा है। और वह जब अपनी असली स्थिति मे प्रतिष्ठित हो जाता है, तब उसे मुक्तात्मा मान लिया जाता है। इस तरह साधक, साध्य और साधन इन तीनो का एक स्वरूप होना मुक्ति है।

'ज्ञान' से पहले शास्त्रकारो ने दर्शन का उल्लेख किया है। आत्मा मे ज्ञान तो होता है, पर जब तक सम्यग् दर्शन न हो तब तक वह ज्ञान प्रशस्त नही होता है। वैसे तो निगोद मे भी ज्ञान होता है, पर वह सम्यग् दर्शन के अभाव मे झूठा होता है अत सम्यग् दर्शन को सबसे पहला स्थान दिया गया है।

सम्यग् दर्शन के अभाव मे सत्याग्रही दुराग्रही हो जाते हैं और सम्यक्त्वी मिथ्यात्वी कहे जाते हैं ।

कई मनुष्य यह कहते रहते है कि परमतावलम्बी शास्त्र नही पढने चाहिये, गीता कुरान और वाईविल नही पढने चाहिये । इससे हमारी समकित चली जाती है । लेकिन मै कहती हूँ क्या हमारी समकित इतनी कमजोर चीज है जो ऐसी मामूली हवा मे भी उड जाया करती है ? अगर सचमुच ऐसे उड़ती रहती हो तो फिर सिनेमा देखने से क्यो नही उड जाती है ? भोले मनुष्यो की इन बातो मे कोई तथ्य नही है । सम्यग्दृष्टि मनुष्य जो होते हैं, वे चाहे जिस मार्ग पर चले जाय, वायु के प्रबल झोको में और तूफानो के चक्कर मे भी क्यो न फँस जायँ, पर अपना गन्तव्य मार्ग नही भूलते है। वे गीता, कुरान और वाईविल पढकर भी अपने उच्च विचारो पर अडिग रहते है ।

सम्यग् दृष्टि का सीधा सा मतलव है—'सीधी दृष्टि वाला ।' सम्यग् दृष्टि हो जाने के वाद मनुष्य के आचरण मे भेद हो जाता है । और यह आचरण-भेद ही आचार कहा जाता है । यह आचार आठ तरह का होता है, जिसे हम दर्शनाचार कहते हैं । जिसमें ये दर्शनाचार हों वही अपने को सम्यग् दृष्टि कह सकता है, दूसरा नही । आइये, अब हम यह देखें, कि दर्शनाचार के ये आठ आचार हमारे मे भी है या नही ? अगर हैं तो वस्तुत हम सम्यग् दृष्टि है, अन्यथा समझ लीजिये हम उसका दभ मात्र करते हैं, वास्तविक सीधापन (सम्यग् दृष्टिपना) हमारे मे नही ।

दर्शनाचार के आठ आचारो मे से सबसे पहला आचार

है निश्शकता। यानी अहिंसा और सत्य मे दृढ विश्वास। सम्यग् दृष्टि जो होता है वह अहिंसा मे ही दृढ विश्वास रखता है, उसे हिंसा मे विश्वास ही नही होता है।

हिन्द को स्वराज मिला तो उल्कापात हुआ, और सभी मनुष्य एक समय यह समझने लग गये कि मुसलमान तो आफत हैं, उन्हे तो मारना ही चाहिये। पर जिनमे निश्शकता थी, सम्यग्-दृष्टि थी, उनके दिलो मे ऐसी शका नही आई। उन्होने तो तब भी यही कहा कि 'तुम मुसलमानो से प्रेम करो, वे अब भी समझ जावेगे।' बन्धुओ! सम्यग् दृष्टि का यही पहला पगला है, लेकिन तनिक अपने सीने पर तो हाथ रख कर कहिये कि क्या आप इसके पालने वाले है? अगर नही है तो आप सम्यग् दृष्टि कैसे कहे जा सकते है?

दूसरी बात है—नि काक्षता—किसी वस्तु की कामना नही होना। उसको कर्तव्य और नियति पर विश्वास होता है। वह नाहक किसी चीज का सग्रह नही करता है। वह अपरिग्रही होता है। लेकिन जो परिग्रही हो और इसके लिये नाना पापो का सेवन करता हो तो वह नि काक्षी कैसे कहा जा सकता है? अत. यह सम्यग् दृष्टि का दूसरा लक्षण है।

तीसरा लक्षण है—निर्विचिकित्सा—घृणा की भावना नही रखना। मनुष्य रोगी हो, पर उससे घृणा न करते हुए उसके गुणो को ग्रहण करना, सद्गुणोपासना है। स्वस्थ और स्वच्छ रहना आवश्यक है, पर यह कोई नियम नही है, कि रोगी सद्गुणी न हो, अत विना किसी विषम भाव के गुण ग्रहण करना तीसरा दर्शनाचार है।

चौथा लक्षण—अमूढ दृष्टि—विवेक का होना। सम्यग्

दृष्टि मे कभी भी मूढ वृत्ति नही होतीं है। वह हर एक काम को विवेक की दो आँखो से देखता है। एक आँख से वह अपने हृदय की भावनाओ को देखता है और दूसरी से उसका भविष्य। मै अमुक काम करता हूँ, इसका मेरे अन्तर मे क्या भाव है और भविष्य मे क्या परिणाम होगा ? ऐसा सोचना अमूढ दृष्टि है, जो कि दर्शनाचार का चौथा भेद है। लेकिन आज हमारी दृष्टि तो इतनी मूढ हो गई है, कि हम भविष्य का विचार तो करते ही नही हैं। मील का कपडा पहनते हैं, पर उसका फल क्या आवेगा, यह नही सोचते है। ग्रामोद्योग की सभी वस्तुएँ अल्पारभी होती है और मील की सभी वस्तुएँ महारभी, अत ऐसा सोच कर उपयोग करना अमूढ दृष्टि है। अमूढ दृष्टि उपर्युक्त दोनो दृष्टियो से विचार करता है, पर मूढ दृष्टि की दोनो दृष्टियाँ बन्द रहती हैं। विचारिये हमारे मे ये लक्षण है या नही ? अगर नही हैं तो हम सम्यग् दृष्टि का दावा कैसे कर सकते है।

पाचवा भेद है—उपगूहन—अपने गुणो को छिपाना। मानव दूसरो के सद्गुणो की प्रशसा करे, पर अपने गुणो को प्रकट न करे, यह उपगूहन नामक दर्शनाचार है। लेकिन आज का हाल तो यह है, कि कोई पाच रुपये का भी दान देता है, तो यह सबसे पहले देखता है कि दान-दाताओ की लिस्ट मे मेरा नाम कहाँ आया है ? ऐसा विचार करने वाले सम्यग् दृष्टि नही कहे जा सकते है। भले ही कोई हमारी कौम मे न जन्मा हो, पर ऐसे आचार पालता हो तो वह सम्यग् दृष्टि ही कहा जायगा, और इस तरह एक मुसलमान भी शुद्ध दर्शनाचार का पालन करते हुए सम्यग् दृष्टि बन सकता है।

छठा लक्षण है—स्थितिकरण—अहिंसा, सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह आदि से गिरते हुए प्राणियो को स्थिर करना—स्थितिकरण नामक दर्शनाचार है।

सातवाँ भेद वात्सल्य है। सारी दुनियाँ को अपना कुटुम्ब समझकर उसकी सेवा मे अपनी जिन्दगी अर्पण कर देना वात्सल्य है। भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्म की एक कथा है, उसमे उन्हे बोधिसत्व का नाम दिया जाता है। पूर्व जन्म मे भगवान् बुद्ध का जीव मगध के एक गाँव मे पैदा हुआ था। मघा नक्षत्र मे जन्म लेने से उनका नाम मघा रक्खा गया था। 'पूत के पग पालने मे' इस उक्ति के अनुसार मघा की आकृति बडी भव्य थी, अत उसे देखकर भविष्य-वक्ताओ ने कहा कि यह बालक बडा सेवा भावी होगा। सचमुच मघा जब १२ साल का हुआ तो वह बडी सेवा करने वाला बना। वह अपने घर की और बाहिर की शुद्धि करने लगा और धीरे-धीरे सारे गाँव की सफाई करने लगा कई लोग उसकी सफाई की हुई जगह पर कचरा डाल देते थे और उसे तग करते थे, लेकिन मघा उन्हे फिर से साफ कर देता था। इस काम से उस गाँव के दो जवान युवक उसकी तरफ आकर्षित हुए और उन्होने भी यह कार्य करने के लिये मघा से कहा। मघा ने कहा—भाई, यह कार्य कठिन है, इसे तुम छोटा न समझो। जो कोई कुछ कहे, उसे चुपचाप सुनते हुए अगर काम करने की शक्ति तुम्हारे मे हो तो आओ, अन्यथा अपने घर बैठे रहना ही ठीक है। उन जवानो ने अपनी तैयारी दिखाई तो मघा ने उन्हें दीक्षित कर लिया। इस तरह उस गाँव मे उसके ३२ शिष्य हो गये। अब वे भी सफाई के साथ-साथ शराबियो

को समझा-बुझा कर उनसे शराब पीना बन्द कराते, बदचलन आदमियो को सुधारते, लडाई-झगडा मिटाते और इस तरह वे आन्तरिक शुद्धि भी करने लगे, जिससे सबके प्रिय-पात्र बन गये। सारा गाँव उन्हे चाहने लगा, पर शराब बेचने वालो, बदचलन स्त्रियो और राजकर्मचारियो की नजरो मे वे काँटे से चुभने लगे। क्योकि मघा के कार्यों से इन लोगो के धन्धे बन्द होते जा रहे थे। अत एक दिन राजकर्मचारियो ने मघा की शिकायत राजा से की और उसके विरुद्ध उल्टी-सीधी बाते कहकर राजा को अपना बना लिया। राजा शराब के नशे में मस्त था, अत उसने जैसा सुना, सही माना और हुक्म दिया—जो लुटेरे गाँव के लोगो को त्रास देते हैं उन्हे पकडवा कर मार डालना चाहिए। उसने मघा के पकडने के लिए पुलिस भेजी, पर मघा को जब यह पता चला तो वह स्वय अपने साथियो सहित राजा के सामने आ खडा हुआ। राजा को आश्चर्य हुआ कि ये कैसे लुटेरे हैं, जो स्वत. मरने के लिये आ गये? उसने पुलिस को हुक्म दिया 'इन सबको जमीन पर सुलाकर हाथी से कुचलवा दो।' राजकर्मचारी यह सुनकर बडे प्रसन्न हुए, पर कुदरत जिसको जीवित रखना चाहती है, उसका बाल भी बाँका कौन कर सकता है? उन सबको सुला दिया गया और हाथी छोड दिया गया। मघा ने अपने शिष्य खूब पक्के कर रक्खे थे। उसने कहा—आज हमारी आखिरी परीक्षा है अत सम-भाव से जो कुछ हो सहन करना। मै तुम सबसे आगे सोता हूँ, अगर हाथी तुम्हे मारेगा तो मुझे भी मारेगा ही, इसलिए विषम भाव मत लाना।

हाथी आया और मघा को सूंघने लगा। राजकर्मचारियो

ने तो समझा मघा का काम तमाम हो जायगा, पर हाथी जैसा आया वैसा ही उसे सूंघकर वापिस लौट गया। राजकर्मचारियो ने कहा—महाराज, ये लोग तो जादू-मत्र जानते है, अत हाथी को भी भगा देते है। राजा के हुक्म से दूसरा हाथी छोडा गया, पर वह भी इसी तरह लौट चला। इस तरह जब तीसरा हाथी भी सूंघ कर लौट गया, तब राजा ने मघा को अपने पास बुलाया और पूछा—भाई, तुम्हे कौन सा मत्र याद है जिससे हाथी को भी भगा देते हो ? मघा ने कहा—राजन् ! मुझे एक ही मंत्र याद है 'जो तुम्हे अच्छा लगे, वही दूसरे के लिये भी करो। राजा ने कहा— इसका साधन क्या है ? मघा ने उत्तर दिया—अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह इसके साधन हैं। इनके आराधन से यह मत्र सिद्ध हो जाता है।

राजा ने आश्चर्य से कहा—क्या तुम मेरे राज्य मे अपने इस मन्त्र का प्रयोग करते थे मघा ने कहा—हा राजन्, मै इसी मन्त्र का प्रयोग करता था।

इतने मे प्रजाजन आये और बोले—महाराज ! ये तो राज्यभक्त है, इन्होने जैसा कार्य किया है वैसा कार्य तो किसी राजा ने भी नही किया। राजा ने तत्क्षरण दूसरा हुक्म दिया कि इन राज कर्मचारियो को भूमि पर सुलाओ और फिर हाथी को छोड दो।' लेकिन मघा ने कहा—राजन् ! मैं आप से प्रार्थना करता हू, कि आप मेरे इन भाइयो को इस प्रकार न मारे। राजा मघाको अपना राज्य सौंपने लगता है, पर मघा राज्य लेने से इन्कार करता है। अन्त मे राजा उसे प्रधान बनाता है। धीरे-धीरे मघा के नाम से उस देश का

नाम ही मगध मशहूर हो जाता है । लेकिन यहाँ कहने का आशय केवल इतना ही है, कि जन-सेवा मे अपनी जिन्दगी की आहुति कर देना और उसी मे अपार आनन्द मानना, सम्यग् दृष्टि का अपना धर्म होता है जो की दर्शनाचार का सातवा लक्षण माना गया है ।

आठवा लक्षण है—प्रभावना । अपने धर्म के सिद्धान्तो का पालन करते हुए उसका प्रचार करना धर्म की प्रभावना है ।

उक्त आठ भेद दर्शनाचार के हैं । अगर ये हमारे जीवन मे है तो समझ लीजिये हमे कोई मिथ्या दृष्टि नही कह सकता है । यदि न हो तो फिर हमे उसका दम्भ भी नही करना चाहिये । सम्यग् दृष्टि आने पर मनुष्य को सम्यग् ज्ञान प्राप्त होता है और फिर चारित्र । इस क्रम से अगर मानव चले तो वह अपनी सच्ची आजादी मुक्ति को प्राप्त कर सकता है ।

: ३२ :

सम्यग्-दर्शन—२

प्राय देखा जाता है, कि जो लोग जैन-सिद्धातो को केवल साम्प्रदायिक मनोवृत्ति से ही देखते हैं वे उन सिद्धान्तो की गहनता और उदारता का मजा नही ले सकते हैं। जैन-धर्म के सिद्धान्त कितने व्यापक तथा सारग्राही हैं, इसका अगर पता लगाना हो तो जैन धर्म के सिद्धान्तो की दोनो बाजू (side) देखनी चाहिये। तभी उनकी गहनता का पता लगाया जा सकता है। महासतीजी के व्याख्यानो की यह विशेपता है, कि वे अपने विषय की दोनो बाजू पकड कर चलती हैं। अगर कोई उन्हे एकान्त दृष्टि से ही पढें तो वह उस उदारता का घात कर बैठेगा जो कि जैन धर्म की सर्वोत्तम विशेपता है। इस लेख को पढते समय भी पाठको का दृष्टि-बिन्दु ऐसा ही होना चाहिये—सम्पादक

ससार मे प्राणीमात्र आधि-व्याधि और उपाधि रूप इन त्रिविध ताप से पीडित है। हमारा यह पर्युषण पर्व इन त्रिविध तापो से मुक्त कर समाधि की ओर ले जाने के लिये आया है। आप सब समाधि की ओर जाने के लिये तैयार बैठे हैं, पर क्या आप जानते है, कि समाधि किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है? और इन त्रय तापो से किस प्रकार छुटकारा पाया जा सकता है? इस समाधि को प्राप्त करने के लिये तीन साधन बताये गये हैं—श्रद्धा, ज्ञान और क्रिया। हमारा पर्युषण पर्व

समाधि के लिये यही तीन राज-मार्ग बताता है, जिन्हे दूसरे शब्दो मे दर्शन, ज्ञान और चारित्र भी कहते हैं।

दुनिया के प्रत्येक समझदार मानव को उक्त तीनो सिद्धातो की जरूरत होती है। उसे सब से पहले श्रद्धा की आवश्यकता होती है। कोई मनुष्य बीमार हो तो उसे पहले श्रद्धा होनी चाहिये कि 'मै बीमार हूँ।' इसके बाद उसे यह ज्ञान होना चाहिये, कि इस बीमारी से मुक्त होने के उपाय क्या हैं ? और फिर उसे उन उपायो को क्रिया रूप मे व्यवहार करना चाहिये। तभी वह स्वस्थ हो सकता है। इसी तरह अगर कोई गरीब मनुष्य अपनी गरीबी से मुक्त हो कर श्रीमन्ताई चाहे तो उसे भी इन तीनो बातो का आश्रय लेना ही होगा। सर्व प्रथम उसे यह विश्वास होना चाहिये कि 'मै गरीब हू।' इसके बाद उसे उससे छूटने का उपाय सोचना चाहिये और तदनन्तर वे उपाय क्रिया मे परिवर्तित करने चाहिये। तभी वह गरीबी से मुक्ति पाकर श्रीमन्ताई अपना सकता है। इस प्रकार हरेक कार्य मे इन तीनो की जरूरत तो रहती ही है। लेकिन समाधि प्राप्ति के लिये इन के पूर्व 'सम्यक्' शब्द लगा होना चाहिये। जिसे कि हम सम्यक्त्व कहते हैं। यह सम्यक्त्व ही हमारी सिद्धि का पाया है। जैसे पाये के बिना कोई मकान तैयार नही किया जा सकता है, वैसे ही सम्यक्त्व के बिना श्रावक या साधु कुछ भी नही बना सकता है। यहाँ तक कि मानव भी उसके बिना दानव कहा जाता है।

श्रद्धा दो तरह की होती है—सम्यक् श्रद्धा और दूसरी है अंध श्रद्धा। दोनो कहलाती तो श्रद्धा ही हैं। पर पहली श्रद्धा विवेक पूर्ण होती है और दूसरी श्रद्धा अविवेक पूर्ण। दोनो ही

श्रद्धा, श्रद्धा कही जाती है पर दोनो मे गाय के दूध और खून जितना अन्तर होता है। गाय का दूध और खून प्राण्यग सभूतत्त्व की दृष्टि से तो एक ही है। फिर भी उनमे अन्तर कितना होता है? ऐसा ही अन्तर श्रद्धा के दोनो भेदो मे भी समझ लेना चाहिये। कोयला और हीरा दोनो एक ही तत्त्व के बने हुए होते हैं, परन्तु जितना अन्तर इनमे होता है उतना ही भेद श्रद्धा के भेदो मे भी होता है। हमारे सम्यक् दर्शन मे दूध और हीरा जैसी श्रद्धा होनी चाहिये, न कि कोयला और खून जैसी। श्रद्धाशील मनुष्य को सच्चे देव, गुरु और धर्म पर श्रद्धा होनी चाहिये। फिर भले ही वे देव दूसरे धर्म के हो, पर वस्तुत वीतराग हो तो उन्हे अवश्य ही देव कहना चाहिये। जो पच महाव्रत का सम्यक् रूप से पालन करता हो और फिर वह चाहे जिस सम्प्रदाय का हो उसे गुरु ही समझना चाहिये। इसी तरह जो धर्म रागद्वेष कषाय से मुक्त कर मोक्ष मे ले जाता हो तो उसे धर्म ही कहना चाहिये। फिर चाहे वह नाम से कोई भी धर्म क्यो न हो? लेकिन आज हमारा हाल यह है कि हम जैन कुल मे पैदा होने मात्र से ही सम्यक्त्वधारी कहलाते है, जो कि हमारी भ्रान्त धारणा है। सच बात तो यह है, कि जिसमे सम-सम्वेग-निर्वेद-अनुकम्पा और आस्ता ये पाच लक्षण हो वही जैन है और वही सम्यक्त्वी भी हैं। फिर चाहे वह मुसलमान हो, खिस्ती हो या और कोई हो, सिद्धान्तत जैन ही समझना चाहिये। तो आज हमे यह देखना है, कि क्या हमारे मे ये पाच लक्षण हैं या नही? अगर नही है तो यह समझ लेना चाहिये कि हम सम्यक्त्वी नही, मिथ्यात्वी है और मिथ्यात्वी की सभी क्रियाएँ निस्सार

और अपने बाल-बच्चो की भी क्षुधा शान्त करना। इस प्रकार पथ ने उसे बडे प्रेम से विदा किया। अतिथि ने घर आकर अपने गॉव वालो से कहा कि मंगलवेढा मे दामाजी पथ नामक एक दयालु पुरुष रहता है। उसके पास अगर तुम जाओगे तो वह सब को खाने के लिये अनाज दे देगा। यह सुनकर, अब तो आदमियो के झुण्ड के झुण्ड पथ के घर पर आने लगे। उन सबको नाज देना पथ के वश की बात नही थी। उसके पास नाज के तो कई कोठे थे, पर थे सभी सरकारी। अत अब वह उलझन मे पड गया। लेकिन तत्क्षण उसे विचार आया कि अन्न के सच्चे अधिकारी तो ये भूखे आदमी ही हैं। राजा का इन कोठो पर क्या हक है? हक है तो इन भूखे आदमियो का ही। अन्त मे उसने यही निश्चय किया कि भले ही राजा मुझे दण्ड दे पर अभी तो मुझे इन कोठो को खोल देना चाहिये। पथ ने इन सरकारी नाज के कोठो को खोल कर लोगो से कहा—जिस किसी को जितना भी धान चाहिए वह इन कोठो मे से ले जाय और अपना निर्वाह करे। लोगो की कतार-सी लग गई लेकिन नाज सबको दिया गया। यह बात जब राजा को मालूम हुई तो उसने अपने सिपाहियो को भेजा और दामाजी पथ को पकड लाने का हुक्म दिया। जब यह बात एक उदार श्रीमन्त को ज्ञात हुई तो वह तत्क्षण राजा के पास गया और कहा—राजन्! आप अपने कोठो के रुपये मुझसे ले लीजिए और दामाजी पथ को छोड दीजियेगा। राजा ने नाज के रुपये ले लिये और दामाजी पथ, जिन्हे कि सिपाही पकड कर ला रहे थे, मार्ग मे ही छोड दिये गये। बन्धुओ! इसका सार इतना ही

है कि मानव मे जब इस तरह की अनुकम्पा हो तो वह दूसरे के दु ख दूर किये बिना नही रह सकता है। मेघकुमार ने अपने हाथी के भव मे एक खरगोश की दया पाली थी। भगवान् शान्तिनाथ ने अपने मेघरथ राजा के भव मे एक कबूतर की रक्षा के लिए अपनी जान न्यौछावर कर दी थी। यह अनुकम्पा का ही तो प्रभाव था। क्योकि अनुकम्पा का मापदण्ड ही यही है कि दूसरो के दु खो को दूर करना। आइये, आज हम भी देखे कि हमारे हृदय मे इस तरह की अनुकम्पा है या नही ? अगर पीडितो को देख कर उनके दुखों को दूर किये बिना हमे चैन नही होता तो समझ लेना चाहिये, कि हमारे हृदय मे अनुकम्पा जीवित है, अन्यथा वह मरी हुई हैं, यह भी नही भूलना चाहिये। महात्माजी ने भी जब भारत मे सैकडो स्त्री-पुरुषो को भूख से बिलखते हुए देखा था तो उनका हृदय दहल उठा था। उन्हे नीद तक नही आती थी। अत वे भी अपना जीवन त्यागमय बना कर दुखियों की सेवा मे निकल पडे थे और अपनी सारी ज़िन्दगी ही उन्होने इस काम मे खपा दी थी। ऐसी अनुकम्पा ही सम्यक्त्व का चौथा लक्षण है। यह जब हमारे मे होगी तभी हम सम्यक्त्वी कहे जा सकेंगे। सक्षेप मे यही सम्यक्त्व का लक्षण है।

पाँचवाँ लक्षण है आस्था। अहिंसा और सत्य पर विश्वास रखना आस्था है। क्या आज हम इन पर श्रद्धा रखते है ? अगर वस्तुत इन पर श्रद्धा होती तो क्या हम आज हिंसा करते ? क्षमा हमारी ढाल है और उस पर हमको विश्वास होता तो क्या हम आज क्रोध करते होते ? हम

३३

सदाचार का प्रभाव

आज हमारे पर्युषण पर्व का तीसरा दिन है। सच्चारित्र को प्राप्त करने के लिये ही यह हमारा परम पवित्र पर्व है। यह बात हम सब जानते हैं, कि मनुष्य अपने सच्चारित्र से अपनी उन्नति करता है और दुश्चारित्र से अपनी अवनति। लेकिन इसके साथ-साथ यह भी जान लेना चाहिये, कि सच्चारित्र से केवल हम ही ऊचे नही चढते है, पर आसपास वालो को भी ऊचे चढाते हैं। और दुश्चारित्र से हमारा ही पतन नही होता है, पर हमारे साथ-साथ दूसरो का भी पतन होता है। सच्चारित्र अपने साथ जहाँ दूसरों को भी ऊपर उठाता है, वहाँ दुश्चारित्र अपने साथ दूसरों को भी नीचे गिराता है। रोगो मे जैसे कई रोग सक्रामक होते हैं वैसे ही आरोग्य भी सक्रामक होता है। नीरोगी भी जैसे रोगी वाता वरण मे आकर रोगी वन जाता है वैसे ही रोगी मानव भी स्वस्थ वातावरण मे आकर स्वस्थ वन सकता है, इसी तरह सच्चारित्र की भी चेपी है।

एक मनुष्य यदि दुश्चारित्र शील हो— चाय पीता हो, या वीड़ी-सिगार पीता हो, तो दूसरा मानव भी उसे देखकर वही काम करने की इच्छा करेगा। लेकिन यदि कोई मनुष्य

अपने घर मे चाय नही पीता हो, सिगार नही पीता हो, तो उसके साथ-साथ उसके घर वाले भी तथा कथित व्यसन से दूर रह सकेगे। इस तरह व्यसनी या दुश्चारित्रशील मानव जहाँ अपने साथ दूसरो का भी पतन करता है, वहाँ निर्व्यसनी और सच्चारित्रवान् पुरुष अपने साथ दूसरों का भी भला करता है। उत्थान करता है।

दुनिया मे सबसे ऊँची सेवा ही यह है, कि हम अपना आदर्श जीवन बनावे और उसकी छाप दूसरो पर भी डाले। अधिक नही तो कम से कम इनता तो करना ही चाहिये, कि जिससे हम सच्चारित्रवान् बने।

अमेरिका मे जब गुलामी-प्रथा का चलन था, तब वहाँ के प्रेसिडेण्ट 'अब्राहिम लिकन और कैंपिटन जोन ब्राउन ने इस प्रथा को दूर करने के लिये कई प्रयत्न किये थे। कैंपिटन ने इसके लिये एक सघ स्थापित किया और लोगो से कहा—मैं अपने इस सघ मे कोलेरा, प्लेग, अथवा टी० बी० के बीमारो को सहर्ष स्थान दूगा, पर चारित्रहीन मानव के लिये मेरे सघ मे कही भी स्थान नही होगा। जैसे एक सडा हुआ पान सारी टोकरी के पानो को बिगाड देता है, वैसा ही एक चारित्र हीन मानव भी सारे ससार को खराब कर सकता है। आप कहेगे कि बेचारे अकेले मानव की क्या हस्ती है, जो सारी दुनियाँ को खराब कर सके? लेकिन अगर आप इस पर तनिक गौर करेगे तो मेरी यह बात आसानी से समझ सकेंगे। हम यह तो प्रत्यक्ष मे भी देखते है, कि किसी तालाब मे यदि एक छोटा सा कङ्कर भी डाला जाय तो उसका असर सारे तालाब मे हो जाता है। इसी तरह मनुष्य के ये ईर्षा-द्वेष के अशुभ पर-

जाता है। लेकिन उसका बनाने वाला एक लुटेरा था, जो लूट-खसोट कर अपने कुटुम्ब का पालन करता था और जगल मे रहता था। भाग्य से उसे एक दिन किसी साधु का सम्पर्क मिल गया और उस साधु ने उसे केवल दो ही शब्द बताये— राम! बस, इसके बल पर ही वह लुटेरा न रह कर महर्षि बन गया था और रामायण जैसे महान् ग्रथ की रचना कर सका था। इसलिये कहने का आशय इतना ही है, कि सच्चारित्रवान् अपना ही नही दूसरे का भी भला करता है।

विचारो की शक्ति असीम होती है। बड का बीज कितना छोटा होता है, पर उस छोटे से बीज मे भी कितने वृक्षो का सार रहता है। एक बीज बोने पर जैसे अनेक बीजो को तैयार किया जा सकता है वैसे ही हमारे सूक्ष्म विचारो मे भी ऐसी गूढ शक्ति समाई हुई है। पाप का एक छोटा-सा विचार भी जैसे सारे विश्व मे फैल जाता है, इसी तरह पुण्य की एक छोटी-सी चिनगारी भी पाप के गहन वन को जला कर खाक कर सकती है। जम्बूकुमार के छोटे-से वैराग्य-विचार ने प्रभव के पापो को जला दिया था। जिस प्रकार अधेरे मे एक छोटी-सी प्रकाश-किरण भी आ जाय तो वह दूर हो जाता है, उसी तरह पाप का समूह भी चाहे जितना सुदृढ या कठोर हो, पर सत्कर्म की एक छोटी-सी ज्ञान-राशि से वह दूर हो जाता है। प्राचीन समय का एक किस्सा है—

कौशल का राजा बडा दयालु था। वह रोज-रोज स्वय घूम-घूम कर प्रजा का निरीक्षण करता था और उसका दु:ख-दर्द दूर करता था। उस देश की प्रजा तो उसे चाहती ही थी, पर दूसरे देशो की प्रजा भी उसे चाहती थी। एक बार काशी

मे एक उत्सव मनाया जा रहा था। उसे देख कर वहाँ के राजा ने अपने प्रधान से पूछा---शहर मे आज यह क्या हो रहा है ? प्रधान ने कहा---आज कौशल नरेश की वर्ष गाठ है अत सब लोग उत्सव मना रहे है। राजा ने ईर्षावश कहा---मेरे राज्य मे कौशल राजा का उत्सव कैसे मनाया जा रहा है ? प्रधान ने कहा---राजन् ! वह राजा बडा दयालु और प्रजावत्सल है, अत सब लोग उसका जन्म महोत्सव मना रहे है। राजा का ईर्षा भाव बढ गया। मौका देख कर उसने कौशल नरेश पर चढाई करदी। कौशल राजा को जब यह पता चला तो वह निर्दोष मनुष्यो की हिंसा रोकने के लिये और काशी नरेश की इच्छा-तृप्ति के लिये अपना राज-पाट छोड कर जगल मे चला गया। प्रजा मे हाहाकार मच गया। इधर काशी नरेश ने यह इनाम घोषित किया कि जो कोई भी कौशल राजा को जीवित पकड कर लावेगा उसे १। मन सोना दिया जायगा।

जगल मे एक भिखारी भटकता हुआ चला जा रहा था। सामने से एक आदमी आया और उससे पूछा---भाई, कौशल का मार्ग किधर जाता है ? भिखारी ने कहा---तुम वहाँ क्यो जा रहे हो ? उस आदमी ने कहा---मुझ पर लोगो का बहुत कर्जा हो गया है। अब उसे चुकाये बिना दूसरा कोई छुटकारा नही है। अत मै कौशल नरेश के पास जा रहा हूँ। उनसे मै रुपये मागूगा और अपना कर्जा दूर करूँगा। भिखारी उस आदमी को लेकर काशी नरेश के सामने आया और बोला---राजन् ! मैं कौशल राजा को पकड लाया हू। राजा ने कहा---कहाँ है वह लाओ मेरे सामने, मैं उसका सिर

माणु भी धीरे-धीरे सारे विश्व मे फैल जाते है। इसलिये चारित्रहीन मानव केवल अपनी ही हानि नही करता, लेकिन अपने साथ-साथ सारे ससार की भी हानि करता है। ठीक इसके विपरीत सच्चारित्र का हाल है। भले ही एक मनुष्य एकान्त मे बैठा हुआ तप-जप करे, पर उसके सद्विचारो के परमाणु दुनिया के परमाणुओ से मिलकर सारी दुनिया का कल्याण कर सकते है। ऐसी अजब शक्ति इन परमाणुओं मे रही हुई है। शब्द एक मिनिट मे १४ लोक राजू मे फैल जाता है, यह हमारे जैन-शास्त्रो का स्पष्ट फरमान है। अब भी क्या आप परमाणुओ की शक्ति मे सन्देह रख सकेंगे।

जो वस्तु जितनी सूक्ष्म होती है वह उतनी ही बलवान् होती है। आज विश्व का नाश करने वाला 'अणु बम' है। अणु कितना सूक्ष्म होता है? अत यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि सूक्ष्म वस्तु सदा अधिक बलवान् होती है। आप जानते ही हैं' कि काच के एक बडे टुकडे से भी हीरे के एक छोटे से कण मे ज्यादा प्रकाश होता है। क्योकि वह उससे बहुत छोटा होता है। लेकिन विचार के परमाणु तो इनसे भी सूक्ष्म होते है, जिन्हे हम अपनी आखो से देख नही सकते है। अत ये तो इतने बलवान् होते हैं, कि इनकी शक्ति का कोई माप ही नही ले सकता है। जब आप धर्म-स्थानक मे आते हैं तो सुन्दर-सुन्दर भावो मे मस्त हो जाते है, पर स्थानक से निकल कर जब आप किसी सिनेमाघर मे जाते हैं तो आपके वे विचार वहाँ हवा हो जाते है और आप पर विलासी भावनाओ का असर छा जाता है। इसका कारण क्या? यही कि आपके धर्मस्थानको मे महापुरुषो के सद्विचारो के परमाणु फैले हुए है,

अतः वे चिपट जाते हैं और आपको सद्विचारो मे खीच ले जाते है। लेकिन सिनेमाघरों मे तो विलास का ही वातावरण होता है अत वहाँ जाने पर दुश्चारित्र के परमाणु आपके चिपटेंगे ही और आपको बुरे मार्ग पर घसीटेंगे ही। लो इससे आप यह स्पष्ट समझ गये होंगे कि सच्चारित्र और दुश्चारित्र पाप और पुण्य चैंपी है—चिपटने वाले हैं। वे अपना तो हित-अहित करते ही है, पर साथ-साथ दूसरो का भी हित-अहित करने से नही चूकते हैं।

भगवान् महावीर के दर्शनार्थ सुदर्शन सेठ आता है। अर्जुन माली, जो गिन-गिन कर आदमियो की घात करता था, मार्ग मे तैयार खड़ा था। लेकिन सुदर्शन को देखकर उस पर कैसा असर हुआ ? सुदर्शन की महावीर के प्रति जो भगवद्भक्ति थी, उसकी छाप अर्जुन के हृदय पर पडी और उसका हृदय परिवर्तित हो गया। उसने कहा—भाई, क्या तुम मुझे भी भगवान् के दर्शनार्थ ले चलोगे ? बन्धुओ ! यह सच्चारित्र का ही नही तो और किसका प्रभाव था ? जम्बूकुमार और प्रभव का जीवन भी आप जानते है। जम्बूकुमार जब अपनी रानियो के साथ अपने महल मे बात-चीत कर रहे थे तब प्रभव अपने ५०० चोरो के साथ चोरी करने के लिये वहाँ आया था। लेकिन यह चोर भी वैराग्य के परमाणुओ के वशीभूत हो अन्त मे चोर नामक प्रभव के बजाय साधु नामक प्रभव बन जाता है। बताइये, इस चोर नामक प्रभव को साधु नामक प्रभव बनाने वाला कौन था ? कहिये, सच्चारित्र ने ही तो उसे साधु नामक प्रभव बनाया था न ?

वाल्मीकि रामायण सस्कृत का एक आदर्श ग्रन्थ माना

३४

समन्वय

आज पर्युषण पर्व का चौथा दिन है। यह पर्व धर्म को साधना और आराधना करने के लिये है। सारे साल मे धर्म की आराधना न की हो तो काम चल सकता है, पर इन आठ दिनो मे तो करनी ही पडती है—बिना किये कामचल नही सकता है। हमारे शास्त्रकारो ने धर्म को मगल कहा है—'धम्मो मगल मुक्किट्ठ' धर्म उत्कृष्ट मगल है। मानव अगर अपना कल्याण चाहता है तो वह धर्म से ही कर सकता है। बिना धर्म के उसका कल्याण नही हो सकता है। लेकिन धर्म का स्वरूप समझे बिना हम अपना कल्याण नही कर सकते है। कई बार हम अमुक शास्त्रो को पढकर या सुन कर ही अपने को धर्मात्मा समझ लेते हैं, पर दरअसल मे यह धर्मात्मापन नही है। धर्मात्मा की आड मे धर्मात्मापन का मधुर उपहास्य है। आप जानते होगे, कि चमडा जब नरम किया जाता है तभी वह उपयोगी बनता है। इसी तरह जब अपने हृदय को भी नरम किया जाय तो समझ लेना चाहिये कि हम अपने जीवन मे किसी अश मे धर्म को उतार सके है। जब तक हमारे हृदय मे क्रोध का धुआँ उठता हो और ईर्षा की आग जलती हो तब तक हम कैसे धर्मात्मा कहे जा सकते है ? धर्म की या

धार्मिक क्रियाओ की कसौटी ही यह है कि जिनसे परिग्रह की मात्रा कम हो, क्रोध, ईर्षा आदि कम हो। ऐसे धर्म के सिद्धात हर देश और काल मे होते है, पर उनके साधनो मे युगानुसार परिवर्तन होता रहता है। अहिसा, सत्य क्षमा, प्रेम, ब्रह्मचर्य आदि सिद्धान्त एक से होते है, पर उनके साधनो मे परिवर्तन होता रहता है। एक बालक हो और उसका ही एक कोट उसे बडा होने पर भी पहनाया जाय तो वह फिर उसके काम का नही रहता है। गरम कोट को जैसे कोई गरमी मे नही पहनना चाहता है और इस तरह हर एक वस्तु अपने-अपने समय पर ही काम की होती है वैसे ही धर्म भी समयानुसार विविध साधनो मे बदलता रहता है। तो फिर आज हमे यह देखना है, कि आज के जमाने मे कौनसा धर्म सर्वश्रेष्ठ है ? आज के जमाने का सर्वश्रेष्ठ धर्म अगर कोई है तो वह है समन्वय का। आज समाज मे एक तरफ श्रम की दीवार खडी है तो दूसरी तरफ विलास की अटालिकाएँ झुक रही है। ऊँच-नीच, धनवान और गरीब का भेद-भाव आज दिन प्रति दिन बढता जा रहा है। गरीबी और अमीरी दोनो ही आज कराह रही है। श्रम कर-करके गरीबो का शरीर घिस गया है, तो आराम ले-लेकर अमीरों का शरीर भी घिस गया है। इस तरह आज दोनो ही मृत्यु की शरण मे पहुँच गये है। अत आज जरूरत है, कि श्रम करने वाले को कुछ आराम मिले और आराम करने वाले कुछ श्रम करें। ऐसा समन्वय ही आज का सर्वश्रेष्ठ धर्म है।

आज की दुनिया मे आराम बेहद बढ गया है। राजे-महाराजे आज अपने जूते भी अपने हाथ से नही पहनते है।

उतारना चाहता हू। भिखारी ने कहा—राजन्! वह सिर आपके सामने है, पर उसे उतारने से पहले आप इस व्यापारी को १। मन सोना दे दीजियेगा।

बन्धुओ! उस व्यापारी की भलाई के लिये कौशल राजा ने अपना सिर भी काशी नरेश के सामने झुका दिया। उदारता की कैसी चरम स्थिति है यह? कौशल नरेश दूसरे की भलाई के खातिर अपना सिर देने को भी तैयार हो गया था, लेकिन आज हम अपने वढे हुए बालो का और वढे हुए नाखूनो का दान भी सहज भाव से नही दे सकते है। हमारी उदारता का क्या यह नग्न हास्य नही है? आज उपाश्रय और मानव-सहायता जैसे जनोपयोगी कार्यों के लिये भी आप से अपीले की जाती है। लेकिन अगर आप वे बाते नही सुनते है और आवश्यकता से अधिक वढी हुई सम्पत्ति का दान नही करते हैं तो याद रखिये यह वढी हुई सम्पत्ति एक न एक दिन आपका सर्वनाश कर देगी। जिस तरह वढे हुए बालो और नाखूनो को काटा नही जाय तो वे एक दिन मनुष्य के सहारक बन जाते है। उसी तरह आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति का दान न करना भी घातक सिद्ध होता है। अत समझदार मनुष्य को अधिक नही तो कम से कम आवश्यकता से अधिक वढी हुई सम्पत्ति का दान तो अवश्य करना ही चाहिये।

कौशल नरेश जब काशी राजा के सामने अपना सिर झुका कर खडा हो गया, तब सहसा काशी नरेश का भी हृदय पलट गया। उसमे ईर्षा के बजाय प्रेमाकुर पैदा हो गया। उसने कहा—तुम्हारा मस्तक मै तलवार की धार पर

लेना नही चाहता, मै तो इस युद्ध मे तुम से परास्त हो गया हूँ। लो, अपना यह राज्य और इसके साथ-साथ मै अपना हृदय भी तुम्हे अर्पित करता हू। बन्धुओ! कौशल राजा का सिर, जो अपनी तलवार की धार पर उतारना चाहता था, वह उसे अपने हृदय की धार पर अंकित कर लेता है। सद्गुण क्या नही कर सकता है? इस प्रकार एक का सद्-गुण दूसरे को भी पावन कर देता है।

पानी वहता है, निर्मल रहता है। वहती हुई नदी पवित्र रहती है। लेकिन तालाव का पानी वन्द रहता है तो सड जाता है। दुर्गन्ध मारने लगता है। इसी तरह वढी हुई सम्पत्ति अगर दान मे नही निकाली जाय तो वह भी सड जाती है—उससे भी दुर्गन्ध पैदा होने लग जाती है। लेकिन यदि वह निकलती रहे और धार्मिक कार्यो मे खर्च होती रहे तो वह दुर्गन्ध नही देती है। धार्मिक क्रियाओ मे दान देना मानो उनसे होने वाली धार्मिक क्रियाओ के शेयर होल्डर होने जैसा है। वे शुभ कार्य जब तक वने रहेगे तब तक उनका लाभ दान-दाताओ के हिस्से मे जमा होता रहेगा। मील के शेयर होल्डर होने पर तो उससे हानि भी हो सकती है और लाभ भी हो तो केवल इसी जन्म मे मिल सकता है। लेकिन धार्मिक क्रियाओ का शेयर होल्डर हो जाने से हानि तो कुछ होती ही नही है। लाभ ही लाभ अपने हिस्से मे जमा होता रहता है और वह लाभ केवल इसी जन्म मे ही नही, जन्म-जन्मान्तरो मे भी लाभ पहुँचाता है। अत. अगर आप इस तरह शुभ कार्यो मे दान देने का प्रयत्न करेगे और यथाशक्य देगे तो आप अपना पर्युषण पर्व सफल कर सकेगे।

३५

भगवान् महावीर

आज हमारे पर्युषण का पाचवा दिन है। हर पर्युषण के पाचवे रोज हम भगवान् महावीर का जन्म दिवस मनाते आ रहे हैं अत आज सारे भारत मे जहाँ-जहाँ हमारे पर्युषण मनाये जा रहे है, वहाँ-वहा भगवान् महावीर का जन्म दिवस मनाया जायगा। हम भी आज यही मनाने के लिये एकत्रित हुए है। सारे साल भर मे एक बार नही, दो बार नही, पर तीन वार हम इस तरह भगवान् महावीर को याद करते है और सार्वजनिक रूप से उनका गुणगान करते हैं। भगवान् महावीर का जन्म दिवस एक चैत्र शुक्ला तेरस को मनाया जाता है और दूसरा पर्युषण के पाँचवे रोज। तीसरा दिवाली के दिन भी मनाया जाता है जिस दिन महावीर निर्वाण पधारे थे। इस प्रकार तीन वार हम वर्ष भर मे उनकी स्तुति करते हैं। आज दूसरी वार हम उनका गुणगान कर रहे हैं। आज हमे उनके गुणो को याद करना है और उन्हे अपने जीवन मे उतारना है। यही महापुरुष की जयन्ती मनाने का लक्ष्य होता है।

महापुरुषो का जीवन पहाड से गिरने हुए एक वडे जल-प्रवाह के समान होता है। जैसे वह जल-प्रवाह वडे-वडे पत्थरो

को चीर कर भी अपना रास्ता निकाल लेता है और अपने उस प्रवाह मे से दुनियाँ को रोशनी-बिजली देता है, वैसे ही महापुरुष का जीवन प्रवाह भी अज्ञान स्वार्थ अन्धकार के पहाडो को चीर कर गतिशील होता है और जैसे पानी के प्रवाह से बिजली निकलती है वैसे ही महान् पुरुषो के उपदेशो से भी ज्ञान की किरणे निकलती है, जो कि भूले भटके हुओ को मार्ग-दर्शन कराती है। भगवान् महावीर को हुए आज ढाई हजार वर्ष हो गये हैं पर उनके जीवन से जो तेज निकला वह आज भी हमे प्रकाशित कर रहा है।

भगवान् महावीर एक दिव्य कलाकार थे। वे एक राज पुरुष थे, पर उन्होने अपने राजकीय भोगो को भोगा नही, तिनके की तरह फेक दिया था और दीक्षा स्वीकार करली थी दीक्षा लेते ही उनके त्याग का प्रभाव सारे भारत मे फैल गया था। क्योकि भगवान् महावीर का मामा वैशाली का राजा चेटक था। वह बडा प्रभावशाली राजा था। जैसे आज प्रजा के राज्य होते है वैसे उस समय भी गणराज्य होते थे। भगवान् महावीर के समय मे ७७०७ गण राज्य थे। जिनका प्रमुख उनका मामा चेटक राजा था। चेटक राजा ने अपनी पुत्रियाँ जनपद के राजाओ को अर्थात् चेलणा राजगृही के राजा श्रेणिक को, मृगावती कौशाम्बी के राजा शतानिक को, धारिणी को चम्पापुरी के राजा दधिवाहन को, शिवा अवन्ति के राजा चण्डप्रद्योत को, प्रभावती वीत भय पाटन के राजा उदयन को ब्याही थी, अत यह भी एक कारण था कि भगवान् महावीर का प्रभाव इन सब राज्यो पर पडा और धीरे-धीरे एक कोने मे दूसरे कोने तक उनका असर पहुचा।

यहाँ तक की परावलविता आज हो गई है, कि हम हमारे कपडे भी अपने आप नही बना सकते है। महात्माजी ने जरूर ऐसे स्वावलम्बी मानव तैयार किये थे। पर वे है कितने ? बहुत कम। बहुत से मानव तो मजदूरो के श्रम पर और किसानों के बल पर ही अपनी जिन्दगी बशर कर रहे है। अत समन्वय करने की आज नितान्त आवश्यकता है। एक कहावत है—

जहाँ काम, वहाँ राम नही।

लेकिन आज तो यह कहा जाना चाहिये कि—

जहाँ काम, वहाँ राम है!

पहली कहावत काम विकारो को लेकर कही गई है, पर दूसरी कहावत मे श्रम को प्रधानता दी गई। युरोप की एक प्रसिद्ध लेखिका इलाविलर ने एक कविता लिखी है। वह मानव समुदाय के दो भाग करती है। वह राजा-प्रजा, विद्वान् मूर्ख, साधु-दुष्ट जैसे दो भाग नही करती है, लेकिन वह कहती है—दुनिया मे एक ऐसा भाग है, जो अपने कधे पर दूसरे को वैठा कर ले जाता है और दूसरा ऐसा है कि वह दूसरे के कधे पर वैठ कर जाता है।

बन्धुओ, विचारिये, आज हमारी स्थिति कहाँ है। क्या हम दूसरो को अपने कन्धे पर वैठा कर ले जाते है या उसके कन्धे पर हम वैठ कर चलते है ? आज की स्थिति तो हमारी ऐसी हो गई है, कि अगर एक रोज भी घर मे घाटी न हो तो घर का सारा काम चौपट हो जाता है। अत आज का युग हमे पुकार-पुकार कर कहता है, कि मानव-मानव मे समन्वय-करलो, अन्यथा वना-वनाया खेल भी विगड जायगा। अत

आवश्यकता है आज हर एक सम्प्रदाय के साथ समन्वय करके अपने को सगठित बनाने की ज्ञान और कर्म का भी हमे आज समन्वय करना है। जो वर्ग बहुत पढा लिखा है उसे आज आवश्यकता है कुछ क्रिया करने की और जो क्रियाशील है उन्हे आवश्यकता है कुछ ज्ञान प्राप्त करने की। इस प्रकार जब हम समन्वय कर विचार भेदो के आन्तरिक दोषो को निकाल बाहिर करेगे तभी अपने पर्व को—जीवन को सफल कर सकेगे।

हम भगवान् महावीर के कार्य को देखेंगे तो उनका कार्य कितना कठिन प्रतीत होगा ? यह सब देख कर भगवान् ने अपने राज-मार्ग का त्याग किया और साधु बने। साधु बन कर उन्होने १२॥ वर्ष तक घोर तप किया, जिसमे उन्होने चिन्तन-मनन आदि किया और इन पापो से दुनिया का उद्धार कैसे हो यह सोचा। १२॥ वर्ष बाद, जब उनकी साधना सफल हुई और कैवल्य प्राप्त हुआ, तब ४२ वर्ष की उम्र मे उन्होने उपदेश देना शुरू किया। उन्होने जब यह सुना कि ११ ब्राह्मण पडितो के समक्ष पावापुरी मे एक बडा यज्ञ होने वाला है, जिसमे भयकर पशु-बलि की जायगी, तो वे यह सुनते ही वहाँ गये और उन ब्राह्मण पडितो को समझा-बुझा कर वह भयकर पाप होने से बचाया। उसी रोज उन्होने वेदान्त के उन ११ महा पडितो को अपना शिष्य बनाया। दूसरी तरफ उन्होने महान् राजाओ को भी अपने वश मे किया। उदयन जैसा राजा भगवान् महावीर का शिष्य बना। मेघ कुमार और जम्बूकुमार जैसे राजपुत्र उनके पास आकर बैठने लगे। तापस भी आये और सेठ श्रीमन्त भी आकर उनके सघ मे सम्मिलित होने लगे। तीसरी बाजू भगवान् महावीर के सघ मे हरिजन भी आने लगे। उन्होने सब तरफ से तिरस्कृत हरिजनो को भी अपने यहाँ स्थान दिया और इस प्रकार सार्वदेशीय सघ की स्थापना उन्होने की। दूसरा तीर्थ उन्होने साध्वियो का स्थापित किया जिसमे चन्दनबाला नामक एक स्त्री को जो कि गुलाम तरीके बेची गई थी, उसे अपने साध्वी सघ की नायिका नियुक्त की। उस साध्वी सघ में मृगावती जैसी कई रानियाँ भी थी। इस प्रकार भगवान्

महावीर ने ब्राह्मणो, तापसो, राजाओ, राजपुत्रो, रानियो, हरिजनो, साधु और साध्वियो सबको अपने इन दोनो सघ मे सम्मिलित कर लिया। तीसरा तीर्थ था श्रावक का, जिसमे सेठ-साहूकार, राजा और साधारण जनसमुदाय था श्रेणिक और चण्डप्रद्योत जैसे राजा इस तीर्थ मे प्रविष्ठ हुए थे। आनद और कामदेव जैसे सेठ इसमे दाखिल हुए थे। और सकडाल जैसा कुम्हार भी इसमे आया था। चौथा तीर्थ श्राविकाओ का बनाया गया। जिसमे बड़ी-बडी रानियाँ सेठानियाँ और साधारण स्त्रियाँ भी थी। इस प्रकार भगवान् ने उस अनगढ मानव-ससार से उक्त चार तीर्थों की स्थापना कर मार्ग निकाला और पत्थर जैसे जन-समाज को तीर्थ का रूप देकर देव तुल्य बनाया। आज भी भगवान् का यह तीर्थ चल रहा है, पर आज उसमे कुछ सुधार करने की जरूरत है। आज हमे यह विचारना है, कि हम भगवान् महावीर के तीर्थ मे है। या नही ? हम तीर्थ रूप यानी पवित्र है या नही ? चारो तीर्थो को आज हमे इसी दृष्टि से देखना है।

लेकिन सच बात यह है, कि आज भगवान् के इन चारो तीर्थों मे गन्दगी पैठ गई है। साधु साधु नही रहे और श्रावक, श्रावक नही रहे है। भगवान् महावीर ने सर्व प्रथम उपदेश देते हुए कहा था—'मा हणो'—किसी की हिंसा मत करो। याद रखो अगर तुम किसी को दुःख दोगे तो तुम्हे भी दुःख उठाना पडेगा। तुम किसी को ठगोगे तो तुम्हे भी ठगाना पडेगा तुम किसी को मारोगे तो तुम्हे भी मरना पडेगा।' यह था अहिंसा का सन्देश, जो आज भी कितना उपयोगी है ? क्या हम आज इस सन्देश का पालन करते है ? अगर नही

उस समय का जमाना वडा खराव था। मानव समाज अपने विवेक को भूल वैठा था। जैसे एक चतुर शिल्पी साधारण से पत्थर पर भी ताजमहल जैसी सुन्दर कृति को अङ्कित कर देता है वैसे ही भगवान् महावीर भी एक दिव्य कलाकार थे और उन्होने भी विवेक शून्य मानवो के वीच मे एक तीर्थ की रचना की थी। इसी को लेकर वे तीर्थंकर भी कहलाये। उस समय के जमाने मे भगवान् महावीर ने जो कार्य किया, वह कितना कठिन था, यह उस समय के जमाने को देखकर ही जाना जा सकता है। उस समय क्षत्रिय लोग विलासी हो गये थे। वे विलास के लिये ही जीते थे और युद्धादि करते थे। श्रेणिक ने चेलणा के लिए युद्ध किया था। कौणिक ने राज्य पाने के लिए अपने पिता को कैदी वनाया था, हार और हाथी के लिए उसने अपने नाना चेटक से भयङ्कर युद्ध भी किया था, जिसमे एक करोड अस्सी लाख मानवो का सहार हुआ था। इस प्रकार उस समय के क्षत्रिय अपने धर्म को भूलकर अधर्म करने लग गये थे—विलास के खातिर युद्ध करने लग गये थे। उनके विलासी जीवन की कोई सीमा नही रही थी। रहने के लिए उनके पास हर एक ऋतु के लिए अलग-अलग महल होते थे। लेकिन वे आये कहाँ से थे? गरीवो के शोषण से ही तो? अत यह देखकर भगवान् महावीर की आत्मा काँप उठी।

दूसरी तरफ ब्राह्मण धर्म का उपदेश देने वाले खुद ही धर्म भूल गये थे। ब्राह्मणो मे तो अलोलुप वृत्ति और निस्वार्थ वृत्ति होनी चाहिये पर उस समय के ब्राह्मण स्वार्थी और लोभी हो गये थे भगवान् महावीर ने देखा कि जिनके हाथ मे धर्म की

लगाम है, वे ही जब अपना काम भूल गये है तो दूसरों को कैसे वे धर्म पर चला सकेंगे।

तीसरी तरफ वैश्य अपना भान भूल गये थे और वे भी साधारण जनता का शोषण करने मे लगे हुए थे। चौथा वर्ण शूद्रो का था। उनकी दशा तो जानवरो से भी खराब हो गई थी। उनको छूना भी पाप समझा जाता था। समाज तीनो फिर्को का उन पर भारी जुल्म था। जैसे पशुओ पर बोझा डाला जाता है वैसे ही उस समय शूद्रो पर प्रतिवधो का बोझा डाला हुआ था। वे जहाँ-तहाँ आ-जा नही सकते थे। यह देखकर भगवान् का दिल रो पडा।

एक वार भगवान् से एक आचार्य ने कहा—आप महापुरुष हैं अत आपको इन मानवो का कल्याण करना चाहिये। अभी मेरे आश्रम के पास से एक हरिजन कुटुम्ब रोता हुआ जा रहा था, जिसमे एक बुढिया स्त्री भी थी। उससे जब पूछा तो उसने कहा कि मेरा एक जवान लड़का अचानक किसी यज्ञ के निकट जा निकला तो उसे मार दिया गया है।' दूसरी तरफ यज्ञो मे पशुओ की बलि हो रही है, यह भी भगवान् ने सुना। इस प्रकार उस समय खेती का परिमाण कम हो रहा था और मानव महारंभी बनकर मास भक्षी होता जा रहा था। अत यह सब देखकर भगवान् ने सोचा, कि अब धर्म की नैया डगमगा रही है। अगर अब भी इनको सच्चा धर्म नही बताया जायगा तो दुनिया का सत्यानाश हो जायगा।

तापस आदि जो धर्म के गुरू कहे जाते थे, वे भी सब धर्म से विपरीत थे। इन सब परिस्थितियो को देख कर अगर

करते है, तो फिर हमको भगवान् के तीर्थ मे रहने का क्या अधिकार है ? दूसरा उपदेश देते हुए उन्होने कहा—यदि तुम परिग्रह इकट्ठा करोगे तो यह निश्चित है, कि तुम उसके लिये हिंसा भी करोगे। अत तुम पैसे को दूर रक्खो—दान मे दे दो। दान देने का उन्होने उपदेश ही नही दिया बल्कि दीक्षा लेने के पूर्व उन्होने १ वर्ष तक खुले हाथो से दान भी दिया था। यह था अपरिग्रह का दूसरा सन्देश। तीसरा सन्देश देते हुए उन्होने कहा तुम अपने दृष्टि कोण से ही किसी चीज को मत देखो पर दूसरे की दृष्टि से भी उस पर विचार करो। यह सन्देश था अनेकान्त का। भगवान् महावीर के इन तीन सन्देशो का अगर हम आज भी पालन करेगे तो हम अपना कल्याण कर सकेगे।

: ३६ :

वीर-सन्देश

हमने कल भगवान् महावीर की जयन्ति मनाई थी—यानी कल हमने उनके जीवन पर विचार किया था। भगवान् ने अपने जीवन में क्या-क्या कहा और करने का आदेश दिया ? यह आज भी विचारने का है। और दुनिया को समझाना भी है। यह कार्य भगवान् के स्थापित किये हुए तीर्थ ही कर सकते है। लेकिन देखना यह है, कि भगवान् ने जिस उद्देश्य से चार तीर्थों की स्थापना की थी और उनके जो कर्त्तव्य बताये थे, वे तीर्थ अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं या नही ? साधु साध्वी, श्रावक और श्राविका अपना धर्म पालते है या नही ? यही हमे आज देखना है।

साधु अपना घर-वार छोड़ कर निकलते है, पर उनका सब से बड़ा धर्म है समाज की सेवा करना। आज वे अपने कर्त्तव्य को कहाँ तक बजा रहे है, यह किसी से छिपा हुआ नही है। कहना तो यह चाहिये कि वे अपने धर्म को भूल कर आज समाज को विपरीत मार्ग पर ले जा रहे है। साधुओ को अपना कर्त्तव्य बजाने के लिये अपरिग्रह और अनेकान्त का उपदेश देना चाहिये। और इसके लिये ऐसा ज्ञान प्राप्त करना चाहिये जिससे कि वे ऐसा उपदेश दे सके। आज सचमुच

आवश्यकता यह है, कि हम श्राविकाओ को ज्ञान दे और उन्हे शिक्षित तथा सस्कारित बनावे। अगर वे सस्कारित और शिक्षित होगी तो निश्चित समझिये कि श्रावक और साधु भी ज्ञानी और सस्कारित हो सकेंगे। इस प्रकार इन चारो तीर्थों का मूल आधार श्राविकाओ पर रहा हुआ है। उनके उत्थान और पतन पर ही इनका उत्थान और पतन भी सभावित है।

आज दुनियाँ मे जो दु ख नजर आरहे हैं, वे इन तीन कारणों से ही हो रहे हैं—अहिसा, अपरिग्रह और अनेकान्त के अभाव से ही आज दुनियाँ आग मे जल रही है। आज दुनियाँ मे हिंसा इतनी अधिक बढ गई है, कि मानव-मानव को खाने के लिये तैयार बैठा है। अत आज भी भगवान् महावीर की अहिंसा की पूरी-पूरी जरूरत है।

आज का मानव बडा परिग्रही बन गया है, और परिग्रह को लेकर ही आज दुनियाँ शैतानो का अखाडा बन गई है। अत जीवन के मूल मे जो परिग्रह वृत्ति आज घुस गई है, उसे दूर करना चाहिये। इसीलिये भगवान् महावीर ने परिग्रह पर भी अहिसा जैसा ही भार दिया है।

भगवान् महावीर का तीसरा सिद्धान्त था अनेकान्त-स्याद्वाद। इसमे नाना मत-मतान्तरो को घुला-मिलाकर एक कर दिया था। अनेकान्त शाब्दिक अर्थ भी यही होता हे कि जहाँ अनेक धर्म सम्मिलित हों। इसका अर्थ था हर एक आपस मे मिलजुल कर रहे और लडे-झगडे नही। पर आज यह हाल है कि हम भगवान् महावीर के पुत्र ही जब एक नही हो सकते है तो सारी दुनियाँ के धर्मो का कैसे समन्वय कर सकते हैं ? भगवान् का आदेश तो यह था, कि मानव सम्प्र-

दायवाद के भेदो को भूलकर एक-मेक होकर रहे । साधन भले ही जुदे-जुदे हो, पर लक्ष्य समान हो तो उनसे हमे ऐतराज नही होना चाहिए । दस मनुष्यो का एक कुटुम्ब अपनी-अपनी रुचि के अनुसार खान-पान करता है, पर उससे जैसे भिडी या तुरई का 'वाद' नही खडा हो जाता है, उसी तरह कोई किसी भी साधन से सद्धर्म का आराधन करता हो उसे अपने मे मिला लेना चाहिये । सच्चे अनेकान्ती का तो यही धर्म होता है । मानव की रुचि भिन्न-भिन्न हो सकती है, और होती भी है, पर उससे लक्ष्य मे अन्तर आजाता हो, ऐसा कोई नियम नही है । एक जलेबी खाता हो और दूसरा गुलाबजामुन, तो इससे उसके अलग-अलग 'वाद' नही चल पडते हैं । दोनो का लक्ष्य तो क्षुधा-तृप्ति ही है । इसी तरह धर्म के मामलो मे भी दखल नही देना चाहिये । लेकिन यह अवश्य याद रखना चाहिये, कि असत्य से सत्य मे लाया जाय, न कि असत्य मे—अधर्म मे न बढने दिया जाय । आज तेरापथी से स्थानकवासी या देहरावासी से तेरापथी बनाने की ज़रूरत नही है । जरूरत है 'मेरा और तेरा' मिटाने की । जो लोग तेरापथी या और कुछ बनाने का प्रयत्न करते है, वे लोग भूल करते है । भले ही कोई ख्रिस्ती भी क्यो न हो, पर वह शुद्ध अहिसा और प्रेम का पालन करता हो तो उसे जैन ही समझना चाहिये । बाहिर के 'लेबल' से हमे उतना मतलब नही होना चाहिये जितना कि भीतरी तत्त्व से । एक शीशी पर लेबल तो स्वर्ण भस्म का लगा हुआ हो, पर भीतर राख भरी हो तो उससे क्या लाभ होने वाला है ? इसी तरह आपको तो अहिंसा और प्रेम की मात्रा देखनी चाहिये, न कि कोरे ऊपरी लेबल को ही ।

क्योकि कोरे लेवल से तो कोई लाभ होने वाला नही है, जब तक कि उसमे सार नही हो । अत आज इधर-उधर कुछ भी बनने बनाने की जरूरत नही है, ज़रूरत है अहिंसा और सत्य मे स्थित होने की ।

तुम अहिंसा का पालन करो, सत्य का पालन करो, प्रेम को धारण करो—यही भगवान् महावीर का आग्रह हैं और यही अनेकान्त भी है ।

आज से २५०० वर्ष पूर्व भगवान् ने यह उपदेश दिया था, पर आज भी वही उपदेश हमे अपने जीवन मे उतारना है और उसका सारी दुनिया मे प्रचार करना है । भगवान् महावीर को हुए २५०० वर्ष गुजर गये, पर आज भी उनकी सुगध इस पृथ्वी पर छाई हुई है और उनके सिद्धान्तो का असर बना हुआ है ।

विज्ञान का एक यह प्रसिद्ध नियम है कि—तारे मे से जो आज किरण निकलती है वह हज़ारो वर्षो पूर्व की होती है और जो आज टूट भी जाय तो उसकी किरण हजारो वर्षों बाद भी दिखाई पडती है । ठीक इसी तरह भगवान् महावीर को हुए आज सैकडो-हज़ारो वर्ष हो जाने पर भी उनकी चमक दिखाई पड रही है । यह आज आज की दुनिया का अहोभाग्य है, कि इस दुनिया मे भगवान् महावीर जैसे महापुरुष पैदा हुए थे, और हमारा तो उससे भी ज्यादा सौभाग्य है, कि हम तो उन्ही के धर्मानुयायी भी हैं । अत भगवान् का वह पवित्र उपदेश आज भी हमे अपने जीवन में उतारना है । अगर पर्युषण के इन पवित्र दिनो मे भी हम उसे नही उतारेंगे तो फिर कब उतारेंगे ? आज तो हमने उनकी अहिंसा का सन्देश

भी नही अपनाया हे । उन्होने मानव को त्रस जीवो की हिसा से बचने का आदेश दिया है, पर आज हम अपने शरीर पर जो वस्त्राभूषण धारण करते हैं, वे त्रस जीवो के घात से बने हुए होते है । तब फिर कैसे हम उनके अनुयायी कहे जा सकते है ? वहिने मोती की चूडियाँ (बगडियाँ) पहनती हैं, पर यह नही जानती कि वे मोती मछलियो को चीरकर उनके पेट मे से निकाले जाते है । ऐसी अवस्था मे आप अहिसक कैसे बन सकते है ? अत अगर आप सचमुच भगवान् के अनुयायी कहलाना चाहते है तो उनके सिद्धान्तो को अपने जीवन मे स्थान दीजिए और तदनुकूल सदाचरण कीजिए । जब आप ऐसा करेगे तभी आप अपना जीवन सफल कर सकेंगे ।

३७

सम्वत्सरि महापर्व

जिस दिन की हम प्रतिक्षा कर रहे थे वह पवित्र सम्वत्सरि का पर्व आज आ गया है। आज के दिन की महत्ता के लिये ही पर्युषण पर्व मनाया जाता है। आज के रोज सभी लोग प्रतिक्रमण करके क्षमा याचना करेंगे। आज के पर्व को सम्वत्सरि पर्व कहे या क्षमा पर्व दोनो एक ही है। लेकिन आज इसको कैसे मनाना चाहिये, यह विचारना है।सस्कृत मे कहा है—'क्षमा वीरस्य भूषणम्' क्षमा वीरो का भूषण है अत हमको क्षमा देने से पहले क्षमावीर वनना चहिये। दुनिया मे कई तरह के वीर होते है। जैसे कि धर्मवीर, दानवीर, युद्धवीर, बुद्धवीर, आदि-आदि। लेकिन देखना यह है कि हम कौन से वीर है ? धर्मवीर वे कहे जाते है जो रात दिन मनुष्यो का मैल धोने मे लगे हुए रहते है। कषायो की मात्रा दूर करने मे लगे हुए रहते है। क्या हमारा नाम भी ऐसे धर्म वीरो मे आता है ? भगवान् महावीर प्रमुख ऐसे ही धर्मवीर हो गये हैं। उनके द्वारा ही प्ररूपित हुआ यह पर्व आज हमे धर्मवीर वनने का सन्देश देता है।

दूसरे वीर कर्मवीर होते है, अनासक्त होकर सेवाकार्य करते है। महात्मा गांधी ऐसे ही वीर थे। हम भी ऐसे वीर

हो सकेंगे तो क्षमा हमारा भूषण हो सकेगी ।

तीसरे बुद्धवीर—ज्ञान की खोज कर जो अपने ज्ञान का उपयोग दुनिया मे करते है वे बुद्धवीर होते है। पर आज तो हमारे मे साधारण बुद्धि भी नही है।

चौथे युद्धवीर—कई मनुष्य युद्धो मे लाखो पुरुपो का सहार कर देते हैं, पर वे वीर नही राक्षस होते है—क्रूर होते हैं । जो अन्याय के सामने डटकर मुकावला करता है और गरीवो पर होनेवाले अत्याचारो का अहिंसक भाव से प्रतिकार करता है वही सच्चा युद्धवीर होता है । जिसे हम सत्याग्रही के रूप मे पहिचानते है । क्या हम ऐसे युद्धवीर की गिनती में भी आ सकते है ? अगर नही आसकते है तो क्षमा को कैसे हम अपना भूषण वना सकेंगे ? इसके वाद ज्ञानवीर का नम्वर आता है । जिसने ज्ञान की एक दिशा का पूर्ण प्रकाश पाया हो और उसे दुनिया को दिया हो वह ज्ञानवीर है । पर हम आज ऐसे वीर भी नही हैं । इसके वाद दानवीर का नम्वर आता है । दान वीर उसे कहते है, जिसकी लक्ष्मी हॉस्पिटल और दवाखानो मे फिरती रहती हो, श्राविकाश्रम और अनाथा-लयो मे फिरती रहती हो । हमारी समाज मे भगडूशाह जैसे दानी महापुरुप हो गये हैं । जिन्होंने भयङ्कर दुष्काल के समय भी अपने नाज के (धान) कोठो को खोल दिया था और दान-वीर का भूपण धारण किया था । गुजारत मे खेमादेराणी भी ऐसा ही दान वीर हो गया है ।

चापानेर मे चापसी मेहता नामक एक महाजन हो गया है । एक दिन वह वादशाह के दरवार मे जा रहा था, रास्ते मे उसे एक भाट मिला । उसने उसका स्वागत करते हुए कहा

—-पहले शाह और फिर बादशाह। चापसी मेहता के साथ मे जो सामन्त था उसके दिल मे यह बात चुभ गई। उसने बादशाह से कहा—आपका भाट तो शाह की तारीफ करता है और आपका कुछ मान भी नही रखता है। आये दिन वह कहता रहता है, कि पहले शाह और फिर बादशाह। बादशाह ने इसकी परीक्षा करनी चाही, पर इसका तत्काल कोई मौका नही मिला।

कई दिनो बाद जब दुष्काल पडा, तब बादशाह ने शाह को बुलाया और कहा—तुम इस दुष्काल को दूर करो अन्यथा तुम्हारी यह शाह पदवी छीन ली जायगी। शाह ने एकमास का समय माँग कर सभी महाजनो को इकट्ठा किया और उन्हे बादशाह का हुक्म सुनाया। लोगो ने इसके लिए गाँव-गाँव फिर कर फंड करना शुरू किया। कुछ एक महाजन पाटन पहुचे और वहाँ फड करने लगे। पाटन के पास ही एक छोटा सा गाँव था जहाँ एक साधारण गृहस्थ रहता था। उसने जब सुना, कि मेरे गाँव के पास से महाजन जा रहे है तो उसने सोचा—मै उन्हे अपने घर लाऊँ और कुछ नाश्ता तो कराऊँ। वह उनके पास गया और उनको अपने घर लाया। महाजनो ने कहा—अभी छ मास और दस दिन शेष हैं। इन दिनो के लिये भोजन की व्यवस्था करनी बाकी है अत आप भी अपनी कोई मिति (तिथि) लिखाइये। वह महाजन अपने पिता के पास गया और उनकी बात कही। पिता ने कहा—बेटा! भाग्य से ही ऐसा मौका तेरे हाथ मे आया है। तू इस अनमोल अवसर को मत खो और इसका पूरा-पूरा लाभ ले। पुत्र ने आकर महाजनो मे कहा—भाइयो, आप

स्थिति के अनुसार सब दान दे सकते है और एक पाई का दान देने वाला भी दानवीर कहा जा सकता है।

आज का पर्व आदान-प्रदान का है। क्षमा देनी और लेनी भी है। अत हमारे दिलो मे जो बुराइयो का कचरा भरा हुआ है उसे आज चौपाटी के दरिया मे फैंक कर साफ कर लेना चाहिये। एक अग्रेज लेखक ने कहा कि 'मेरा हृदय इतना विशाल है कि मै सबको समा सकता हूं, पर बुराइयों के लिये मेरे मन मे कोई स्थान नही है।' आज हमे भी अपना हृदय ऐसा विशाल करना है और क्षमा का आदर्श चरितार्थ करना है। हमारे पूर्व मुनिराज गजसुकुमाल, मेतारज मुनि आदि क्षमा का आदर्श कायम कर गये हैं। परदेशी राजा को उसकी प्रेमपात्र रानी श्री कान्ता ने जहर दिया था, पर फिर भी राजा ने क्षमा प्रदान की थी। स्कधक मुनि ने, जिनके सामने ५०० शिष्यो को घानी मे पील दिया गया, पर मुह से चू तक नही की थी। ऐसे ही आदर्श मुनियो का जीवन आज हमे अपने जीवन मे उतारना है।

भगवान् बुद्ध का एक शिष्य पूर्ण नाम का था। वह जब अनार्य क्षेत्र मे धर्म प्रचार के लिए जाने लगा तो भगवान् बुद्ध ने उससे कहा—अगर तुम्हे वहाँ कोई गाली देगा तो क्या करोगे ?

शिष्य ने कहा—मै उसका उपकार मानूगा।

भगवान् बुद्ध ने फिर पूछा—अगर कोई तुम्हे हाथों से मारेगा तो ?

शिष्य ने कहा—मै इसका उपकार मानूगा, कि उसने मुझे शस्त्रों से तो नही मारा है ?

भगवान् बुद्ध ने फिर कहा—अगर कोई शस्त्रो से मारेगा तो ?

शिष्य ने कहा—तो मै यह सोचकर उसका उपकार मानूंगा कि उसने मुझे मृत्यु-दण्ड तो नही दिया है।

भगवान् बुद्ध ने फिर कहा–कोई तुम्हे मार डालेगा तो ?

शिष्य—भगवन्, मै उस समय यह सोचूँगा, कि मेरी आत्मा तो अजर-अमर है, शरीर नाशवान था–एक न एक दिन तो जाने ही वाला था।

बन्धुओ ! ऐसी क्षमा जब हमारे जीवन मे होगी तभी हम क्षमावीर बन सकेंगे। लेकिन इसके लिये जब हमारे मे पूर्ण वीरता होगी तभी हम ऐसी उत्तम और आदर्श क्षमा को अपना सकेंगे।

कल ५ वर्ष का एक अबोध बालक यहाँ आया था। उसने यहाँ फड होते हुए देखा तो उसने सोचा—मुझे भी कुछ देना चाहिये। सब लोग रुपया दे रहे हैं तो मै क्यो नही दूँ ? यह सोच कर उसने अपने बटुवे मे से ५१) रुपये निकाल कर दे दिये। यह सस्कारो का ही प्रभाव है। जब एक बालक भी शुभ काम मे अपनी पूँजी मे से कुछ रकम दे देता है तो आप तो समझदार है, आप मे तो यह आदर्श विकसित होना ही चाहिये। आज का यह पर्व उसी दान-भावना को विकसित करने के लिये आया है। अगर हम आज इस प्रकार अपने जीवन मे दान के आदर्श को उतारेंगे तो अपने पर्व की आराधना सफल कर सकेंगे।

: ३८ :

दुबली आठम

आज दुवली आठम है। कषाय-विषय को दुवला वना कर आत्मा को सशक्त वनाने का यह सन्देश देती है। शरीर मे किसी तरह की खरावी हो या दर्द हो तो भले ही अच्छी से अच्छी खुराक खाई जाय, पर वह उस खरावी को या दर्द को ही पुष्ट करेगी, शरीर को नही। आज हम जो कुछ भी करते है-करते तो आत्मा के लिये है, पर विषय-कषाय के रोग होने से वे उनको ही पुष्ट करते है और आत्मा को निर्बल बनाते है। इसलिये आज की यह अष्टमी कहती है कि तुम अपनी आत्मा को सशक्त वनाओ।

मनुष्य जव कही वाहर जाता है तो स्वच्छ होकर जाता है। कपडे मैले हो तो उन्हे वदल कर वाहर निकलता है। लेकिन जव आत्मा और मन ही मैले हो तो दूसरो को अपना मुँह कैसे दिखाया जा सकता है? मनुष्य अपने मुँह को दिन मे कई वार कॉच मे देखता है और स्वच्छ करता है, लेकिन क्या वह अपने मन के काले दाग को भी कभी देखता है? आज की यह अष्टमी इसी वात का ज्ञान कराने के लिये आई है।

आज हमारी स्थिति एक छोटे से वालक जैसी हो गई है। छोटा वालक जैसे एक-एक पैसे के लिए भी अपने पिता से

लडता है, वैसे ही हम भी विषय-कषाय के लिये धर्म से लडते हैं, उसे छोड देते है। इसलिए आज की यह दुवली अष्टमी कहती है, कि तुम इन विषय-कपाय को छोड दो और अपनी आत्मा को वलवान बनाओ। वाह्य शत्रु से भी आन्तरिक शत्रु सशक्त है, अत उसको परास्त करो। शास्त्रकारो ने भी कहा है—'अपनी आत्मा दुरात्मा होकर जितना नुकसान करती है, उतना कोई गरदन पर छुरी चला कर भी नही करता है।'

आज वकील को देखकर जैसे कोर्ट की याद आती है और वालक को देखकर पाठशाला की, इसी तरह ज्ञानी पुरुष भी जव किसी विषय-कपायाध पुरुप को देखता है तो उसे नरक की याद आ जाती हैं। वालु प्रभा और तम प्रभा आदि तो द्रव्य नरक हैं, पर काम-क्रोध, लोभ,छल-कपट आदि भाव नरक हैं। अतः द्रव्य नरको से दूर होते हुए भी अगर इन भाव नरको से नही बचा जाय तो समझ लेना चाहिये हम भाव-नरको मे ही पडे हुए है। लेकिन इन भाव नरको से वचकर कैसे रहा जाय ? यही अव विचारना है।

यह वात अनुभव से जानी हुई है, कि क्रोध आने पर वाद मे पश्चात्ताप होता है। अमेरिका का एक प्रोफेसर था, जो साधारण सी वात पर भी गरम हो जाता था। लेकिन उसने यह तय कर लिया कि यह स्वभाव मेरा ठीक नही है, अत इसे छोड देना चाहिये। इसके लिये उसने एक नोकर रखा और एक खाली लिफाफा देकर उससे कहा—देखो, जव कभी मै आवेश मे आ जाऊँ, तव तुम यह लिफाफा मेरे सामने रख देना। नौकर जव भी साहव को आवेश मे देखता, उस लिफाफे को सामने कर देता था, जिसे देख कर वह अपना क्रोध ठडा

कर लेता था। मतलब यह है कि मानव चाहे तो अपने कषायों को दूर कर सकता है। क्रोध आवे तो मौन द्वारा या कुछ पढने मे लग जाने से उसे शान्त किया जा सकता है। जब अनार्य पुरुष भी ऐसा कर सकते है, तो क्या कारण है कि हम नही कर सकते ? न्यूटन ने लगातार ३० वर्षों तक गहन तत्वो की शोधकी और उनको एक नोट-बुक मे लिखा। एक दिन उसकी वह नोट-बुक टेबल (मेज) पर पड़ी हुई थी और पास ही मे दीपक भी जल रहा था, उसका कुत्ता 'डायमड' टेबल पर उछला और दीपक गिर गया; जिससे उसकी सारी नोट,बुक जलकर खाक हो गई। न्यूटन ने आकर जब यह देखा तो उसे अपार दुख हुआ। आपके लाखो रुपयो के नोटों की तरह उसकी वह तीस साल की शोध थी, जो आपके लाखो रुपयों से भी अधिक कीमती थी। अगर आपकी तिजोरी जिसमे लाखो रुपयों के नोट हो, जल जाय तो आपका कैसा हाल होगा ? क्या आपको नीद भी आवेगी ? न्यूटन की तीस वर्ष तक की गहन शोध कुत्ते ने जला दी, पर न्यूटन ने उस कुत्ते से कहा—'डायमड! तुझे क्या पता था कि मेरी इसमे कितनी मेहनत थी !' इससे अधिक उसने कुछ नही कहा। इसी तरह आज हमको भी अपनी कषाय-मात्रा को कम करना चाहिये—स्वार्थ वृत्ति को मिटाना चाहिये।

आज हम क्षुद्र स्वार्थ के लिये भी अधर्म कर रहे है। सरकार के नियमो का उल्लघन कर हम राज-द्रोह का गुनाह मोल ले रहे है। अतः इस खोटी परिग्रह वृत्ति को आज हमें दुवली करनी चाहिये। वहिनों के पास यदि पच्चीस साड़ियाँ हों तो फिर एक और लाने की क्या ज़रूरत है ? एक भी

हो तब भी क्यो लानी चाहिये ? जबकि आपके पास जरूरत से ज्यादा कपडे हो। इस प्रकार परिग्रह बढाना पाप ही है। झूठे मान के खातिर लोगो को जिमाना और गवर्नमेट का कानून भग कर प्रजाहित मे बाधा पहुँचाना या मानव समाज का अहित करना, हिंसा करने जैसा ही है। घर मे अपने लडके का विवाह हो और उसकी खुशाली मे यदि कोई पच्चीस के बजाय चालीस आदमियो को मिष्टान्न खिलावे तो क्या वह देश-द्रोही या मानव-द्रोही नही होगा ? अत अगर आप भी ऐसा करते है तो मुझे कह देना चाहिये, कि आप पाप ही करते हैं, धर्म नही अधर्म ही फैलाते है। आज की यह दुबली आठम हमको यही कहने आई है। इस प्रकार यदि हम ऐसी दुर्भावनाओ को दूर करेगे तो इस दुबली आठम को सफल कर सकेगे। अन्यथा यह आठम तो क्या, आपके पर्युषण महापर्व भी सफल नही हो सकेंगे। जब तक आप इन कषायो को दुबली नही करेंगे तब तक आप अपनी आत्मा का हुङ्कार नही कर सकेंगे।

आज देश मे गन्दगी अधिक फैल गई है। चोर बाज़ार हद से ऊपर बढ गया है। बेईमानी की हद बढ गई है। इन सब खुराफ़ातो को दूर करने के लिये ही ये हमारे धर्म स्थान है। अगर आप यहाँ आकर रोज थोडा-थोडा अपना सुधार करेगे और नियम लेगे तो ये धर्म-स्थान दुनिया मे फिर से चमकने लग जायेंगे, और इस प्रकार हम इस दुबली आठम को ही नही, अपने सभी धार्मिक पर्वो को भी सफल कर सकेंगे।

सकता है और दूसरो को भी प्रेरित कर सकता है। लेकिन इससे भी आगे की मजिल अच्छे बनने की है। मानव दूसरे का भला कर सकता है और मानवता की कोटि मे आ सकता है, पर स्वय अच्छा वनना वडा कठिन काम है। स्वयं-सेवक बन कर दूसरो की सेवा करना बड़ा आसान है, पर अपना जीवन अच्छा बनाना वडा मुश्किल है। अत हरेक मानव को सबसे अधिक आवश्यकता है अपने चरित्र को उन्नत बनाने की एक कहावत है—

धन गया तो कुछ नही खोया।
स्वास्थ्य गया तो कुछ खोया।
चारित्र गया तो सब कुछ खोया।

चरित्र चला जाय तो समझ लेना चाहिये, कि सब कुछ चला गया है। यही चारित्र दिव्यता की मजिल है। चारित्र ही मनुष्य की अचल सम्पत्ति है। एक समय की बात है—बनारस के राजा ने अपने यहाँ एक वडी सभा कराई। सभा मे देश-देश के वडे-वडे विद्वान् आये थे, और राजे-महाराजे भी उसमे सम्मिलित थे। जनता की भीड़ अपार थी। ठीक समय पर राजा ने खड़े होकर कहा—भाइयो! दुनिया का हर एक मनुष्य शान्ति चाहता है, लेकिन वह मिल कैसे सकती है। यही जानने के लिये ही इस विशाल सभा का आयोजन किया गया है। अब आप शान्त हो जाइये और इस विषय मे विद्वानो के अपने-अपने विचार ध्यान पूर्वक सुनिये। सभा शान्त हो गई। विद्वानो के भाषण होने लगे और सबने अपनी-अपनी बात कही। अन्त में सारी परिषद् ने मिलकर जो शान्ति का मार्ग तय किया, उसे सुनाने के लिये एक राजपुरोहित खडा हुआ और बोला—'वेदाभ्यास से मनुष्य को शान्ति मिलती है।

इसलिये सब को वेदाभ्यास करना चाहिये।' यह सुनकर सब को आनन्द हुआ। सब ने वेदाभ्यास की जयध्वनि की। इतने मे ही एक युवक तपस्वी खडा हुआ और बोला—'कौन कहता है, कि वेदाभ्यास से शान्ति मिलती है! यह बिल्कुल गलत बात है। इससे शान्ति कदापि नही मिल सकती।' राजा को यह सुनकर बडा आश्चर्य हुआ। सारी सभा भी विस्मित हो गई। राजा ने उससे पूछा—अच्छा, तुम बताओ, शान्ति का मार्ग क्या है? तपस्वी ने कहा—'राजन्! वेदाभ्यास से शांति नही मिलती, ज्ञान मिल सकता है, पर सच्ची शान्ति तो सयम से ही मिल सकती है।' राजा को ही नही, सबको यह बात जँच गई और तब यह जाहिर किया गया कि 'शान्ति, सयम से मिल सकती है।'

बन्धुओ! कहने का तात्पर्य इतना ही है, कि शान्ति सयम से ही पैदा होती है अत हमे भी चारित्रशील-सयमी बनना चाहिये। अगर हमे सचमुच शान्ति को पाना है तो व्यसनो को तज कर सदाचारी बनना चाहिये।

धर्म की व्याख्या करते हुए हमारे शास्त्रकारो ने कहा है—'चारित्त खलु धम्मो'—अच्छे सिद्धान्तो को अपने जीवन मे स्थान देना ही धर्म कहा गया है। चारित्र क्या है? इसका उल्लेख करते हुए शास्त्रकार कहते है—अशुभ काम से निवृत्त होना चारित्र है। लेकिन जब हम कोई भी काम नही करते है तब भी हमारा मन तो किसी उधेड-बुन मे लगा ही रहता है, अत. यह तो चारित्र की अधूरी व्याख्या ही हुई। इसलिये पूरी व्याख्या करते हुए शास्त्रकार ने कहा है—

असुहादो विणिवित्ति सुहे पवित्तिय जाण चारित्तं

अर्थात् खराब कामो को छोड़ कर शुभ कामो मे प्रवृत्त होना चारित्र है। जव हम कुछ नही करते है और हमारा मन जव खाली होता है तव वह शैतान का घर हो जाता है। अत इसे अच्छी प्रवृत्ति मे लगा देना ही चारित्र है, सयम है। और यही सयम सच्ची शान्ति प्रदान कर सकता है। ऐसा सयम जिस व्यक्ति मे होता है वह कम से कम लेकर समाज को अधिक से अधिक दे सकता है और अपना जीवन सफल कर सकता है।

मन, वचन एवं शरीर को अशुभ मे न ले जाकर शुभ मे प्रेरित करना सयम है और यही शान्ति का मार्ग है। अत हमारी उन्नत आकृति जो सन्देश देती है, कि तुम ऊँचे चढो, उसे अपनाना चाहिये। अच्छा ग्रहण करने के वजाय अच्छा करने की इच्छा रखनी चाहिये और उससे भी आगे अच्छे वनने की भावना रखनी चाहिये। जव कोई अच्छा ग्रहण करने की इच्छा करता है तो उसे मेहनत भी करनी पडती है और दूसरो का सहयोग भी लेना पडता है, लेकिन अच्छा वनना तो अपने हाथ की वात होती है। अच्छा ग्रहण करना तो फिर भी कठिन है, पर अच्छा वनना तो उससे वडा आसान होता है। विद्वान् वनना वडा मुश्किल होता है, पर सदाचारी वनना तो वडा आसान है। अत हरेक मनुष्य को अच्छा वनने की इच्छा रखनी चाहिये।

कल, आपमें से कुछ भाइयो ने व्लेकमार्केट न करने का व्रत लिया था, लेकिन याद रखिये मानव का व्रत भी सती के सतीत्व जैसा होता है। महात्माजी ने कहा था कि 'वहिनो को अपने पास ज़हर अथवा अफीम की गोली रखनी चाहिये।

वक्त आने पर उन्हे यह गोली खाकर मर जाना चाहिये, पर सतीत्व को नही तजना चाहिये।' यही बात मानव के व्रत के लिये भी है। जान चली जाय तो जाय, पर व्रत का नही छोडना चाहिये। हालाँकि व्रत मे जान बहुधा जाती नही है। अत मनुष्य को भी अपने व्रत का सती के सतीत्व की तरह पालन करना चाहिये। कपडा न मिले, नाज न मिले और भूखो मरना पडे या ठड मे मरना पडे तो कबूल हो, पर ब्लेक का नही लेना चाहिये। हालाकि कपडा बनाना तो अपने हाथ की ही बात है। लेकिन फिर भी कभी ऐसी स्थिति आजाय तो व्रत के लिये मर जाना कबूल हो, पर व्रत को भङ्ग नही होने देना चाहिये। इस प्रकार जब हम अपना जीवन सयमी–चारित्रशील बनाकर दिव्यत्व की मजिल पर पहुँचेगे तभी हम अपना जीवन सफल कर सुखी बन सकेगे।

. ४० .

मानव-सेवा

भूगोल के एक छात्र को यदि कोई नक्शा दिखाकर यह पूछे कि– गगाजी कहाँ है ? वह कहाँ से निकलती है ? हिमालय कहाँ हैं ? तो वह अपनी अगुली फेर कर झट बता देता है। क्योकि उसको इसका ज्ञान रहता है। लेकिन जब उससे कोई यह पूछे, कि तेरे मास्टर का घर कहा है तो वह नही बता सकता है। वह सिकन्दर की मृत्यु-तिथि बता सकता है पर अपने बाप-दादो की मरण-तिथि नही बता सकता। इससे यह ज़ाहिर है, कि उसे बाहरी दुनिया का तो बडा अच्छा ज्ञान होता है, पर वह अपने घर के बाबत अनजान ही रहता है। ठीक ऐसी ही आज हमारी भी स्थिति हो गई है। आज का मानव बाहरी दुनिया का ज्ञान तो पूरा-पूरा रखता है, पर उसे अपने कर्त्तव्य का धर्म का ज्ञान नही होता है। अत सर्व प्रथम मानव का कर्त्तव्य क्या है ? धर्म क्या है ? यह समझ लेना ज़रूरी है मानव का सबसे पहला धर्म है—मानव के साथ समभाव रखना। यदि कोई अपना मकान बनावे तो सर्व प्रथम उसका पाया ही बनाया जायगा, न की छत। छत की ज़रूरत है, पर पाया-नीव के बिना छत कैसे बन सकती है ? बन भी गई तो उसका अस्तित्व कितना होगा ? क्षणिक ! ठीक यही

हाल आज हमारा भी हो रहा है। पाया न बना कर आज हम पहले छत बनाने की तैयारी कर रहे है। आज हम लीलोती आदि का जो त्याग करते है, वह ऐसा ही धर्म है। उसके नीचे पाया नही है। पाया जो होना चाहिये, वह है मानव-दया, जिसका कि हमे सर्वप्रथम पालन करना चाहिये। बिना इसके एकेन्द्रीय जीवो की दया करना तो पाया रहित छत जैसी ही बात है। धर्म का पाया है मानव-दया और उसके बाद ही पृथ्वी, पानी जैसी दीवार या छत बनाई जा सकती है। अत आज हमे सर्व प्रथम अपनी नीव को मजबूत बना कर आगे बढना चाहिये।

आज जैनियो पर यहाँ आरोप लगाया जाता है कि 'वे मानव को तो मार देते हैं, पर कीडे-मकोड़ो की रक्षा करते-फिरते है।' इसका कारण यही है, कि हमारी शुरूआत ही उल्टी हुई है। आज हम मछलियो की रक्षा के लिये, यदि तालाब मे पानी न होगा तो उसमे, पानी डालेगे और उनकी रक्षा करेंगे, पर मनुष्यो का खून चूसने मे कभी नही हिचकिचाएँगे। महात्मा जी ने कहा था कि 'अहमदाबाद के एक तालाब मे जब पानी सूख गया तो जैनी वहाँ जाकर पानी डालते थे, पर वे ही मिल चलाने मे तनिक भी नही हिचकिचाते हैं।' अत' मनुष्य मे सम्वेदना अवश्य होनी चाहिये। और यह तभी हो सकती है जब कि उसके धर्म की शुरूआत ही मानव दया से या मानव सेवा से होती हो। अंग्रेजी मे दो शब्द हैं god और dog दोनो मे तीन-तीन अक्षर है, जो कि एक सरीखे है, पर उनका क्रम उल्टा-सीधा है। ये शब्द हमसे यह कहते हैं कि अगर तुम सीधी तरह वर्ताव करोगे तो god बन जाओगे,

वह बैठा ही रहा। भाग्य से एक आदमी उधर से निकला और उसने पूछा—तुम यहाँ क्यो बैठे हो ? किशन ने कहा—मुझे मन्दिर वाले की सेवा करनी है। अत मैं उसी की इन्तजार मे बैठा हुआ हू। आदमी ने कहा—दो महीने बाद यहाँ एक वडा मेला लगेगा, जिसमे हजारो स्त्री-पुरुष इकट्ठे होगे। तू अगर मानव की सेवा करेगा तो तुझे इस मन्दिर वाले देव के दर्शन हो सकेगे। तव किशन वहाँ झोपडी वना कर रहता है और आने जाने वाले पुरुष की सेवा करता है, उन्हे नदी के इस पार से उस पार तक पहुँचाता है। जैसे-जैसे मेले के दिन आये वैसे-वैसे मानवो का आवागवन शुरू हो गया। किशन सब को नदी से आर-पार करने लगा। एक दिन की वात है रात को किसी ने उसकी झोपडी का दरवाजा खटखटाया। किशन ने उठकर देखा तो एक छोटा-सा वालक खडा हुआ था। उसने किशन से कहा—मेरे पिता जी पार खडे हुए है, तुम मुझे भी उस पार पहुँचा दो। किशन जब इसे लेकर नदी के उस पार पहुँचा, तो वही वालक अब उसे देव-मूर्ति का रूप धारण करते हुए दिखाई देने लगा। उसने कहा—किशन, तू जिस मन्दिर वाले की सेवा करना चाहता है, वह मै ही हू। तू मेरी सेवा करना चाहता है तो मानवो की सेवा कर, उनकी सेवा करना मेरी ही सेवा करना है। उस दिन से वह अन्ध-श्रद्धालु किशन सच्चा सेवक बन जाता है और अपना जीवन मानव-सेवा मे लगाता है। कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है, कि यदि हम मानव-सेवा के सर्वोपरि कार्य को धर्म का पाया समझेगे और अपनी धर्म रूपी इमारत को मजबूत बनावेंगे तो हम अपना जीवन सार्थक कर सकेंगे।

४१

जन-सेवा

हम जब जन्मे तो रोते हुए पैदा हुए थे और आसपास वाले सब हँसते थे। उनको हमारी खुशी मे पेड़े बाँटे गये थे। इस तरह हम जन्मे, तब रोये और दूसरे लोग हँसे, पर हमारा मरण ऐसा होना चाहिये, कि हम हँसे और दूसरे सब रोये। अगर ऐसा हमारा जीवन होगा तो वह जीवन धन्य कहा जा सकेगा। लेकिन सोचना यह है, कि ऐसा जीवन हम बना कैसे सकते है? इसी प्रश्न के उत्तर मे कल हमने विचार किया था कि अगर धर्म का पाया मानव-दया के ऊपर उठा हुआ हो तो हम अपना जीवन ऐसा बना सकते है। और मृत्यु के समय भी हम हँस मुख रह सकते है। सेवा की निर्मल ज्योति जगाने से ऐसा जीवन बनाया जा सकता है। सस्कृत मे कहा है—

नत्वह कामये राज्य न स्वर्ग ना पुनर्भवम्।
कामये दुःख तप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।

अर्थात्—मुझे राज्य-वैभव या स्वर्ग सुख की कामना नहीं है। और न मोक्ष ही चाहिये, पर दुःख मे पीड़ित प्राणियो के दुखो का मैं नाश कर सकू, यही मै सोचता हूँ। मानव, अगर अपना जीवन ऐसा बनाना चाहता है, कि मृत्यु के समय

वह हँसे और लोग रोये, तो उसे अपना यह जीवन मंत्र बना लेना चाहिये।

मानव मे मुख्यत भोग और सत्ता ये दो प्रवृत्तियाँ ही मुख्य रहती हैं। इन्ही के लिये वह दूसरो का बलिदान भी लेता है। आज से ५०० वर्ष पूर्व के इतिहास को भी अगर हम देखेगे तो ये दो चीजे—भोग और सत्ता ही सबसे पहले जीवन मे दिखाई देगी। हिटलर ने युद्ध किया तो सत्ता के ही लिये। बडे-बडे व्यापारी जो आज धधा करते हैं वह किस लिये ? केवल भोग के ही लिये तो करते हैं। अत. मानस-सघर्ष के मूल मे ये दो वासनायँ ही रहती हैं। लेकिन इस श्लोक मे कहा है कि—मुझे वह स्वर्ग नही चाहिये—जहाँ खूब ऐश-आराम मिलता हो, मुझे वह राज्य-वैभव भी नही चाहिये जिससे कि मै दूसरो पर सत्ता चलाने वाला बनू। इससे भी आगे बढ़कर वह कहता है कि मुझे मोक्ष की भी तमन्ना नही है, लेकिन चाहता केवल इतना ही हूँ, मैं दु ख से पीड़ित मानवो की वेदनाएँ दूर कर सकूं। ऐसा ही जीवन मत्र यदि हमारा भी होगा तो हम मृत्यु के समय भी हँस मुख रह सकेंगे।

आज हमारे देश मे ऐसे कई सेवक राष्ट्र-सेवा करते आये हैं, पर सत्ता जब उन्हे मिली तो उनमे से कई उसमे फँस गये। लेकिन जो सच्चे सेवक हैं वे आज सत्ता मिलने पर भी दिन-रात सेवा की ज्योति जगा रहे हैं।

हर एक दिन हमारा छोटा जीवन है अत. हमें हर एक दिवस को सफल बना चाहिये। जिन्दगी हमारी एक खुली हुई दुकान है। महीना पूरा होने पर दुकानदार जैसे अपने लाभ का हिसाब लगाता है और दीवाली आने पर जैसे १२

महीनो का हिसाब करता है, उसी तरह अपनी जिन्दगी का भी हमे हिसाब लेना चाहिये। दूकानदार के नफे की तरह हमारी जिन्दगी का भी कुछ नफा (फल) आवे तो इसे सफल समझना चाहिये, अन्यथा निष्फल और निस्सार। एक समय की बात है—एक दिन 'एकनाथ' महाराज के पास एक आदमी आया और बोला महाराज, आपका जीवन बड़ा शान्त और मधुर है, परन्तु मेरा जीवन अशान्त क्यो है ? इसका क्या कारण है ?

एकनाथ महाराज ने कहा—भाई, तू इन सब बातो को तो जाने दे, पर तेरी मृत्यु आज से आठवे रोज होने वाली है इसलिए अभी उसकी फिकर कर। यह सुनकर वह घबराया हुआ अपने घर आया और पास-पडौसियो से तथा कुटुम्बीजनो से क्षमा-याचना करने लगा। इस तरह वह सबसे क्षमा माँग कर अपने दिन धर्म ध्यान मे व्यतीत करने लगा। जब आठ रोज पूरे हो गये तो एकनाथ महाराज उसके घर आये। एकनाथ महाराज को देखकर उसने पूछा—कहिये, अब मेरी मृत्यु मे कितनी देर और है ! एकनाथजी ने कहा—भाई, यह बात तो ईश्वर जानता है, पर यह कहो कि तुम्हारा यह सप्ताह कैसा बीता ? आदमी ने कहा–मेरे सामने तो मेरी मृत्यु नाच रही थी अतः मैने इन दिनो मे न तो कोई बुरा काम किया और न किसी के बुरे वचन पर ही खयाल किया। तब एकनाथ महाराज ने कहा—भाई, जैसे तुम्हारी आँखो के सामने आठो ही दिनो तक मौत नाचती रही और तुमने कोई बुरा काम नही किया, वैसे ही महापुरुषो की नज़रों मे भी रोज़-रोज़ मृत्यु थिरकती रहती है,

इन्सान बड़ा कैसे बने ?

प्राणी मात्र मे एक ऐसी इच्छा होती है, कि सब अपना-अपना उत्कर्ष चाहते है। मानव-मात्र बड़ा होना चाहता है। और यह स्वाभाविक भी है, कि-चैतन्य-आत्मा सर्वश्रेष्ठ है अत. ऐसी महत्त्वकाक्षा होनी भी चाहिये। कोई सत्ता द्वारा, बल द्वारा या विद्वत्ता द्वारा बडा होने की इच्छा रखता है। पर बडा कैसे बनू ? यह प्रत्येक मानव चाहता है। लेकिन सोचना यह है, कि हम सचमुच बडे कैसे बन सकते है ?

हमारे में सब से बड़े परमात्मा है। हमे भी बडा होना है तो ईश्वरत्व को पाना चाहिये। धन से या सत्ता से बडा होना, बडा बनना नही है, परन्तु ईश्वरत्व पाकर बडा बनना ही सचमुच बडा होना है। इसलिये ईश्वरत्व को पाने के लिये या बडा होने के लिये मनुष्य को सबसे पहले निर्दोष हो जाना चाहिये।

बादाम का एक ढेर पडा हो और खाते-खाते जब तक कडवी बादाम मुह मे न आवे, तब तक तो अच्छा लगेगा। पर कडवी बादाम के आते ही जैसे मुह का सारा स्वाद बिगड जाता है, वैसे ही मनुष्य मे भी गुणो का समूह हो, परं

उसमे एक आध कडवी बादाम की तरह बुराई भी हो तो वह कडुआ हो जाता है । एक मनुष्य बडा दयालु हो, दान देने वाला हो, पर देते समय कुछ सुनाकर देता हो तो यह उसकी कडवाम हो जाती है । अगरेजी मे कहा है—

'सामने वाले पुरुष मे भले ही कई अवगुण हों, पर वह हमे अरुचिप्रद नही लगेगा । लेकिन जब वह हमारे साथ उद्धत होकर बात करेगा तो वह हमे बुरा लगेगा ।'

मनुष्य सदाचारी हो, पर बोलने मे उद्धत हो—असभ्य हो तो वह कैसा बुरा लगता है ? अत हमारे जीवन मे भले ही बडे-बडे सद्गुण हो, पर मामूली तौर पर भी असभ्यता होगी तो हम दूसरो को बुरे ही लगेगे । इसलिए सबसे पहले बडे होने के लिये बाहिरी दोषो को—असभ्यता को दूर करना चाहिये । बोलना कैसे चाहिये ? सुनना कैसे चाहिये ? आदि सीखना चाहिये । क्योकि प्रभुत्व पाने के लिए बाह्य और आन्तरिक-शुद्धि का होना परमावश्यक है। एक अग्रेज ने कहा है—

'बाहिरी सभ्यता, सादगी और आन्तरिक शुद्धि होने पर मनुष्य स्वर्ग मे उड सकता है ।'

बडा बनने के लिए हमे इस तरह दोनों तरह की सभ्यता प्राप्त करनी चाहिये । निर्दोष होने के लिये पहले क्षेत्र शुद्धि होनी चाहिये और फिर बीज बोना चाहिये । ऐसा करने पर ही उसमे बोया हुआ बीज सुरक्षित रह सकेगा और फल-फूल सकेगा । हमारे हृदय मे कूड-कपट रहित सरलता होनी चाहिये और इस तरह उसे शुद्ध कर फिर प्रभुत्व पैदा करने के लिये ज्ञान शक्ति, सहन शक्ति और चाहना शक्ति रूप उसके बीज

बोने चाहिये, जिनसे कि परमात्मा पैदा किया जा सकता है ।

मनुष्य जब तक अपनी जात को ही पहचानता है तब तक वह सबका प्रिय-पात्र नही बनता है । अग्रेजी मे कहा है—

'टनो बन्द उपदेश देने के बजाय एक तोला दूसरे की सहायता करना ज्यादा अच्छा है ।'

सेवा भले ही तोला भर हो, पर वह ज्यादा कीमती है । अत· मानव को यदि सेवा करने मे कुछ सहन करना पडे तो उसे सहे, पर सेवा से विमुख न हो तो वह प्रभुत्व प्राप्त कर सकता है ।

. एक व्यक्ति जब अपने कुटुम्ब को छोड कर समाज को चाहने लगता है तो उसको बहुत कुछ अपना स्वार्थ-त्याग करना पड़ता है। देश का हित सोचते समय समाज का स्वार्थ छोड़ना पडता है और विश्व का हित चाहते समय उसे राष्ट्र का स्वार्थ भी छोड़ना पडता है ।

जो मनुष्य केवल अपना ही स्वार्थ छोडकर कुटुम्ब का स्वार्थ देखता है तो वह उससे कुछ ऊपर 'वनस्पति' जैसा बनता है । इससे ऊपर उठकर जो समाज का हित चाहता है वह पशु-पक्षी की कोटि मे आता है । आपने देखा होगा, कि कौआ जब किसी जीमनवार को देखता है तो वह काव-काव करता है और अपने दूसरे साथियो को भी बुला लेता है । यह सामाजिक कोटि है । इससे भी आगे बढकर जब हम राष्ट्रहित का विचार करते हैं, तब हम मानव की कोटि मे आते है ।

पहली कोटि खनिज पदार्थ जैसी है, दूसरी वनस्पति जैसी, तीसरी पशु-पक्षी और चौथी मानव की है । इससे आगे जो विश्व का कल्याण चाहता है वह देव तुल्य बन जाता है ।

जिसे हम अरिहन्त देव कहकर पुकारते हैं, वह यही देव-कोटि है। जो मनुष्य परमात्मा पैदा करना चाहे तो उसे इस प्रकार अपनी चाहना शक्ति को विकसित करनी चाहिये, उससे साथ-साथ सहन शक्ति का विकास तो सहज और स्वाभाविक वढाना ही पडता है। विश्वप्रेम के लिये मानव को कुछ कम नही सहन करना पडता है। भगवान् महावीर ने १२ वर्ष तक कठिन तप किया और अनार्य क्षेत्र मे विचर कर जगत कल्याण का मार्ग शोधा। उसको पाकर वे देश-विदेशो मे विचरे और दुनिया को कल्याण का मार्ग बताया। इस कार्य के लिये उन्हें किस हद तक अपनी सहनशक्ति विकसित करनी पडी होगी ? इसका अनुमान लगाना भी कठिन है।

महात्माजी को भी कितना सहन करना पडा था। अफ्रिका मे जव वे एक वार भाषण देकर अपने घर आ रहे थे, तो रास्ते में एक आदमी छुरा लेकर उनके पीछे-पीछे आया। गाधी जी के साथ एक स्त्री भी थी। उसने जव उस आदमी को देखा तो गाधीजी से कहा—यह कौन अपने पीछे-पीछे आ रहा है ? गाधीजी ने उस आदमी से पूछा तो उसने अपना छुरा दिखाते हुए कहा—'मै तुम्हे मारने के लिये आया था, पर न जाने मेरा हाथ तुम्हारे ऊपर उठता क्यों नही है ?' इस प्रकार जव चाहना शक्ति खिलती है तो हम प्रभुत्व को पैदा कर सकते हैं।

प्रेम एक अजीव वस्तु है। सारी दुनिया इस पर न्यौछावर हो जाती है। पुराने जमाने मे भारत के वादशाह वहुत कम जीवन जीते थे और चीन के वादशाह दीर्घजीवी होते थे। एक वार हिन्द के वादशाह को यह विचार आया कि हम क्यो

कम जीते है ? चीन के बादशाह की तरह हमें भी दीर्घजीवी क्यो नही होते ! इसका क्या कारण है ? एक दिन हिन्द के बादशाह ने चीन के बादशाह को पत्र लिखा कि हमारा जीवन तो बडा छोटा है, पर तुम बडे दीर्घ-जीवी होते हो इसका क्या कारण है ? बादशाह ने अपना यह पत्र मत्री के साथ चीन के बादशाह के पास भेजा और कहा—तुम इस पत्र का जवाब लेकर आओ, अगर बिना जवाब लिये ही आ गये तो तुम्हे प्राण दण्ड दिया जायगा।

मत्री पत्र लेकर चीन पहुँचा और उसने वहाँ दरबार मे पहुँच कर बादशाह को वह सोने की पेटी दी, जिसमे वह पत्र बन्द किया हुआ था। चीन के बादशाह ने उस पत्र को पढा और हिन्द से आने वाले लोगो को बडे मान-सम्मान के साथ अपने यहाँ उतारा। उनकी सब व्यवस्था की और सेवा मे कुछ आदमी भी नियत कर दिये। पाँच सात रोज बाद मत्री बादशाह के पास गया और बोला—महाराज ! अब मेरे पत्र का जवाब दीजिये।

बादशाह ने कहा—भाई, अभी तो तुम आये ही हो, कुछ दिन ठहरो और यहाँ की सस्कृति को देखो, कुछ दिन बाद तुम्हे उत्तर भी मिल ही जायगा।

मत्री कुछ दिन और ठहर कर फिर बादशाह से बोला—महाराज, अब आप अपना उत्तर दीजिये, बहुत दिन हो गये है और हमने यहाँ की सस्कृति का भी अध्ययन कर लिया है।

बादशाह ने कहा—भाई जिस वट-वृक्ष के नीचे तुम सब ठहरे हुए हो, वह जब जल कर खाक हो जायगा, तब तुम्हे मै अपना जवाब दूँगा।

५०० वर्ष पुराना वट का पेड कब जले और कब हम अपने घर जाये ? मत्री को अब अपने घर जाने की कोई उम्मीद न रही । वह वट-वृक्ष के नीचे आया और अपने दूसरे ५०० साथियो से बोला—यह वट का वृक्ष कब जले और कब बादशाह अपना जवाब हमको दे ? अब तो कोई उम्मीद अपने घर जाने की नही रही है । फिर तो मंत्री और उसके साथियो के दिमाग मे सोते जागते, उठते, बैठते, रोज यही विचार रहने लगा । वे जब भी एक दूसरे से मिलते तो यही कहते, कि यह वट वृक्ष कब जले और कब हम अपने घर जावे ? इस प्रकार रोज-रोज कहने से वह वट का पेड केवल दो महीनों मे ही जल कर खाक हो गया । मत्री को आश्चर्य हुआ, पर उन्हें खुशी भी हुई, कि अब हम अपने घर पहुँच जायँगे । मत्री बादशाह के पास गया और बोला—आपके कहने के मुताबिक वड का पेड जल कर खाक हो गया है अत अब आप मुझे अपना जवाब दीजिये ।

बादशाह ने कहा—भाई तुम्हारे पत्र का जवाब तो तुम्हें मिल गया है ? फिर मै क्या दूँ ? मत्री ने आश्चर्य से कहा—जवाब कैसे मिल गया ? अभी तक तो आपने कुछ कहा ही नही ।

बादशाह ने कहा—जैसे तुमने ५०० साल पुराने वट-वृक्ष को भी 'कब जले'—कब जले के नि श्वास डाल कर दो मास के भीतर ही जला दिया, वैसे ही तुम्हारे बादशाह भी प्रजा से प्रेम नही करते है इस लिये प्रजा उन्हे अशान्ति की नजरो से देखती है । मेरी प्रजा मुझे चाहती है—प्रेम की नजरो से देखती है अत. जहाँ तुम्हारे बादशाह कम उमर मे ही मौत के

शिकार हो जाते है, वहाँ मेरे जैसे बादशाह दीर्घ-जीवी होते हैं और लम्बे समय की जिन्दगी आनन्द से बशर करते है ,

मत्री ने हिन्द मे आकर अपने बादशाह को चीन के बादशाह का जवाब दिया और यह उत्तर हिन्द के बादशाह को भी जच गया ।

इस प्रकार सत्ता से कभी किसी पुरुष से ज्यादा काम नही लिया जा सकता है, पर प्रेम-पूर्वक एक नौकर से भी ज्यादा काम लिया जा सकता है। यह अनुभव सिद्ध बात है, कि सास बहू पर सत्ता जमावे तो बहू सास से दूर-दूर जावेगी, पर जब वह अपना सारा घर बहू पर छोड देगी तो वह सास के पास-पास आवेगी । दो बात कहेगी, तब भी चुपचाप सुन लेगी । अत. मनुष्य को चाहने की शक्ति बढानी चाहिये । जब यह शक्ति बढेगी तो हम सहन करना सीखेगे भी, और तभी हम धीरे-धीरे 'मित्ती मे सव्व भूएसु' के चरम सिद्धान्त का अनुसरण कर ईश्वरत्व प्राप्त कर सकेंगे और दुनिया मे बडे कहे जा सकेंगे ।

: ४३ :

कलामय जीवन

पैर मे काटा और आँख मे कण जैसे हमको सहन नही होता अथवा पहने हुए कपडे मे या दाँत मे फाँस का होना जैसे असह्य होता है वैसे कला विहीन जीवन भी हमको असह्य होना चाहिये।

भर्तृहरिजी ने भी कहा कि—"कला-विहीन जीवन पशु तुल्य है।" लेकिन आप कहेगे, कि आज का जीवन कहाँ कला विहीन है ? आज तो बोलने में कला, चलने मे कला, पहनने मे कला और लिखने मे भी कला, सब कुछ कलामय ही दीखता है। यह सच है, पर जीने की कला तो इन सबसे सर्वथा भिन्न ही है। और जीने की कला जानने वाले का जीवन ही कलामय बना सकता है।

शिल्प कला, कृषि कला इत्यादि कलाएँ कला कही जाती है, पर ये बाह्य कला हैं। आन्तरिक कला कुछ जुदी वस्तु है। परन्तु इतना तो अवश्य मानना ही पडेगा, कि निरुद्यमी होकर बैठे रहने की अपेक्षा बाह्यकलाओ का अभ्यासी होना अच्छा समझा जाता है, पर जीवन कला का जानने वाला उत्तम पुरुप कहा जाता है और वह पुरुप तो उत्तमोत्तम कहा जाता है जो जीवन कला को जानकर दूसरे को भी जीवन कला का ज्ञान

कराता हो। निरुद्यमी मनुष्य कीटवत् है। वाह्य कलाओ को सीखने वाला पशु तुल्य है। जीने की कला जानने वाला ही खरा मानव है और यह जानकार दूसरे को सीखने वाला तो देव पुरुष है।

पहली श्रेणी मे आने वाले सर्व साधारण मानव है। दूसरी श्रेणी मे आने वाले वैज्ञानिक है। तृतीय श्रेणी मे वे लोग हैं जिनका जीवन मधुर और गुलावी हो, कडुवास का जिन मे लेश मात्र भी अश न हो, वे ही जीवन की कला को जानने वाले खरे मानव है। महावीर और बुद्ध, ईसा और गाँधी, जिन्होने दुनिया को जीने की कला दिखाई है, दिव्य कलाकार हैं।

एक धर्म वाक्य है कि—'सव्वा कला धम्म-कला जिणाइ' सर्व कलाओ पर धर्म कला ही विजयी होती है अन्य सब सामग्रियाँ हों, पर जीवन जीने की कला नही आती हो तो जीवन नही के समान वन जायगा और दूसरी तरफ अल्प सामग्री होने पर भी अगर जीवन जीने की कला होगी तो वहाँ आकाश मे से भी स्वर्ग उतर आयगा। हम यहाँ दो समाज की कल्पना करे—एक समाज ऐसा है जिसमे विमान, रेल, तार, मोटर, विजली आदि सब वैज्ञानिक साधन है, परन्तु इस समाज के लोग एक दूसरे को मदद न कर दिन-रात छल-कपट, लूट-खसोट मे मस्त रहते है। दिन-रात ईर्षा, द्वेष, अहकार आदि से जलते रहते हैं। दूसरी समाज ऐसी है, जिसमे उपरोक्त वैज्ञानिक साधन नही है, पर उसमे मनुष्य प्रेम से रहते हैं। ईर्षा, द्वेष अहकार आदि वहाँ खोजने पर भी नही मिले। सुख-दुःख मे सब सहायक वने, सतुष्ट रहे तो यह

समाज उपरोक्त वैज्ञानिक समाज से हजार गुना अच्छा है। पहले समाज के पास मे सब सामग्री होने पर भी वह जीने की कला के अभाव मे दुखी है। दूसरा समाज जीने की कला का जानकार है अत अल्प सामग्री से भी स्वर्ग का सुख भोगता है।

कौमी एकता के लिये किये गये उपवास के समय शाति-निकेतन का एक छात्र गाधीजी की सेवा मे दिल्ली था। पारणा हो जाने पर एक दिन उस विद्यार्थी ने बापूजी से पूछा—बापू आप कला को नही मानते ? बापू ने हसकर जवाब दिया 'रामचन्द्रन ! मै जितना कला को मानता हूं उतना भाग्य से ही कोई मानता होगा। लेकिन मेरी कला की व्याख्या कुछ जुदी है। मै सत्य मे ही सौन्दर्य देखता हू, और सत्य, अहिसा को मन, वचन और कर्म मे ताने-बाने की तरह बुन लेने मे ही मुझे कला का दर्शन होता है।'

जीवन को कलामय बनाने के लिये चारित्रशील बनने की जरूरत है। चारित्र जीवन का पाया है। बुद्धि हो, सम्पत्ति हो, पर यदि चारित्र नही हो तो लाखो रुपयो के फरनीचर से सजाये हुए सुनसान महल की तरह जीवन शून्यवत् अनुभव होगा। चारित्र शून्य जीवन जीते भी मरणतुल्य है।

इतिहास मे शालिवाहन राजा का नाम प्रसिद्ध है। इसके नाम से शक सम्वत भी चालू है। किम्वदन्ती है, कि शालि-वाहन राजा ने एक बार भरे दरबार मे प्रश्न पूछा कि—'कौन जीता है ?'

सब विचार मे पड गये कि-महाराज को क्या हो गया है ? सब चलते है, फिरते है, तब महाराज यह कैसे पूछते

हैं कि कौन जीता है ?'

सारी सभा चुप थी । उसी समय कालिकाचार्य ने जवाब दिया कि महाराज ! जिसने तप किया है, चारित्रशील है- जो बीमारो की सेवा करता है दु:खियो को सान्त्वना देता है, गरीवो का आधार है, अपने बलिदान से मानव समाज का श्रेय करता है और जो मनुष्य मे मगल श्रद्धा पैदा करता है, वही जीता है । जिसमे त्याग, तप या परोपकार की वृत्ति नही है वह जीते हुए भी मरे हुए के समान हैं ।

सारी सभा स्तब्ध हो गई । लेकिन यह नग्न सत्य है, कि आज भी हमारे मे से बड़ा भाग जीता हुआ भी मृतक ही है ।

शालिवाहन ने कालिकाचार्य को कहा कि—महाराज ! इस पर तनिक प्रकाश डालेगे ?

कालिकाचार्य ने कहा—महाराज ! मैं जगल मे था, तव मैंने मेरे शिष्य को कहा कि निर्गुण और चारित्रहीन मानव पशुवत् है ।' यह सुनकर पशुओ ने फरियाद की कि हम मनुष्यो के वहुत काम मे आते है । मरने के वाद भी हमारे अवयव मनुष्य के काम मे आते है —मृग-चर्म योगी का आसन बनता है । हाथी के दाँत की अनेक वस्तुएँ वनती हैं । पशुओ का चमडा मनुष्य के पैरो का रक्षण करता है, धूप तथा काँटे से वचाता है । पशुओ के अवयव और भी अनेक काम मे आते हैं, पर स्वार्थी मनुष्य तो किसी को उपयोगी नही है । मरने के वाद तो उसके शरीर को जलाने या गाडने के सिवाय दूसरा कोई चारा ही नही रहता है । ऐसे भारभूत मनुष्य को हमारी उपमा नही घटती है । मनुष्य को हमारी उपमा देने में हमारा अपमान है ।

तव मैंने मनुष्य को वृक्ष की उपमा दी । वृक्ष ने भी उसी तरह अपना दावा पेश किया । वृक्ष छाया, पुष्प, फल देता है, पक्षी को आश्रय देता है, रोगी के लिए औषधि देता है । तो फिर निर्गुणी मनुष्य को वृक्ष की उपमा कैसे दी जा सकती है ?

गाय की उपमा देते समय गाय ने कहा—मै जगल की घास चर कर लोगो को दूध देती हू अपनी सतानो को आजीवन सेवा के लिये भेट करती हू, पर मरते समय या जव मै ऊव जाती हूँ यानी जव मेरे स्तनो से दूध वन्द हो जाता है तव मुझे कोई भर पेट चारा भी नही डालता है। मनुष्य तो बिलकुल स्वार्थी है । उसको मेरी उपमा कैसे दी जा सकती है ?'

कुत्ते की उपमा देते समय कुत्ते ने ऐतराज करते हुए कहा कि—'महाराज ! मै नमक हलाल हूं । घर की रक्षा करता हू । मनुष्य तो किसी के उपयोग मे आता ही नही है ।

तव मैने घास की उपमा देने को विचारा, पर इतने में घास भी बोल उठी कि 'मै तो चारा वनती हूँ, जिसको खाकर गाय दूध वनाती है और मनुष्य उसे पीता है । मै मनुष्य जैसी स्वार्थी नही हूँ ।

तव अन्त मे मैने निर्गुणी और चरित्रहीन मानव को राख की उपमा दी । राख ने भी ऐतराज करते हुए कहा–'मै वरतन साफ करती हू, अनाज मे मिल जाऊं तो उसे सडने से वचाती हू । निर्गुणी मनुष्य तो कितने ही टटे फिसाद पैदा करते हैं । उनको मेरे साथ कर मुझे नीचा मत दिखाओ ?'

अव शालिवाहन राजा को सवोधन कर कालिकाचार्य ने कहा कि–'महाराज ! विचार करने पर मुझे ज्ञात हुआ, कि

चारित्रहीन मनुष्य किसी भी उपमा के लायक नही है। वह जीवित भी मरे हुए के समान है।

उपरोक्त कहानी मे कल्पना होगी, पर यह वस्तु तो सत्य है, कि जो मनुष्य चारित्रशील नही है। वह जीता हुआ भी भली-भाँति जीता नही है। यानी मृतक तुल्य है।

चारित्र ही मनुष्य का जीवन है। इसको नष्ट कर देने वाला मनुष्य अपनी हर एक वस्तु को खो बैठता है। इस अंग्रेजी कहावत को नही भूलना चाहिये कि—

If wealth is lost nothing is lost
If health is lost something is lost
If character is lost everything is lost

मनुष्य धन खो देता है तो कुछ नही खोता, क्योकि वह वापिस पाया जा सकता है। यदि तन्दुरुस्ती खो देता है तो कुछ खो बैठता है, यह माना जा सकता है। लेकिन यदि मनुष्य ने चारित्र खो दिया है तो उसने अपना सर्वस्व खो दिया है। दुनिया मे सच्चा जीवन चारित्रशील व्यक्ति ही जीते हैं। भोगी, स्वार्थी और विषय-लम्पटी मनुष्य का जीवन निरर्थक है। जीवन जीने के लिये अभी विचारने का समय है। अधिक देर नही हुई है। आज भी विचार ले कि सच्चा जीवन कैसे जी सके?

चारित्र को बनाने के लिये शरीरबल, मनोबल, और बुद्धिबल की जरूरत रहती है। जिसका शरीर नीरोग, सशक्त होगा वही चारित्र को अच्छी तरह अमल मे ला सकेगा। जिसका शरीर निर्बल होता है उसके मन और विचार भी निर्बल होते हैं; जिससे वह कोई श्रेष्ठ कार्य नही कर सकता। निर्बलता एक बडा दोष है, जो सब दोषो का जनक है।

विवेकानन्द ने तो निर्बलता को मरण ही कहा है। देखिये उनके सूत्र वाक्य—

Strength is life, and weekness is death.

हमारे शास्त्रो मे भी शरीर के छह प्रकार के सहनन बताये है। लेकिन मोक्ष का अधिकारी तो वज्रऋषभनाराच सहननवाला यानी वज्र जैसे मजबूत शरीरवाला ही बन सकता है। इस पर से सिद्ध होता है, कि मोक्ष प्राप्त करने के लिए भी शरीर बल की अत्यधिक आवश्यकता है। शरीर बल अच्छा होगा तो मनोबल दृढ होगा, और उससे बुद्धि का विकास होगा और आत्मबल भी बढेगा।

शरीरबल के उपरात मनोबल और बुद्धिबल की भी आवश्यकता रहती है। शरीर पूर्ण नीरोगी और सशक्त हो, पर मनोबल यानी नैतिक हिम्मत और श्रद्धा नही हो तो अहिसा और सत्य के ताने-बाने से बुना हुआ चारित्र नही प्राप्त किया जा सकता है।

किसी भी कार्य की सिद्धि के लिये श्रद्धा की अति आवश्यकता है। वैज्ञानिको द्वारा की गई इतनी खोज देखिये, जो इनके मन मे श्रद्धा का अभाव होता तो इतनी खोज कभी नही हो सकती थी। परन्तु आज तो श्रद्धा के बदले तर्क को प्रथम स्थान मिला हुआ दिखाई दे रहा है, पर खरी बात यह है, कि श्रद्धा को रानी का पद और तर्क को सेविका का स्थान देना चाहिये। तर्क कुतर्क का रूप नही ले, यानी सत्य पर कायम श्रद्धा को नाश करने का काम नही करे। इस बाबत जागृत रहे कि तर्क का उपयोग सत्य श्रद्धा को दृढ करने मे होना चाहिए। जो सिद्धि श्रद्धा से प्राप्त की जा सकती है

वह तर्क से कभी प्राप्त नही की जा सकती ।

एक कार्य ऐसा है, कि जो हथौडा द्वारा ही किया जा सकता है। कोई भी शक्तिशाली मनुष्य हथौड़ा का काम हाथ से नही कर सकता । करता है तो उसके हाथ को चोट पहुंचेगी ही । इसी तरह श्रद्धा का काम तर्क से लेने पर परिणाम मे हानि होगी ही । चैतन्य तक जड वस्तु नही पहुच सकती है । तर्क जड़ है । वहाँ इसका काम नही है । वहाँ तो श्रद्धा ही काम कर सकती है । आज के इस तर्क प्रधान युग मे श्रद्धा को जागृत करने की आवश्यकता है।

आज की हमारी शिक्षा पश्चिम से आई है जिसमे प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय के ही सस्कार उतरे हुए है। प्रोटेस्टेन्ट विचार धारा तर्क प्रधान होने से हमारा शिक्षित वर्ग भी तर्क प्रधान हो गया है । तर्क के पीछे श्रद्धा नही होती है इससे उनके जीवन मे स्थिरता भी नजर नही आ रही है ।

शरीरवल और मनोवल के साथ-साथ बुद्धिबल यानी सारासार विवेक शक्ति का सुमेल होना चाहिये । विवेक के विना शरीवल साधक के वदले वाधक हो जाता है । विवेक के विना श्रद्धा अन्ध—श्रद्धा हो जाती है ।

शरीरवल, मनोवल और बुद्धिवल इन तीनो साधनो द्वारा चारित्र को जीवन मे स्थान देने से खरा जीवन जीया जा सकता है ।

जिसके शरीर मे वल, मन में धैर्य, मस्तक मे शान्ति, आत्मा मे तेज और हृदय मे धगश है उसका जीवन कलामय जीवन कहा जा सकता है । हमको भी ऐसा जीवन जीकर सच्चे शब्दों मे अपने जीवन को सार्थक करना चाहिये ।

४४ :

प्रेम और प्रतिभा

समस्त ससार पर प्रतिभाशाली व्यक्तियो का ही साम्राज्य होता है। लेकिन इससे यह नही समझ लेना चाहिये कि जिनका साम्राज्य होता है वे प्रतिभाशाली हैं। कोई सत्ताधीश या सेनापति हो जाने से ही प्रतिभाशाली नही है। वे तो केवल मानव शरीर पर ही अपनी सत्ता का बल प्रयोग कर सकते है। उनसे मनुष्य डरते हैं। इससे वे प्रतिभाशाली नही, लेकिन भयंकर है। सच्चे प्रतिभाशाली व्यक्तियों से कोई भयभीत नही होता है और वे ही प्रजा के हृदयो पर अपना साम्राज्य जमाते हैं। दुनिया महावीर और कृष्ण की जय वोलती है, गांधी और जवाहर की जय वोलती है, लेकिन क्या कभी किसी शहनशाह-राजा-महाराजा की जय वोलते हुए भी सुना है ? इससे स्पष्ट है, कि प्रजा के हृदयासन पर कौन विराजमान होता है—सत्ताशाली या प्रतिभाशाली ?

पशुवल से दुनिया को वश मे करने वाले अधिक है लेकिन प्रेम से प्रजा के हृदय को जीतने वाले ही सच्चे प्रतिभाशाली है।

प्रतिभा यानी आत्म-ज्योति, अन्तर ज्योति, ज्ञान का तेज-दिव्य प्रकाश यानी अपने मे समाई हुई आत्म-ज्योति। ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्तियो के सम्मुख सत्ताधीश मानवों का मस्तक

सबसे बडी सल्तनत भी जो नही कर सकती, वह उन्होने कर दिखाया। कोई भी सत्ता गुण्डो को मार सकती है, पर उनका मन पवित्र बना कर हथियार छुडवा देने का कार्य किसी प्रचड सत्ता से भी नही हो सकता। गाधीजी ने यह कार्य किस शक्ति से किया, कहने की ज़रूरत नही रहती।

महात्मा ईसु ने अपने गिरि प्रवचन मे उपदेश दिया है, कि 'अपने शत्रु से प्रेम करो, शाप देने वाले को आशीर्वाद दो, पापियो की तरफ तिरस्कार की दृष्टि से नही, पर करुणा की नजर से देखो। जुल्मी का बुरा नही, भला चाहो।'

ता० २९–१–४८ यानी गाधीजी के अवसान के एक दिन पूर्व एक अँग्रेज महिला ने महात्माजी से पूछा कि—'अमेरिका को क्या आप ऐटम बम नही बनाने की सलाह देते हैं? गाधी जी ने कहा—बेशक, आज की स्थिति ऐसी है कि युद्ध का अन्त बडी आपत्ति मे आ गया है। युद्ध मे विजयी होने वाले पक्ष भी ईर्षा और सत्ता की लोभ-भावना के आगे हारे बैठे है। तृतीय महायुद्ध के लिये लोगो का मानस तैयार करने का काम शुरु हो गया है और यह युद्ध पिछले युद्धो से अधिक भयकर सिद्ध हो, ऐसी पूरी सभावना है।'

'अहिंसा ऐटमबम से भी अधिक शक्तिशाली अस्त्र है। अरे, खुद हीरोशीमा जिस पर कि अमेरिका ने ऐटमबम का प्रयोग किया, उस शहर के लोगो ने अगर अपने दिल मे ईश्वर की प्रार्थना को स्थान दिया होता और अपने पर जुल्म करने वाले के प्रति शुभेच्छा की भावना रख कर हज़ारो की सख्या मे भी मृत्यु के मुख मे चले गये होते तो मानो ऐसा चमत्कार हो गया होता कि जिससे सारी विषम परिस्थिति का ही इष्ट

रूपान्तर हो जाता।'

महात्मा जी के उपरोक्त लेखन की तरह अन्य कई लेखनो और उपदेशो से यह स्पष्ट दिखाई देता है, कि निर्वैर बनकर प्रेम और शुभेच्छा से शत्रु को भी मित्र बनाया जा सकता है। और ऐसा उन्होने करके भी बता दिया है। अफ्रिका की जेल में से जनरल स्मट्स को अपने हाथो से बनाई हुई एक चप्पल भेट भेजी और प्रेम की इस छोटी सी कृति से, जिससे सम्मुख गाधीजी लडते रहे थे और जो जनरल स्मट्स महात्मा जी को अपना विरोधी समझता था, वही विरोधी अपना विरोध छुडाकर पुजारी बन गया। महात्मा जी की ७० वी वर्षगाँठ के समय मार्शल स्मट्स ने इस प्रसगानुकूल जो लिखा है, वह हर्षोद्रेक के आँसू लाता है और अन्तरमल को धोकर पुनीत कर देता है।

गाधी जी के अवसान के बाद जनरल स्मट्स उनके प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए कहता है—'गाधी जी की हत्या से मुझे गहरा शोक हुआ है। गाधी जी मेरे जमाने के महापुरुष थे और इनके साथ मेरे ३० वर्ष के परिचय ने, हमारे बीच मतभेद होते हुए भी, उनके प्रति मेरी सम्मानवृत्ति ऊँची से ऊँची ही बनाई थी। मानवो के बीच मे से यह मानव श्रेष्ठ चला गया है।' यह अजलि स्पष्ट रूपेण बताती है कि विरोधी शक्ति भी प्रेम से कैसे वशीभूत हो जाती है।

प्रेम शब्द मन को बडा प्रिय लगता है। अगर अहिंसा और प्रेम का एक ही अर्थ होता हो तो यह प्रेम शब्द मन को अत्यधिक रुचिकर हो जाता है। अहिंसा मे भारी प्रतीत होती है, पर प्रेम फूल जैसा हल्का ज्ञात होता है। लेकिन इस प्रेम

का अर्थ समझने मे हम प्राय. भूल कर जाते है। ममता या आकर्षण को कई बार हम प्रेम मानकर भूल कर देते हैं। विशुद्ध प्रेम स्वार्पण में निहित है, जो कि समझ-बूझकर किया गया हो। कुछ लोगो की यह मान्यता है कि प्रेम का जागृति या विवेक बुद्धि के साथ कोई सम्बन्ध नही है, लेकिन यह उनकी भ्रान्त धारणा है। विवेक-बुद्धि मिश्रित स्वार्पण मे ही खरा प्रेम समाविष्ट रहता है।

प्रेम की पहचान हम तीन तरह से कर सकते है—भक्ति, मैत्री और करुणा से। महापुरुषो और अहिसादि सिद्धान्तो के प्रति प्रेम भक्ति के नाम से जाना जाता है। समान व्यक्तियो का प्रेम मैत्री कहा जाता है और पीडित तथा दलित व्यक्तियो के प्रति प्रेम करुणा के नाम से वर्णित किया जाता है। पर इन तीनो रूपो मे प्रेम का ही अखण्ड झरना झरता रहता है। इस प्रकार इस त्रिविध प्रेम की साधना से ही मनुष्य प्रतिभाशाली बन सकता है।

प्रेम के ये तीनो रूप अविभाज्य है। जिसमे मैत्री और करुणा न हो, और यदि वह ईश्वर-भक्त होने का दावा करे तो समझ लेना चाहिये, कि उसमे भक्ति नही, पर भक्ति का आभास मात्र है। जो निर्वैर होकर अपने भाइयों को नही चाह सकता हो वह ईश्वर को कैसे चाह सकता है? जिसको पीडितो के प्रति अनुकम्पा या करुणा नही उसके हृदय मे ईश्वर-भक्ति किस भाँति प्रकट हो सकेगी? मानव-प्रेम द्वारा ही प्रभु-प्रेम प्रकट होता है और मानव-सेवा द्वारा ही प्रभु की सच्ची भक्ति हो सकती है।

श्रीमद्भागवत मे कहा है कि—

"अह सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थित· सदा।
तमवज्ञाय मां मर्त्या· कुरुतेऽर्चा विडम्बनम्।"

मै प्राणी मात्र मे उसकी आत्मा-रूप मे सदा रहता हू। उसकी अवज्ञा करके मानव यदि प्रभु-पूजा करता है तो वह पूजा नही पूजा की विडम्बना मात्र है।' मनुष्य भूख से मरता है, गाय आदि पशुओ का घात होता है, ऐसी स्थिति मे भगवान् की मूर्ति का दर्शन करने मे और उसके आगे भोग धरने मे तथा अन्नकूट खडकने मे केवल भगवान् की हँसी-मजाक ही है।

भगवान् बुद्ध के जीवन का एक प्रसग है। एक समय भगवान् बुद्ध और भिक्षु आनन्द ने रोग से पीडित और मल-मूत्र से भरे हुए एक भिक्षु को देखा। उसकी सेवा-शुश्रूषा मे अन्य कोई भिक्षुक नही था। भगवान् बुद्ध और आनन्द भिक्षु ने उसे स्वच्छ किया और स्वच्छ बिछौने पर दोनो ने उसे उठाकर सुलाया। इस प्रसग को अनुलक्षित कर भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओ से कहा—'उस विहार मे पडे हुए भिक्षु की कोई सेवा क्यो नही करता है? जिसको मेरी सेवा करनी हो वे रोगी तथा पीडितो की सेवा करे।' कहने का मतलब यह है कि करुणा के बिना सच्ची भक्ति सभव ही नही है।

इस प्रकार महान् सिद्धान्तो के प्रति आदर, शत्रुओ के प्रति मैत्री, पापी और पीडितो दलितो और दुराचारिओ के प्रति करुणा, यह त्रिविध प्रेम ही प्रतिभा को पैदा करता है।

प्रकाश के आते ही जैसे अन्धकार अदृश्य हो जाता है, वैसे हृदय-मदिर मे प्रेम का प्रादुर्भाव होते ही हिंसा, द्वेष और वैर का तिमिर नष्ट हो जाता है। कबीर जी ने एक

स्थान पर कहा है, कि मानव हृदय पर भूलो तथा दोषो के ताले लगे हुए हैं, जिनको खोलने की चाबी प्रेम है। प्रेम की चाबी से जैसे ही ताले खुले कि वैसे ही अनन्त शक्ति का खजाना बाहिर आ जाता है ।

ऐसे प्रेम का मूल, त्याग और समर्पण मे है। दूसरो के लिये सर्वस्व की कुर्बानी कर देना ही इसका सूत्र है। ऐसे प्रेम को अपनाने से वह प्रतिभा प्राप्त की जा सकती है, जो प्रजा के हृदय पर साम्राज्य करती है। हम भी ऐसे प्रेम को अपनाने मे प्रयत्नशील बने, इसमे ही अपने जीवन की सफलता है।

: ४५ :

हार या जीत

जीत एक ऐसा प्रिय शब्द है जो दुनिया मे सबको प्रिय है। संसार की सभी डिक्सनरियो और शब्द-कोषों मे से मनुष्य को यदि अपने प्रिय शब्द की पसदगी के लिये कहा जाय तो वह शब्द 'जीत' है। राजा या प्रजा, त्यागी या भोगी चाहे जो हो सभी मनुष्य अपने जीवन को विजयी बनाना चाहते हैं। कोई भी मनुष्य ऐसा नही होगा जो स्वेच्छा से हार को कबूल करे। मनुष्यो के व्यवहार सदा अपनी जीत को लक्ष्य मे रखकर ही होते हैं।

सारी दुनिया मे लगभग २ अरब मनुष्य कहे जाते हैं। उन सब मनुष्यो में जीत विषयक गैर समझ पैदा हुई दिखाई देती है। शासक समझता है कि अधिकाधिक देशो पर अधिकार करने मे मेरी जीत है। व्यापारी समझता हैं, कि दुनिया की सारी दौलत मेरी तिजोरी मे आ जाय तभी मेरी फतह है। शत्रु समझता है, कि सम्पूर्ण शत्रुओ का सहार कर विजय का सेहरा मेरे सिर पर बधे तभी मेरी जीत है। इस तरह की मिथ्या-भ्रान्ति आज सारी दुनिया मे फैली हुई हैं। कोई लाखों मनुष्यो का खून कर विजय प्राप्त करे तो क्या यह उसकी जीत मानी जा सकती है ? कोई हजारो गरीबो का

शोषण कर अपनी तिजोरियाँ भरले तो क्या यह उसकी फतह कही जा सकती है ?

हम जय और पराजय किसे कहे ? इसको समझने के लिये एक थर्मामिटर है और वह यह हो सकता है कि 'जिसने नीति पूर्वक व्यवहार चलाकर विकास किया हो, प्रलोभन तथा लालच से जो ठगाया नही गया हो, जो हिंसा तथा द्वेष के घेरे मे न फँसा हो, जिसका यह दृष्टि-बिन्दु हो वही विजयी है, उसी की जीत खरी जीत है। बाकी हिंसा से मिली हुई सत्ता और शोषण से प्राप्त हुआ धन न तो जीत ही है और न है फतेहमदी, वह तो निखालस हार ही है।

हमारे जीवन मे शाक-भाजी या दातुन खरीदने जैसे साधारण कार्य से लगाकर बडे-बडे युद्ध तक के महान् प्रसगो तक हमको यह वस्तु समझने की है, कि हार क्या है और जीत क्या है ? दांतुन बेचने वाले से चार पैसे का दातुन तीन पैसे मे खरीद कर मनुष्य खुश होता है और ऐसा कर उसने कुछ बचाया है—अनुभव करता है। लेकिन विशुद्ध-द्रष्टा तो कहेगा कि उसने बचाया कुछ नही, खोया बहुत है। एक पैसे को बचा-कर उसने अपनी अमूल्य मानवता खो दी है। इसमे वह जीता नही किन्तु हार की थपड से परास्त ही हुआ है। शाक-भाजी के उपरान्त क्या हरा धनिया और हरी-मिर्च को मुफ्त मे माँगने वाला विजयी कहा जायगा या देने वाला ? एक पैसा बचाने वाला विजयी कहा जायगा या एक पैसा कम करने वाला ? यही बात हर एक प्रसंग पर विचार करने योग्य है।

बाह्य दृष्टि से जय और पराजय चाहे जैसे मान्य हो पर अन्तर दृष्टि से तो जिसने हर हालत मे भी मानवता का खून

नही किया है—त्याग नही किया है वही विजयी है। बडे-बडे सग्रामो मे लाखों का खून कर सत्ता प्राप्त करने वाला विजयी नही परन्तु जो कसौटी के प्रसग पर भी मानवता का बिन्दुकरण ढलने न दे, वही सच्चा विजेता है। फूल को अपने कठोर हाथो से मसलने वाला मनुष्य विजेता है, कि मसलाते-मसलाते भी वातावरण को सुरभित करने वाला फूल विजयी है? इसी तरह जिस पर जुल्म होते हैं वे सचमुच हारे हुए नही है पर जुल्म करने वाले ही हमेशा के लिये हारे हुए है। जो ठगा जाता है वह पराजित नही पर जो ठगते है वे ही पराजित है। शोषित नही पर शोषण करने वालो की ही महान् हार है। जय या पराजय, हार या जीत यह कोई बाह्य वस्तु नही पर अन्दर की ही चीज है।

मानव-हृदय मे सत और असतवृत्ति का युद्ध अनादि काल से चला आ रहा है। जैन परिभाषा मे इसको स्वभाव और विभाव का युद्ध कहा जा सकता है। गीता मे इसे दैवी-सम्पत्ति और आसुरी सम्पत्ति के नाम से गाया है। इस अन्दरूनी युद्ध के ऊपर ही खरी हार-जीत की बाजी रही हुई है।

मानव-हृदय मे चलने वाले इन सत् और असत् के झगडो के कई रूपात्मक वर्णन आते है। देव और दानव, प्रभु और शैतान, राम और रावण, कृष्ण और कस, महावीर और गोशाला, महात्माजी और जिन्ना इस तरह बाह्य की तरह अन्दर भी सत् असत् के झगडे चला करते हैं।

बाह्य दृष्टि से लाखो मनुष्यो का खून बहाने वाला विजयी सुभट गिना जाता है जबकि अन्तर दृष्टि से लाखो मनुष्यो के

कल्याण के लिये अपनी आहुति देने वाला वीर शहीद ही विजेता कहा जा सकता है। मारने वाला नही पर परम लाभ के लिये मरने वाला ही विजेता है।

ईशुखिस्त का जीवन विजयी जीवन कहा जा सकता है। भगवान् महावीर और बुद्ध का जीवन विजयी जीवन कहा जा सकता है। वे जीये परन्तु दूसरो की सेवा के खातिर कल्याण के महान् पथ पर गये और दुनिया को भी उसके लिये रास्ता वता गये।

सत्य, न्याय, नीति, परोपकार, सेवा आदि भावनाओ मे जीत समाई हुई है, न कि असत्य, अन्याय अनीति और शोषण मे।

एक समय हिटलर ने लाखो का सहार कर युरोप की भूमि को रक्तरजित वना दी थी। उस समय लोगो ने उसे विजेता के रूप मे देखा, पर आज उसका क्या मूल्य है ? आज उसे मनुष्य धिक्कारने लगे है। लाखो का प्राण लेने वाला विजयी नही पर लाखो के लिये वलिदान होने वाला विजयी है यह सत्य आज महात्मा गाँधी जी और हिटलर के वीच हमारे मे छुपा हुआ नहीं है। (वावू गनु की वात आपने सुनी होगी ? जिसने अपने देश के सिद्धान्तो का पोषण करने के लिये अपना वलिदान दिया—वही सच्चा विजयी कहा जा सकता है)।

एक अंग्रेज तत्वज्ञ ने कहा है 'कि 'जिन-जिन प्रवृत्तियो से ईश्वर खुश होता है वह जीत है और वाकी की हार का रूप। एक मनुष्य युद्ध मे लाखो का खून वहाता है और दूसरा मनुष्य रोते हुओ के आँसू पोछता है तो इसमे पहला पराजित

है और दूसरा विजयी । हमे भी अपना जीवन विजयी बनाना है न कि पराजित ।

अनाज की कमी के समय लोग सग्रह करने लगते है । कपडा नही हो तब श्रीमत अपनी पेटियो पर पेटियाँ भरना शुरू करते हैं । इसमे गरीबो का शोषण नही तो और क्या है ? शोषक वर्ग कभी निर्भय नही रहता । उसका दिल अन्दर ही अन्दर कापा करता है कि कही मेरा सग्रह किया हुआ माल पकडा न जाय । यह भय उसके दिल मे होगा ही और यही भय उसके हार की निशानी है । दूसरो के लिये कुर्बानी करने वाला सच्चा विजयी है । कुछ अर्से पहले विहार मे जब भूकम्प हुआ था अपने कई भाई जापान मे भी थे । उन्होने विहार के लिये एक फड करने का विचार किया । जिसमे एक करोडपती ने ३, ४ हजार रुपये लिखाये और एक गरीब ने अपनी शक्ति से बाहिर की बात होते हुए भी अपनी सारी सम्पत्ति जो कि १२५०) रु० की थी, लिखा दी । पहले की अपेक्षा दूसरे की रकम तो थोडी है पर फिर भी जीत तो इसी की है न कि करोडपती की ।

आज का हमारा जीवन और जीवन-व्यवहार इतने असत्य और अप्रिय विचारो से भर गया है कि आँखो के होते हुए भी हमे यह नग्न सत्य दिखाई नही देता है ।

हिन्दी मे कहावत है कि—'जैसे को तैसा'

अग्रेजी मे कहावत है कि—Tit for tat

सस्कृत मे कहा है कि—'शठ प्रति शाठ्यम्'

गुजराती मे भी है कि—सेर ऊपर सवासेर'

इस प्रकार की गिनती वाला आज का मानव समाज विप-

रीत दिशा की ओर चल रहा है। क्रोध को क्रोध से शमन करना और आग को ईंधन से आग से बुझाना, क्रोध और आग को द्विगुणित करना नही तो और क्या है ? लेकिन आज ऐसा खोटा व्यवहार हो रहा है।

महात्मा गाधीजी ने तो उपरोक्त सस्कृत वाक्य ही पलट कर—'शठ प्रति सत्य समाचरेत्' दुष्ट के साथ भी सज्जनता दिखाओ वह सज्जन बनेगा, बेईमान के सामने सरल रहो वह सरल बनेगा—कहा है।

हार और जीत के शब्दो पर ध्यान देते हुए हमारा ध्यान एक तीसरे शब्द पर केन्द्रित हो जाता है और वह शब्द है 'युद्ध' क्योकि युद्ध के विना हार या जीत सभव ही नही है।

युद्ध दो तरह के हैं—एक आसुरी युद्ध जिसमे पाशविक वल रहा हुआ है, जिसकी जीत भी हार ही है। दूसरा है दैवी, जिसमे अपनी रक्षा के साथ ही साथ दूसरे का भी सरक्षण है। इनके सिवाय वाह्य और आतरिक, लौकिक और लोकोत्तर युद्ध भी है।

मानव का जीवन एक सग्राम ही है। तीर्थंकरो ने भी कर्मों के साथ लड कर विजय प्राप्त की है। यह आन्तरिक युद्ध है। क्रोध के सामने क्रोध करना यह आसुरी युद्ध है और क्रोध का क्षमा से मुकावला करना दैवी युद्ध है। 'सेर पर सवा सेर' का सच्चा मतलव यही है, कि क्रोध करते हुए व्यक्ति पर भी हम सवाया प्रेम प्रदर्शित करें। यानी वह एक रतल क्रोध करे तो हम उस पर सवा रतल प्रेम की वृष्टि करें, तभी उसका क्रोध शान्त किया जा सकता है। दैनिक जीवन की यह आवश्यक वात हम भूल जाते हैं जो निश्चय ही

लज्जास्पद समझनी चाहिये।

आज की दुनिया मे मनुष्य अपने स्वार्थ की खातिर दूसरे का सर्वस्व हडपने मे भी सकोच नही करता है। हम कायर है, पराजित हैं, गुलाम हैं और आत्मिकता से भी गुलाम हैं। हमारे ऊपर आज वासनाएँ राज्य कर रही है। वासना-वृत्ति पर विजय कर उसके फदे मे से अलग हो तभी सच्ची आजादी प्राप्त की—कहा जा सकता है।

स्वामी राम जव अमेरिका मे थे तव सब को इनकी सत्य-वाणी वड़ी प्रिय लगी। अमेरिका के प्रेसिडेन्ट ने उन्हे एक चिट्ठी लिखी और 'जो चाहिये सो देने को कहा।' राम स्वय विजेता थे। उसको वासनाओ की गुलामी प्रिय नही थी और न थी इच्छाओ की पराधीनता। वे स्वतत्र और आजाद थे। उन्होने पत्र का जवाव देते हुए अमेरिका के प्रेसिडेन्ट को लिखा—

'राम शहेनशाह का भी शहेनशाह है।'

वस्तुत. वह शहेनशाह का भी शहेनशाह है जिसने अपनी वृत्तियो पर काबू पा लिया है, जिसने अपनी इन्द्रियो के घोडों को वश मे कर रखा है और जिस पर इच्छाओ का नही, पर जो इच्छाओ पर अपना राज्य करता है।

आपको भी अपना विजयी जीवन जीना हो, कायरता अपेक्षित न हो तो कमर कसो और आगे वढो। अपने ऊपर शासन करने वाली विषय-वासना को वश मे करो—उसकी पराधीनता दूर करो। त्याग, सतोष, क्षमा, योग, वलिदान इनको साथी वनाओ तो तुम्हारा जीवन सुखी होगा—स्वतत्र और विजयी होगा।

आप तभी मुक्त पछी की तरह मुक्ति-पथ मे विचरते दिखाई देगे।

वासना का आज भी वह काली नाग बैठा हुआ है। हम एक वासना का त्याग करते है तो दूसरी खडी होती है और तीसरी। सिनेमा छोडते है तो नाटक की याद आती है। ऐसा वासनारूपी सहस्रफन वाला नाग आज भी हमारे हृदय मे बैठा हुआ है। और हमारे हृदय को खराव कर रहा है। कृष्ण की जयन्ती अगर सचमुच हमे मनानी है तो उनके जीवन के प्रसग को सूक्ष्म दृष्टि से देखना चाहिये तभी उसकी सफलता है। हृदय मे रही हुई वासना का दमन करना ही काली का मथन करना है और यही कृष्ण जयन्ती का महत्वहै।

कृष्ण ने काली का दमन करते हुए वाँसुरी अपने हाथ मे रक्खी थी और उसे वजाने हुए उसका दमन किया था। इस पर एक कवि को ईर्षा हुई और उसने वाँसुरी से पूछा—तू इतनी अधिक प्रिय कैसे वनी ?

वाँसुरी ने जवाव दिया—मै सिर से पैर तक खाली हूँ। मुझ मे स्वार्थ की तनिक भी मात्रा नही है अत मुझ से मिठास निकलता है। वही सब का मन मेरी तरफ खीच लेता है। मानव को भी मृदु वनने के लिये वाँसुरी की तरह निस्वार्थ हो जाना चाहिये। तभी वह वासना के सहस्रफन वाले नाग को जीत सकता है।

महापुरुषो की जयन्तियाँ सफल करने का दूसरा मार्ग यह है कि उनके सिद्धान्तों को जीवन मे उतारा जाय। कृष्ण ने गीता का उपदेश दिया था। उस गीता का केवल शब्दो से अर्थ कर लेना कोई महत्त्व नही रखता है, जव तक कि उसे हृदय की गुफा मे नही उतार लिया जाय। गीता का उपदेश श्री कृष्ण ने अर्जुन को कुरुक्षेत्र मे दिया था और वही उसे

समझाया भी था। आप सब कहेगे कि बम्बई के आदमी कुरुक्षेत्र मे कहाँ जावे ? और कब वे गीता का रहस्य समझे ? लेकिन कुरुक्षेत्र तो एक द्रव्य शब्द है। सस्कृत मे कुरु का अर्थ करना होता है और इस तरह कुरुक्षेत्र का पूरा अर्थ कर्त्तव्य की भूमि होता है। कर्त्तव्य के क्षेत्र मे अनासक्त होकर अपना कार्य किये जाना, यही कुरुक्षेत्र का अर्थ है।

महात्माजी जब साबरमती के आश्रम पर मकान बना रहे थे तब गुजरात का एक विद्वान् महात्मा जी के पास आया और बोला—गीता का गूढार्थ समझने के लिये मुझे आपकी सेवा मे रहना है, अत मेहरबानी कर कही स्थान दीजियेगा। महात्माजी ने रावजी भाई को—जिनकी देखरेख मे मकान का काम हो रहा था, बुलाया और कहा—ये भाई भी यहाँ रहना चाहते है, अगर तुम्हारे पास कुछ काम हो तो इन्हे बताओ। वह विद्वान् पुरुष तो गाँधीजी के पास से कुछ गीता सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने आया था, पर जब उसे ईंटे गिनने का काम सौंपा गया तो वह तीन चार दिन मे ही ऊब गया। विवश हो उसने रावजी भाई से कहा—भाई, यह तो मजदूर का काम है, मै तो यहाँ गीता का गूढार्थ समझने आया हू। अत महात्माजी से कह कर इसकी कोई दूसरी व्यवस्था कराओ तो बडा अच्छा हो। रावजी भाई ने उसकी बात महात्माजी से कही, तो महात्माजी ने उस विद्वान् से कहा—भाई, यही गीता का अर्थ है—नि स्वार्थ भाव से काम करते रहना ही गीता का गुढार्थ है। कहने का मतलब यही है कि कृष्ण की गीता का अर्थ बैठे-बैठे नही, पर कुरुक्षेत्र यानी कर्तव्य भूमि मे ही मिलने वाला है। इस प्रकार हमे उनके

उपदेश को पालन करते हुए अपने-अपने कर्तव्य-क्षेत्र मे लग जाना चाहिये। इसी मे कृष्ण गीता का सार रहा हुआ है। कृष्ण ने अपने कर्तव्य मे लगकर ही उस समय की प्रजा को षड्-रिपुओ से मुक्त किया था। इसी से प्रजा उन पर खुश हुई और उनकी जन्माष्टमी मनाई। लेकिन सवाल आज यह है, कि हम उनकी जन्माष्टमी क्यो मनावे ? इसकी हमे क्या जरूरत है ? इसका उत्तर यही है, कि हम भी कृष्ण की तरह अपने हृदय मे रहे हुए षट्-रिपु काम-क्रोध, लोभ, मद, मत्सर-मोह को जीते और अपने कुरुक्षेत्र मे विजयी बने। अत आज भी कृष्णाष्टमी मनाने की जरूरत है और इसीलिये मनाई भी जाती है।

आज कृष्ण को यदि जन्म देना है तो आप अपने हृदय मे उसे पैदा करे और हृदय मे रहे हुए षट्रिपुओ का दमन करे तभी यह कृष्णाष्टमी सफल कही जा सकेगी। गीता मे कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्।

'जब-जब धर्म का नाश होता है तब-तब मै अवतार लेकर उसका रक्षण करता हूँ। वह अवतार हमारे हृदय मे होना चाहिये। महावीर का जन्म तो हुआ, पर वैसे महावीर जब तक हमारे हृदय मे नही जन्मे तब तक हमारे हृदय मे धर्म का सस्थापन कैसे हो सकता है ? हम कहते तो है—केवली पन्नतो धम्मो,' पर जब तक ऐसा धर्म हमारे हृदय मे स्थापित न हो तब तक कैसे हम उसकी स्थापना कर सकते है। महा-पुरुष जैसा पुरुषार्थ हमारे हृदय मे भी उत्पन्न होना चाहिये।

उक्त श्लोक पर—यदा यदा हि धर्मस्य—जब-जब धर्म का नाश होता है तब-तब मै अवतार लेता हूँ—एक कवि कल्पना करता है, कि क्या आज भारत मे धर्म का नाश नही हो रहा है ? भाई-भाई आज भारत मे लड-झगड रहे है, चारो तरफ अधर्म हो रहा है अत' अब कृष्ण के ऊपर फरियाद क्यो नही करनी चाहिये ? यही सोच कर स्वामी श्रद्धानन्द मर कर स्वर्ग मे गये और उन्होने वहाँ जाकर इन्द्र की अदालत मे कृष्ण पर मुकद्दमा दायर किया। इस फैसले को सुनने के लिए देव कन्यायें भी आई और सारा हाल दर्शको मे खचाखच भर गया। ऋषि मुनि भी आकर एक तरफ बैठ गये। दूसरी तरफ श्रद्धानन्द बैठे-बैठे अपने मुकदमे पर सोच विचार कर रहे थे, कि इतने मे कृष्ण भी आये और यथा स्थान पर बैठ गये। यथा समय कार्यवाही शुरू हुई और स्वामी श्रद्धानन्द ने खडे होकर कहा—मैने धर्म के खातिर अपने प्राणो को न्योछावर किया है अत मै हिन्दू समाज की एक धार्मिक फरियाद यहाँ पेश करना चाहता हू। हिन्दू समाज की यह फरियाद है कि कृष्ण जब द्वारिका मे रहते थे तब इन्होने 'भक्त वत्सल' का झूठा विशेषण धारण किया था। अत इनके खिलाफ ही मेरी यह फरियाद है। जब ये भारत मे जन्मे थे तो इन्होने प्रजा को दुष्ट राजाओ के हथकण्डो से बचाया था। अर्जुन को उपदेश देते समय कुरुक्षेत्र मे कहा था कि जब-जब धर्म की हानि होती है तब-तब मैं आता हू ऐसा उस समय विश्वास दिलाया था। लेकिन अब तक कृष्ण महाराज ने अपने वचन का पालन नही किया और हिन्द मे आये नही अत अब उन पर वारन्ट निकाला जाय और उन्हे हिन्द में भेजा जाय। स्वामी श्रद्धा-

नन्द की वात सुनकर इन्द्र ने कृष्ण से कहा—तुम्हारा वकील कौन है ? कृष्ण ने उत्तर दिया—मैं ही अपना वकील हूँ। तब इन्द्र ने कहा–स्वामी श्रद्धानन्द, तुम्हारे ऊपर विश्वासघात का आरोप लगाते हैं। क्या यह सच है ?

कृष्ण ने कहा–हाँ, यह सच है, कि मैंने अपना वचन दिया था, पर मैंने विश्वासघात किया यह सच नही है। आज हिन्दुस्तान मे नन्द, यशोदा, देवकी और वासदेव कहाँ है, जिनके घर मे मै जन्म धारण करूँ ? आज देश मे भक्त कहाँ है ? मै किस के घर जाऊँ और अपनी बाँसुरी वजाऊँ ?

स्वामी श्रद्धानन्द ने कृष्ण की इस दलील का उत्तर देते हुए कहा—मेरे जैसे धर्मवीर आज भारत मे भरे पडे है। फिर कृष्ण कैसे कहते हैं, कि वहाँ धर्मवीर नही है ?

कृष्ण ने कहा—तुम्हारे जैसे धर्मवीर तो अब यहाँ आ गये है, वहाँ अब कौन रहा है ?

स्वामी श्रद्धानन्द ने कहा–मेरे जैसे धर्मवीर अब भी भारत मे मौजूद है। अगर अब भी कृष्ण वहाँ जाय तो मै उन्हे इनके योग्य भूमिका तैयार करने का आदेश करूँगा।

कृष्ण ने कहा—स्वामी श्रद्धानन्द अपने जैसे धर्मवीरों के होने की वात कहते है पर मै उन्हे यह स्पष्ट कह देना चाहता हूँ, कि मैने अपना एक प्रतिनिधि हिन्द मे भेजा था। जिसने वहाँ जाकर मेरे निष्काम कर्म योग का सन्देश सुनाया था। लेकिन मेरा वह प्रतिनिधि वहाँ गोली से उडा दिया गया। इस प्रकार जव तुम मेरे उस सन्देश-वाहक को भी अपने वीच नही रख सके तो क्या तुम मुझे अपने वीच रख सकोगे ? तुम कहते हो कि मै अव भारत मे जन्म लूँ पर क्या ऐसी स्थिति

मे जन्म लूँ ? मेरा प्रतिनिधि था मोहनदास करमचन्द गाँधी। जब तुम उसे भी नही रख सके तो मै कैसे जन्म लूँ ? मैने अपने पाँच मित्रो-पाँडवो को भी हिन्द मे भेज रखा है। अब्दुल गफ्फार खाँ को धर्मराज के रूप मे भेजा है। पठान कौम मे जन्मा हुआ मानव जिसने खूखार जीवन मे पैदा होकर भी अहिंसा का पालन किया, क्या वह धर्मराज नही है ?

जवाहरलाल नेहरू के रूप मे मैने अपने परम भक्त अर्जुन को भेज रखा है। उनकी आज्ञा को तुम्हारी प्रजा कितना मान देती है ?

वल्लभ भाई को मैने भीम के रूप मे भेजा है और राजेन्द्र बाबू को नकुल और मौलाना आजाद को सहदेव के रूप मे भेजा है। लेकिन जब तुम आज इन पाँच मित्रों के आदेश का पालन भी नही करते हो तो क्या मै अपना अपमान कराने के लिये वहाँ आऊँ ?

जब श्रीकृष्ण ने स्वामी श्रद्धानन्द से इस प्रकार कहा तो इनका उनके पास क्या जवाब था ? हिन्दुओ को ही अब तो समझना है, कि अर्जुन जैसे जवाहरलाल और धर्मराज जैसे अब्दुल गफ्फार खाँ को हम सन्मानित नही करे तो क्या कोई दूसरा महापुरुष हमारी इस भारत भूमि पर आना चाहेगा ?

फ्रास मे रोम्या रोला नामक एक बडा दार्शनिक विद्वान् हो गया है। उसने कहा है—'सैकडो वर्षो तक हमने इन्तजार की कि कोई महापुरुष जन्मे और वह जब जन्मा तो हमने उसे फांसी पर लटका दिया।'

बन्धुओ ! जब तक हमारी भूमिका तैयार नही होगी तब तक याद रखिये कोई भी महापुरुष जन्मने नही हैं, जन्मते भी

हैं तो जनता उनका उपयोग नही, दुरुपयोग ही करती है।

श्रीकृष्ण की बाते सुनकर स्वामी श्रद्धानन्द ने कहा—मै हिन्द के लोगो को सदेश देता हूँ, कि वे तुम्हारे प्रतिनिधि मोहन दास का उपदेश पाले और तुम्हारे भक्त अर्जुन जैसे जवाहर लाल की आज्ञा मे रहे। उनके सदेश-सत्य और अहिंसा का पालन करे।

आज देखना यह है, कि क्या हम उनके सदेश का पालन करते हैं ! काले बाजारो का जोर आज कितना बढ गया है ? जब तक हम इन काले-कारनामो के कृष्णपक्ष से शुक्ल मे नही जावेंगे तब तक क्या हम समकित्ती कहे जा सकेंगे ? और क्या हम कृष्ण के प्रतिनिधि का सन्देश पालन कर सकेंगे ? हमारी गवर्नमेण्ट ने आज जो जन-हितकारी नियम बनाये हैं उनका अगर हम पालन करेंगे तो सचमुच हम कृष्ण में से शुक्ल मे कहे जा सकेंगे। और तभी हम कृष्ण के मित्र अर्जुन जैसे परम भक्त जवाहरलाल की आज्ञाओ का पालन कर सकेंगे।

श्रीकृष्ण ने स्वामी श्रद्धानन्द से कहा,—तुम मेरे प्रतिनिधि का सदेश अपने जीवन मे उतारो और मेरे योग्य भूमि तैयार करो। श्रद्धानन्द ने जब यह बात स्वीकार कर ली तो अन्त मे इन्द्र ने कहा—हिन्दू समाज जो कि कृष्ण को भगवान् मानता है, उसने कृष्ण की फरियाद की, इसके लिये वह धन्यवाद का पात्र है। लेकिन अब मै यह निर्णय सुनाता हूँ, कि हिन्दू समाज पहले अपने हिन्द मे कृष्ण के योग्य भूमिका तैयार करें और फिर एक रजिस्टर्ड पत्र द्वारा मुझे सूचना भेजे। तब भी अगर कृष्ण नही आवेंगे तो मै उनके नाम पर वारण्ट जारी करूँगा और हिन्द मे भेजूगा।

कवि की कल्पना बडी रोचक और सुन्दर है। लेकिन कहने का मतलब इतना ही है, कि अगर हम कृष्ण के कर्म-योग को अपने जीवन मे उतारेंगे और निष्काम भाव से कर्त्तव्य क्षेत्र मे काम किये जावेगे तो कृष्ण अवश्य हमारे हृदय मे अवतरित हो सकेंगे और अपना हमारा जीवन सफल कर सकेंगे। साथ मे जन्माष्टमी का मनाना भी तभी सार्थक कहा जा सकेगा।

: ४७ :

आत्म-स्वास्थ्य और विकार-जन्तु

आखिरी दस वर्षो मे विज्ञान ने बहुत खोज की है। उसने इस अर्से मे तरह-तरह के शस्त्रो ओर यन्त्रों की खोज की, जिसमे एक शोध सूक्ष्मजन्तु विद्या भी है। इसका यह सिद्धान्त है कि जगत मे जो-जो व्याधियाँ और उपद्रव होते है, उन सब मे एक तरह के सूक्ष्म जन्तु रहते है। वे ही समय-समय पर व्याधियाँ और उपद्रव उत्पन्न करते रहते है, अत रोगो से बचने के लिये इन जन्तुओ से दूर रहना चाहिये। शरीर-स्वास्थ्य के लिये जैसे इनसे बचने की ज़रूरत रहती है वैसे ही आत्मा की स्वस्थता के लिये काम, क्रोध, मद-मत्सर, लोभादि षट्-रिपुओ के सूक्ष्म जन्तुओ से भी बचकर रहना चाहिये। हमे इन शत्रुओ को जीतना चाहिये और मार डालना चाहिये। तभी हम विजयी कहे जा सकते हैं। और यही 'णमो अरिहंताणं' का अर्थ भी है। लेकिन आज हम इनको जीतने के बजाय इनसे ही परास्त हो रहे है। एक अग्रेज लेखक ने कहा है .

'Control your passions or they will control you '

तुम अपने विकारो को जीतो, नही तो वे तुम्हे जीत लेगे।

आज हमारी स्थिति भी ऐसा ही है। इन षट् रिपुओ को हमने नही जीता है। उन्होने हमे जीता है। आज तो हम

उनके गुलाम है । हमारे देश को आजादी मिल गई है । लेकिन यदि हम इन षट् रिपुओ के अधीन है तो समझ लीजिये अभी हम गुलाम ही है । आज हम पर इन्ही का अधिकार है । अत आज आत्मा का नही, विकारो का राज्य है । ये पाप के जन्तु रोग के जन्तुओ की तरह, इस प्रकार आ जाते है, कि हमे कुछ पता ही नही चलता, लेकिन जब वे अपना बडा रूप धारण कर लेते है तब हमे उनका पता चलता है । हमारा यह स्वभाव हो गया है, कि जब हमारे दिल मे खराब विचार आता है तो उस समय हम उसकी उपेक्षा कर देते है । इससे वह विचार हमारे मन मे बढता जाता है और एक दिन हम पर ही सवार हो जाता है । जब कोई मनुष्य बेईमानी से पैसा इकट्ठा करता है और फिर जहाज को डुबाकर सण के बजाय रेशम के दाम कम्पनी से वसूल करता है तो यह उन पाप जन्तुओ का ही बृहत् रूप होता है जो धीरे-धीरे मनुष्य इस हद तक नीचे गिर जाता है । अत ऐसे पाप जन्तुओ को पनपने का अवसर ही नही देना चाहिये—आते ही निकाल बाहर कर देना चाहिये ।

एक जगल मे दो पुरुष बैठे हुए थे । अचानक उन दोनो को एक सर्प ने काट लिया । उनमे से एक ने सोचा अगर मै इस अँगूठे को काट डालूँ तो यह जहर आगे नही फैल सकेगा और मै भी बच जाऊँगा । यह सोचकर उसने अपना वह अँगूठा काट डाला । दूसरे अँगूठा काटा नही । उसने सोचा अँगूठे को ही तो साँप ने काटा है, यह तो अभी ठीक हो जायगा । ऐसा सोचकर वह बैठा ही रहा । थोडी ही देर मे जहर तो ऊपर चढा ही और उसके चढते ही वह मर गया ।

वन्धुओ! वही हाल आप अपना भी समझ लीजिये। यदि आप थोडे से लोभ को भी आने से नही रोकेंगे तो याद रखिये एक न एक दिन वह आपको खत्म कर देगा। अत ऐसे जन्तुओ को तुरन्त वाहर निकाल देना चाहिये।

सूक्ष्म जन्तु-विद्यावाले कहते है, कि रोग के जन्तुओ को देखने के लिये सूक्ष्म दर्शक यन्त्र होने चाहिये। उसके विना वे देखे नही जा सकते। इसी तरह हमारे हृदय मे भी जो पाप विकार के जन्तु घुस गये है उनको देखने के लिये भी सूक्ष्म आत्म निरीक्षण की जरूरत होती है। ऐसा करने से ही वे देखे जा सकते है। इन विकारो को अगर शीघ्र ही दूर नही किया जाता है तो वे आत्मा को मलिन कर देते है। अस्वस्थ कर देते हैं। अत इनसे वचने के लिये सूक्ष्म आत्म निरीक्षण अवश्य करना चाहिये।

डाक्टर कहते है कि दूध या पानी जैसे तरल पदार्थों मे जन्तु होने का भय रहता है। अत उन्हे उवाल [गरम] कर पीया जाता है। उवालने पर जैसे उसमे किसी तरह के जन्तु होने का भय नही रहता वैसे ही अगर हमारे हृदय मे भी पाप के जन्तु वैठ गये हो तो पश्चाताप, सन्ताप और परिताप की अग्नि से उन्हे मार देना चाहिये—मिटा देना चाहिये। बुरे विचारो के लिये पश्चात्ताप करना चाहिये जिससे वे जल-भुन कर खाक हो जायँ। लेकिन पश्चात्ताप करने के वजाय पूर्वताप किया जाय तो अधिक अच्छा होता है। जन्तु आने के वाद पश्चात्ताप करना—सन्ताप करना या परिताप कर उनको जला देना तो ठीक है, पर पहले से ही पूर्वताप करना यानी जन्तुओ को आने ही नही देना यह उससे भी ज्यादा अच्छा है। कई

पुरुष तो पश्चात्ताप भी नही करते हैं, लेकिन जो करते है उन्हे पूर्वताप करना चाहिये।

जैसे शीतलता और प्लेग के लिए मनुष्य पहले ही इनोक्यूलेशन [इंजेक्शन] ले लेते है, जिससे उन पर उन बीमारियो का असर होने का भय नही रहता। वैसे ही मनुष्य को भी पश्चात्ताप करने से पहले पूर्वताप कर लेना चाहिये जिससे हृदय मे विकारो को आने का मौका ही न मिले।

हमारी पेटी के कपडो मे यदि जन्तु भर जाय तो जैसे प्रक्षालन कर धूप मे सुखाना पडता है, वैसे ही हमारे विचारो मे भी यदि ये जन्तु भर गये हो तो ज्ञान के पानी से धो डालना चाहिये और सद्गुणो की धूप मे उन्हे स्वच्छ कर लेना चाहिये। क्षमा, दया, उदारता आदि सद्गुणो की सुगन्ध हमारे मन वचन और कर्म मे भरी हुई होगी तो पाप के जन्तु हृदय मे प्रवेश ही नही कर सकेंगे। क्षमा की सुवास भरी हुई होगी तो क्रोध का जन्तु प्रवेश नही कर सकेगा। प्रेम की मधुरता होगी तो द्वेष का जन्तु फटक भी नही सकेगा। इस प्रकार जहाँ-जहाँ पाप के जन्तु भर गये हो वहा-वहाँ विवेक का जल छिडककर साफ कर देना चाहिये। हम इन विकारी जन्तुओ को हृदय से निकाल तो दे, पर हृदय मे सद्गुणो की हवा नही भरे तो वह फिर अशुद्ध हो जायगा। अत सद्गुणो को तुरन्त स्थान दे देना चाहिये। क्रोध और द्वेष का त्याग करते ही क्षमा और प्रेम को अपना लेना चाहिये। इस प्रकार यदि हम अपने हृदय मे सद्गुणो को भर सकेंगे तो अपना जीवन निर्मल कर सकेंगे।

पवित्रता की धूप मनुष्य मे अवश्य होनी चाहिये। लेकिन

यदि मनुष्य मे स्वार्थ बुद्धि होगी तो यह धूप टिक कर नही रह सकेगी। वहुत जल्दी उस पर पापो की छाँह आजावेगी। क्योकि मनुष्य के हृदय मे जव तक स्वार्थ की अधिकता होती है तव तक उसके विचार, वाणी और वर्त्तन मे भी खरावी होगी ही। अत इसको दूर करने के लिये पवित्रता की धूप होनी ही चाहिये।

जैसे किसी चर्मरोगी का, रोग हो जाने के भय से हम स्पर्श नही करते हैं, वैसे ही पाप के विकार मद-मत्सर आदि के जन्तु जिसमे भरे हुए हो उनका स्पर्श भी नही करना चाहिए। मानव बीमार होता है तो डाक्टर उसे पचगनी और महावलेश्वर जाने की सलाह देता है। उसी तरह हमारे हृदय मे भी यदि पापो के जन्तु भर गये हो तो उन्हे दूर करने के लिये भी ऐसे वातावरण मे जाना चाहिये जहाँ कि इनका भय नही रहता हो। क्योकि मनुष्य की मनोदशा आज वडी निर्वल हो गई है। चाहे जैसा वातावरण हो, पर हमारे ऊपर उसका असर न हो, ऐसा दृढ मनोवल नही रहा है। अत ऐसे वातावरण से दूर ही रहना चाहिये।

मनुष्य के हृदय मे जव रोग के जन्तु भर जाते है तो उसे डाक्टर के पास जाकर इजेक्शन लेना पडता है। वैसे ही हमारे पाप के जन्तुओ को दूर करने वाले धर्मगुरु डाक्टर हैं और उनके पास जाने से इस विषाक्त वातावरण का नाश होता है। स्वामी रामदास के जीवन की एक घटना है—

स्वामी रामदास एक पहुँचे हुए सन्त और महाराज शिवाजी के गुरू थे अत. उनकी महाराष्ट्र मे वडी मान-प्रतिष्ठा थी। एक दिन उन्हे देखकर कुछ आलसी लोगो को विचार

आया कि हम भी अगर रामदास के शिष्य हो जायँ तो आराम से खाने-पीने को मिल जाया करेगा। यह सोचकर वे उनके शिष्य बन गये। एक दिन वे सब रामदास के साथ फिरते-फिरते जगल मे गये और वहाँ एक पेड के नीचे बैठ गये। स्वामी रामदास तो सो गये, पर उनके शिष्य जागते रहे। पास ही एक ईख का खेत लहलहा रहा था। उसे देखकर आलसी शिष्यो के मुँह मे पानी भर आया। उन्होने सोचा—गुरुजी सोये हुए हैं, चलो, तब तक हम खेत मे जाकर ईख तोड ले। वे खेत मे पहुँचे और ईख तोडने लगे। इतने मे खेतवाला भी आगया। उसने जब इन भगवा कपडे वाले साधुओ को ईख उखाडते हुए देखा तो कहा—तुम साधु हो या चोर? शिष्य डर के मारे भागे और रामदास के पास आगये। रामदास जाग गये थे। खेत का मालिक उनके पीछे-पीछे लकडी लेकर दौडा और रामदास के पास आकर बोला—तू इन चोरो का सरदार मालूम होता है। यह कह कर उसने उन शिष्यो के साथ-साथ रामदास के भी दो तीन लाठियो की मार दी। लेकिन रामदास कुछ बोले नही, वे चुप-चाप वहाँ से चल दिये। फिरते-फिरते रामदास जब शिवाजी के पास आये तो उन्होने उनके शरीर पर लाठी मारने के चिह्न देखे। उन्हे देख कर शिवाजी ने कहा—महाराज, ये चिह्न आपके शरीर पर कैसे हुए हे? लेकिन रामदास ने कुछ जवाब नही दिया। क्योकि वे जानते थे कि अगर मै कुछ कहूगा तो वह खेतवाला पकडा जायगा और मारा भी जायगा। अतः उन्होंने कुछ नही कहा। लेकिन उनके शिष्यो ने सारी बात शिवाजी ने कह दी, जिसको सुनकर शिवाजी बडे क्रोधित हुए। उन्होने तुरन्त

अपने सिपाहियो को भेजकर उस खेतवाले को बुलाया और रामदास के सामने खडा कर कहा—कहिये गुरुदेव ! इसको क्या दण्ड दूँ रामदास ने कहा—तुम इसके खेत का जो टैक्स लेते हो, उसे इसकी जिन्दगी तक माफ कर दो। यही दड इसके योग्य है। सुनकर शिवाजी के दिमाग का पारा ठण्डा हो गया। जिस तरह इ जेक्शन से रोग के जन्तु दूर हो जाते है उसी तरह रामदास के इस इ जैक्शन से भी शिवाजी के क्रोध के जन्तु दूर हो गये। हमे भी ऐसे सद्गुरु के इ जैक्शन लेने चाहिये। तभी हम अपने आत्मिक स्वास्थ्य को प्राप्त कर सकेगे।

हमारे देश मे पहले थोर बहुत होते थे लेकिन विदेशो से एक जन्तु मँगाकर उनका नाश कर दिया गया। जो वस्तु सहज ही एक तरह की वाड (खेत की दीवार) का काम देती थी वह उस जन्तु ने विदेश से आकर नष्ट करदी। हमारे चारित्र मे घुसने के लिये भी आज विदेशो से जन्तु आते हैं और उसे बिगाड़ देते है। आत्म-स्वास्थ्य के इच्छुको को मानसिक विकाररूपो जन्तुओ से सदा सावधान रहना चाहिए।

: ४८ :

दिखावा पाप है

आपने सुना होगा कि 'गिबन' को ग्रीस की संस्कृति का इतिहास लिखने मे २० साल लगे थे। लेकिन उसका सार इतना ही है कि 'ग्रीस का उत्थान सादगी और सयम से हुआ था तथा पतन विलास से।' आज हमारे देश का पतन भी विलास से हो रहा है। एक बहिन आज अच्छे कपडे पहनती है तो दूसरी गरीब बहिन उसे देखकर दुखी होती है। हमारे पर्युषण के दिवस धार्मिक क्रिया करने के दिवस है, पर आज वे दिखावे के दिन हो गये है। एक बहिन को अच्छे कपड़े पहिने देखकर दूसरी गरीब बहिन को भी उसकी इच्छा हो जाती है और वह इसके लिये अपने पति को कहने लगती है। पति उसकी जिद्द से कोई अनीति का विचार करता है और उससे पत्नी की इच्छा पूर्ति करता है। इस तरह पहली बहिन का पहनावा भी दूसरी बहिन के पाप का कारण बनता है। इस विषय की एक सच्ची हकीकत मै आप से कहती हूं।

काठियावाड मे रामजीभाई नाम के भाई रहते थे। वे प्राय विदेश मे रहा करते थे। लक्ष्मी की उन पर कृपा थी। लोग उनको 'फूट कपाल' कह कर भी पुकारते थे। क्योकि उनके कपाल मे एक खड्डा पड़ा हुआ था। इनका जीवन बड़ा सादा

था। इनके पास ही एक दूसरा पडौसी रहता था। उसने एक दिन रामजी भाई से कहा—रामजी भाई, तुम इतने वहादुर तो दीखते नही। न किसी लडाई मे गये हो। फिर तुम्हारे कपाल मे यह घाव कैसे पडा हुआ है ? रामजी भाई कुछ क्षण विचारो मे पड गये। थोडी देर बाद उन्होने कहा—"भाई, मैने लडाई मे जाकर किसी से युद्ध तो नही किया है, पर यह घाव, जिस से मुझे 'फ़ूट कपाल' कहते है, दीपक की तरह काम देता है। मुझे यह मार्ग-दर्शन कराता है।" पडौसी ने आश्चर्य से पूछा—"यह कैसी बात करते हो ! यह दीपक का क्या काम करता है ?" रामजी भाई ने कहा—"हाँ भाई सुनो, मेरे इस घाव की कहानी। जब मै छोटा था और काठियावाड मे रहता था, तब मेरे माँ-वाप वडे गरीव थे। तुम्हारी तरह वहाँ भी मेरे मकान के पास एक धनवान् पुरुष रहते थे। वे मेरे माता-पिता से बोलने मे भी पाप समझते थे, क्योकि उस समय हम गरीव थे। लेकिन वालको के दिल मे गरीवी की दीवार नही होती है। अत हम वच्चे-वच्चे रोज मिलते रहते थे। सेठ के वच्चे रोज फल फ्रूट खाते थे और छिलका हमारे ऊपर फेकते थे। वे रोज-रोज मिठाई खाते थे, पर दोना हमारे ऊपर फेकते थे। उनको खाते देख कर हम भी अपने माँ-वाप से मिठाई माँगते थे, पर माँ-वाप भी दु खी होते थे और हमारे साथ रो देते थे। इसके सिवाय उनके पास और था ही क्या ?"

आज हमे भी यह विचार करना है, कि हम भी अपने वाल-वच्चों को इस तरह प्यार कर दूसरे वाल-वच्चो पर अत्याचार तो नही कर रहे है।

रामजी भाई ने आगे कहा—भाई, इस तरह रोज-रोज हम

अपने माता-पिता से कहते थे और रोते-झगडते थे। तब एक दिन मेरी माँ उनके घर पर गई और सेठानीजी से बोली— "सेठानीजी आपके इस सुख को देखकर हम बडे खुश है और हमारी यह दुआ है कि आप इससे भी अधिक सुखी हो, लेकिन मै आपसे एक अर्ज करने आई हूँ, कि आपके बच्चे रोज-रोज बाहिर चबूतरे पर बैठकर मेवा-मिठाई खाते है, जिनको देख कर मेरे बच्चे भी खाने के लिये मुझ से लडते है। अत अगर आप अपने बच्चो को अन्दर बैठा कर खिलाये-पिलाये तो अच्छा होगा। इससे हमारा यह रोज का रोना-पीटना मिट जायगा।" इस प्रकार मेरी माँ ने तो विनय पूर्वक सेठानी से अपनी बात कह दी, लेकिन सेठानी मद मे थी, मेरी माँ की बात का मर्म नही समझ सकी। उसने कहा "मेरे बच्चे खावे और तुझे वह हजम नही हो तो मैं क्या करूँ ? ईश्वर की कृपा से मुझे सब साधन मिले हैं। अगर मेरा यह सुख तुझे पसन्द नही आता हो तो तू अपनी आखे फोड डाल ? मेरे बच्चे तो खावेगे और इसी तरह खावेगे।" रामजी भाई की मा ने चुपचाप सेठानी की बात सुनी और वह दुखी होकर अपने घर लौट आई। रामजी भाई कहते गए—"जैसे ही मेरी माँ घर आई, मैने उसका पल्ला पकडा और कहा—मा मुझे भी बरफी दे, सेठ के लडके बरफी खा रहे है, मुझे भी दे। माँ क्रोध मे तो थी ही लेकिन मेरी इस ज़िद से उसका वह क्रोध साकार हो गया और उसने मेरे सिर मे, पास ही पडे हुए चिमटे को उठाकर, दे मारा। आज जो घाव तुम्हे दीख रहा है, यह उसी दिन मारने से हुआ था। फिर तो मेरी मा बहुत रोई और पछताई भी लेकिन जो होना था वह तो हो

चुका था। १५ दिन बाद वह मेरा दुःख तो दूर हो गया, पर मेरे हृदय मे वह घाव जम गया। उस दिन से मैने कभी अपनी माँ से न तो कुछ माँगा ही और न किसी के लिए लडाई ही की। कुछ अर्से बाद हम विदेश मे आये। ईश्वर की दया से आज मेरी स्थिति ठीक है। लेकिन आज यही जख्म मुझे यह कहता है, कि दूसरे के धन को देखकर तो तेरे कपाल मे जख्म हुआ है, परन्तु अपना दिखावा कराकर दूसरे के हृदय मे घाव नही करना।" बधुओ! क्या आप भी कभी ऐसा सोचते है, कि हम कही विलास के जन्तुओ का प्रदर्शन कर दूसरो का बुरा तो नही कर रहे है? विलास के साधनो के प्रदर्शन से होने वाले भयङ्कर परिणाम को सोच कर अगर हम उन जन्तुओ का नाश करेगे और सादगी को अपनावेगे तो हम अपना और समाज का कल्याण कर सकेगे।

४६

सुवर्ण जीवन

हम सब अपना लम्बा जीवन जीना चाहते है। अगर कोई मनुष्य किसी से यह कहे कि अमुक दिन तुम्हारी मृत्यु होने वाली है तो यह सुन कर वह घबरा जाता है और उस मृत्यु को टालने की कोशिश करता है। इससे जाहिर है, कि हर एक मनुष्य जीना चाहता है और बडे लम्बे समय तक जीना चाहता है। लेकिन बुद्धिमान मनुष्यो ने कहा है, कि मानव को अपना लम्बा जीवन जीने की फिकर नही करनी चाहिये, वह भले ही कम जीवे, पर अच्छा कैसे जीवे, यही उसे सोचना चाहिये। आप सब जानते है कि गजसुकुमाल अपनी छोटी-सी जिन्दगी मे केवल १२ वर्ष की उमर मे, ही मोक्ष प्राप्त कर गये, पर दूसरे मनुष्य सैकडो वर्ष जीवित रहकर भी कुछ नही कर सके। दूर की बात जाने दीजिये। आपकी आँखो के सामने का ही जिकर है हमारे यही (बम्बई मे) बाबू जीवन नामक एक लडका, देश की खातिर मोटर के नीचे आगया और कुर्बान हो गया, उसका वह छोटासा जीवन भी कितना मूल्यवान था ? कानपुर मे गणेशशकर विद्यार्थी देश-सेवा की खातिर कुर्बान हो गये, पर हम १०० वर्ष जीवन भी अगर दुनिया की भलाई के लिये कुछ नही कर सके तो

इस लम्बे जीवन का भी क्या मूल्य है ? अग्रेजी के महाकवि लोगफेलो ने एक जगह कहा है—

'हम कितना लम्बा जीवन जीवे, इस सवाल के बजाय किस तरह जीवे ? यह महत्त्व का प्रश्न है।'

आइये, आज इसी प्रश्न पर हम भी विचार करे कि मनुप्य को अपना जीवन किस तरह जीना चाहिये ?

आप सब यह जानते है कि दुनिया मे मुसाफिरी के तीन मार्ग है—आकाश मार्ग, स्थल मार्ग और जलमार्ग। ठीक इसी तरह जिन्दगी की मुसाफिरी के भी तीन मार्ग है—आधिभौतिक, आधि दैविक और आध्यात्मिक। जिन्हे कि हम जडवाद, बुद्धिवाद और आत्मवाद के नामो से भी पहचान सकते है।

जडवाद यानी जमीन पर चलना।

बुद्धिवाद यानी पानी पर चलना।

आत्मवाद यानी आकाश पर चलना।

अब इन मे से हमे किस मार्ग पर चलना है, इसका विचार करना चाहिये। जडवाद के बल बूते पर चलने वालों का जीवन जमीन पर पेट रगड कर चलने वाले कीड़ो की तरह होता है। सम्पत्ति इकट्ठी करना और उसका उपभोग करना ही उनका एक काम मात्र होता है। आज के धनवान मनुष्य और क्या करते है ? वे इन्ही मे सुख समझते है, पर यह मान्यता उनकी खोटी है। मरु भूमि मे मृग जैसे पानी के भ्रम मे मारा मारा फिरता है, पर पानी कही नही पाता, यही हाल जडवाद पर चलने वालो का भी होता है। वे पैसो मे सुख समझते है, पर दरअसल मृग की तरह उन्हे उसमे सुख नही मिलता है। सुख उनसे दूर भागता जाता है।

लेकिन आज जिधर देखिये उधर इसी भ्रम की पुष्टि की जा रही है। मानव जड के पीछे दीवाना बना जा रहा है। इस की रक्षा के लिये विज्ञान ने अणुबम की खोज की है, पर यह सच समझ लीजिये, कि वह अणुबम या अणुबम का विरोधी शस्त्र भी क्यो नही खोजे, पर वह निकम्मा ही है।

विज्ञान ने आज मनुष्य का मनुष्यत्व छीन लिया है और उसे स्थलचर, जलचर बना दिया है। अत जडवाद पर चलना इन्सान का कर्त्तव्य नही है। उपनिषद् मे एक जगह कहा है—

'सत्य का मुख सोने (सुवर्ण के ढक्कन से ढाँका हुआ है। सत्य के दर्शन के लिये साधक ईश्वर से प्रार्थना करता है कि—हे ईश्वर ! तुम इस सुवर्ण पात्र को खीचलो और मुझे सत्य के दर्शन करने दो।' बन्धुओ ! यह एक रूपक है। इसका तात्पर्य यह है कि जब तक हमारे हृदय पर स्वर्ण का ढक्कन होगा तब तक हम सत्य के दर्शन नही कर सकेंगे।

एक धर्मगुरु के पास एक आदमी आया और बोला—ईश्वर कहाँ है ? मुझे तो कही भी नजर नही आता है। धर्मगुरु ने एक कागज पर ईश्वर लिखा और उससे कहा—यह क्या लिखा है ? आगन्तुक ने पढा—ईश्वर। फिर उस पर एक सोने की मोहर रख कर धर्मगुरु ने पूछा—यह क्या है ? उस आदमी ने कहा—सोने की मोहर। तब धर्मगुरु ने उसे समझाते हुए कहा—भाई, जैसे इस सोने की मोहर के नीचे ईश्वर दब गया है, वह दिखाई नही पडता है, वैसे ही मनुष्य की नजर जब जड वस्तुओ की तरफ जाती है तब वह ईश्वर को नही देख पाता है, उस समय उसे न अपनी भलाई दीखती है और न दूसरो की। चारो तरफ उसे केवल जड़-स्वार्थ ही

दिखाई पडता है। तब फिर ईश्वर के दर्शन कैसे हो सकते हैं?

जडवाद के प्रभाव मे हम आकाशगामी-सन्त-पुरुषो को भी नही देख सकते है। महापुरुषो को देखने के लिये भी महान् हृदय की जरूरत होती है। हम मे से कुछ लोगो का यह ख्याल है, कि महात्माजी अव्रती थे और इसकी सफाई मे वे यह कहते हैं, कि उन्होने सम्यक्त्व कब लिया था? लेकिन मै उनसे यह कहना चाहती हूँ कि आप दूसरो के हिसाब-किताब क्यो तपासते है, पहले अपना ही क्यो नही तपासते? जहा तक हम ही सम्यक्त्व न ले या समकिती न बने वहाँ तक हम दूसरे को कैसे समझ सकते हैं, कि वह सम्यक् दृष्टि है या नही। आज जो केवल एक पाई के लिये ही अपना सम्यक्त्व बेच देते हैं वे यह कहने का क्या अधिकार रखते है, कि दूसरा व्रती है या अव्रती? सम्यक्त्वी है या मिथ्यात्वी? अतएव जब तक मनुष्य जडवाद पर चलता है तब तक वह आकाशगामी मार्ग पर नही चल सकता है।

जडवाद की वस्तुओ को इकट्ठा करने के लिये कितने पाप करने पड़ते हैं? जब तक आप दूसरो की सम्पत्ति न लूटे, तब तक आपके पास पैसा इकट्ठा नही हो सकता है। यह जानी हुई बात हैं, कि जैसे जुआरी के पास एक तरफ मिट्टी का ढगला होता है तो दूसरी तरफ खड्डा भी, इसी तरह पैसे वालो को भी यह समझ लेना चाहिये कि भले ही वे एक तरफ अपनी तिजोरी भरे, पर दूसरी तरफ तिजोरी खाली भी होती है।

मनुष्य का जीवन, आज हिंसक पशुओ से भी खराब हो गया है। एक समय की बात है—एक राजकुमार शिकार खेलने गया। जङ्गल मे जाते हुए उसे एक साभर दिखाई पडा

और उसने उसी के पीछे अपना घोड़ा दौडा दिया। साभर आगे-आगे भागा जा रहा था और राजकुमार भी उसके पीछे-पीछे अपने घोडे को दौडाता हुआ चला जा रहा था। वहुत दूर निकल जाने पर सामने एक झील आ गई, जहाँ साभर रुक गया। अब आगे भागने का कोई चारा नही था। इतने मे राजकुमार भी आ पहुचा और उसने निशाना मार कर साभर का काम तमाम कर दिया।

शाम हो गई थी। राजकुमार ने शिकार तो कर लिया, पर अब वापिस घर कैसे जावे? इसी विचार मे वह वहाँ वैठ गया। इतने मे एक सन्यासी उसे दिखाई दिया, जो कि वडा मस्त दिखाई देता था। उसने जव साभर मरा हुआ देखा तो राजकुमार से कहा—शावाश, राजकुमार! तुमने आज वडा अच्छा शिकार किया है? मालूम होता है तुम इस शिकार से कुछ थक से गये हो। चलो, मेरी कुटिया मे कुछ आराम करलो। राजकुमार ने अपना घोडा वाधा और सन्यासी की कुटिया मे वैठ गया। सन्यासी ने उसे थोडी देर वाद भोजन कराया और फिर स्वय सगीत मे तल्लीन हो गया। कुछ देर वाद जव उसने अपना सगीत वन्द किया तो राजकुमार ने कहा—महाराज, ऐसा सगीत तो मैंने आज तक अपनी जिन्दगी मे नही सुना। इच्छा तो ऐसी होती है, कि अगर मेरा विवाह नही हुआ होता तो मै आपको कभी नही छोडता।

सन्यासी ने राजकुमार से कहा—भाई, रात काफी हो गई है अत आज तुम यही रह जाओ। मुझे भी शिकार का शौक है अत हम तुम दोनो रात को शिकार खेलने चलेंगे।

राजकुमार के मन मे कुछ उथल-पुथल तो हुआ, पर शिकार

के नाम से उसने वहाँ रुकना मंजूर कर लिया। रात को दस बजे सन्यासी ने राजकुमार से कहा—चलो उठो, अब हम शिकार करने चले। सन्यासी और राजकुमार दोनो चलते चलते एक पेड के नीचे आये, जहाँ कई मनुष्य बैठे हुए थे। उनकी तरफ इशारा करते हुए सन्यासी ने कहा—राजकुमार, तू इनका शिकार कर ? ये वे चोर है, जो नाहक मनुष्यों को तग करते हैं और उनका धन हरण करते है। अत. तू इनका शिकार कर। ये हिसक पशुओ से भी ज्यादा भयकर है। राजकुमार ने गोली चलाने के लिये अपनी बन्दूक उठाई कि सन्यासी ने कहा —ठहरो, अभी इससे भी आगे अच्छा शिकार मिलने वाला है। दोनो आगे बढे। चलते-चलते सन्यासी ने एक पेड़ पर चढकर राजकुमार, से कहा—राजकुमार देखो इस मकान मे सफेद पोश धारण किये हुए खौफनाक भेडिया बैठा हुआ है। उसने राजकुमार को एक महन्त बताया, जो अपने पास बैठी हुई सुन्दर-सुन्दर रमणियो से हसी-दिल्लगी कर रहा था। सन्यासी ने कहा—राजकुमार! ये दिन के महन्त है और रात के विलासी, तू इनका शिकार कर। राजकुमार अपना निशाना ताकता है, पर सन्यासी उसका हाथ थामते हुए कहता है—ठहरो, अभी आगे कुछ और अच्छा शिकार मिलने वाला है। दोनो वहाँ से भी आगे बढते हैं। आगे जाते हुए वे एक हाईकोर्ट मे पहुँचे, जहाँ मनुष्यो का इसाफ किया जाता था। सन्यासी ने कहा—राजकुमार, यहाँ दिन मे न्याय होता है, पर वही रात मे पैसो मे बेच दिया जाता है। देखो, वहाँ क्या आवाज हो रही है? दोनो चुपचाप वहाँ खडे होकर सुनने लगे। एक धनवान पुरुष जज से कह रहा था—सरकार, ये दस हजार रुपये लीजिए,

और मुझे वचा लीजिये। राजकुमार यह देखकर गोली चलाने लगता है, पर सन्यासी ने कहा—अभी ठहरो, इससे भी वढिया शिकार तो आगे मिलने वाला है। तव वह उसे व्यापारियो के पास ले गया और कहा—तू इनका शिकार कर, ये गरीवो को लूटकर अपना घर भरते हैं, व्लेक मार्किट करते है और मौज-मजा करते हैं। इस तरह सन्यासी जहाँ जहाँ भी राजकुमार को ले जाता है, वहाँ-वहाँ वह धर्म को छोडकर जडके पीछे ही अधर्म और स्वार्थ का पोपण होते देखता है। आखिरकार सन्यासी उसे घुमा-फिरा कर वापिस अपनी झोपड़ी पर लाता है, और इस तरह समझाते हुए सूर्योदय होने पर उसे विदा करता है। यहाँ कहने का मतलव इतना ही है कि जडवाद तमाम खुराफातो की जडहै, उसमे लाभ नही, हानि ही है, अत. उसके मार्ग पर नही चलना ही वुद्धिमानी है।

दूसरा मार्ग है—वुद्धिवाद यानी जलमार्ग। कई मनुष्य वुद्धि से जो सिद्ध होता है उसे ही मानते हैं। तर्क से सिद्ध होने वाली वातो पर ही वे विश्वास रखते है। लेकिन जरा सोचने की वात है, जो काम हथौडे से किया जाता है, वह जैसे हाथ से नही किया जा सकता है और करें तो हाथ टूट जाने का भय रहता है, वैसे ही जो चीज विश्वास से मानने की होती है उसे तर्क से कैसे समझी जा सकती है ? क्योंकि तर्क तो सत्य दिशा मे भी होता है और असत्य दिशा मे भी।

काका साहव कालेलकर जव एक वार जेल मे थे तव उनके साथ एक मुस्लिम भाई भी थे, जिन्हे वन्दरो से वडी चिढ-सी थी। वे रोज-रोज उन्हे एक कोठरी मे वन्द कर तग किया करते थे। एक दिन काका साहव ने उनसे कहा—आप इन

वन्दरो को तग क्यो करते है ? इनको निकाल क्यो नही देते ?

मुस्लिम भाई ने कहा—ये तो मेरे शत्रु है, इन्हे कैसे छोड दू ? काका साहब ने कहा—ये तुम्हारे शत्रु कैसे है ?

उनसे कहा–अग्रेज मेरे शत्रु है। उन्हे हम वन्दर कहते है अत. ये वन्दर भी मेरे शत्रु ही है।

वधुओ ! यह दलील कैसी झूठी है ? पर आज बुद्धिवादी मनुष्य इन्ही तर्कों का आश्रय लेता है और अपना धर्म खो बैठता है अत ऐसा जीवन भी हमारे लिये उपयोगी नही है।

अब तीसरा मार्ग है—आत्मवाद का आध्यात्मिक मार्ग। यही मार्ग हमे ऊचा उठा सकता है। आध्यात्मिक मार्ग का मतलब, अगर कोई यह समझे कि इस पथ पर चलने वाले मनुष्य को ससार मे नही रहना चाहिये या साधु वन जाना चाहिये, तो ऐसा समझना ठीक नही है। साधु वन जाने पर या दुनिया को छोड कर जगल मे चले जाने पर भी अगर ईर्षा-द्वेप-छल कपट को नही त्यागा तो वह ससार ही है अत ससार को छोड जाने से या साधु वन जाने से ही कुछ लाभ नही, लाभ है आध्यात्मिक मार्ग की तरफ अपना कदम बढाने पर। वह चाहे साधु वन कर बढाया जाय, या एकात जगल मे रह कर, उसकी साधना की जाय या ससार मे रह कर की जाय अवश्य लाभदायी होती है।

जिस पुरुप के हृदय मे आत्म-विश्वास हो और जो सदैव प्रसन्न-मुख रहता है वही आध्यात्मिक मार्ग पर चल सकता है और उसे ही आध्यात्मिक मार्ग पर चलने वाला भी समझना चाहिये। अग्रेजी मे कहा है —

तुम सब कुछ भूल जाओ, पर दो वाते मत भूलो–दान

देना और क्षमा करना । इन दो बातो को याद रखने से ही तुम्हारा जीवन सफल हो जायगा । तुम्हारे पास जो कुछ भी हो, उसे खुले हाथो मे लुटा दो—और कोई तुम्हारा कुसूर करे तो उसे क्षमा कर दो, बस ये दो बातें ही तुम्हारे लिये काफी है, जो तुम्हें इन्सान से भगवान् बना देगी ।

जडवस्तुओ का त्याग अध्यात्मवाद है और उनका सग्रह करना जडवाद । गुरु गोविन्दसिह का एक किस्सा है—एक बार जब वे जमुना के किनारे बैठे हुए थे उस समय उनका एक श्रीमन्त शिष्य—रघुनाथदास उनके पास अपनी भेट लेकर आया और बोला—लीजिये, आज मेरी यह भेट स्वीकार कीजिये । भेट मे दो सोने की बगडियाँ थी, जिनमे कीमती हीरे लगे हुए थे ।

गुरु गोविन्दसिह अध्यात्मवादी पुरुष थे । उनकी नजरों मे मिट्टी और सोने मे कोई भेद नही था । वे उन बगडियो को लेकर अपनी अगुलियो मे फिराने लगे । फिराते-फिराते एक बगडी जमुना मे जा गिरी । भेट देने वाला तुरन्त जमुना मे कूद पडा, पर बगडी उसे नही मिली । विवश हो जब वह खाली हाथ लौटा तो गुरु गोविन्दसिह ने वह दूसरी बगडी भी फेकते हुए कहा—देख' बगडी वहाँ पडी है । इस प्रकार जो मनुष्य सोना और मिट्टी को एक समान समझता है वही मनुष्य आकाशगामी बन सकता है और पवित्र आध्यात्मिक जीवन जी सकता है । यह निश्चय समझिये कि जब तक मनुष्य जडवाद को छोडकर अध्यात्मवाद को ग्रहण नही करेगा तब तक वह सत्य के दर्शन से वचित ही रहेगा, इसीलिये उपनिषद् मे यह परम सत्य कहा गया है कि—'सत्य के दर्शन के

लिये सोने का ढक्कन उखाड कर फेंक देना चाहिये। इसलिये यदि हमे अपना सुवर्ण जीवन बनाना है तो सत्य पर छाये हुए सोने के ढक्कन को उखाड कर आध्यात्मिक मार्ग पर गति करनी चाहिये। आध्यात्मिक मार्ग पर गति करते हुए यदि दान देना और क्षमा करना ही हमारे जीवन सूत्र बन जाय तो हम अपना जीवन शान्ति के मार्ग पर अग्रसर कर सकते हैं और अपना जीवन सुवर्ण जीवन के रूप मे चमका सकते है।

त्याग

सारा ससार आज विषय और कषाय की आग मे जल रहा है। भगवान् महावीर की तरह भगवान् बुद्ध ने भी अपने चार आर्य सत्य का उपदेश देने से पूर्व यही कहा है कि सारा ससार विषय और कषाय की ज्वाला मे जला जा रहा है। पतजली ने अपने योग-सूत्र मे कहा है—'बुद्धिमान मनुष्य के लिए धन-सम्पत्ति आदि भौतिक वस्तुएँ आग की तरह जलाने वाली है।' महात्मा कबीरदासजी ने भी कहा है कि 'इस ससार मे सब अपनी-अपनी आग मे जल रहे है।' विषय और कषाय की इस आग मे जलते हुए कई मनुष्य यह सोचते है कि हम विवाहित होकर यानी स्त्री को पाकर शान्ति प्राप्त कर सकेंगे। कई पैसो मे शान्ति चाहते हैं। विद्यार्थी परीक्षा-पास का सर्टिफिकेट लेकर शान्ति चाहता है। छोटा अधिकारी बडा ओहदा चाहता है और उसी मे शान्ति समझता है, पर यह सब मिल जाने पर भी शान्ति किसी को भी नही मिलती, सब अपनी-अपनी आग मे ही जलते रहते है। एक मनुष्य जो स्वय अपनी आग मे जल रहा हो, वह दूसरे की क्या रक्षा कर सकता है? आग से बचाने के लिये तो ऐसा महापुरुष होना चाहिये जो स्वयं आग से बहुत दूर हो और उस पर काबू

लिये सोने का ढक्कन उखाड कर फेक देना चाहिये। इसलिये यदि हमे अपना सुवर्ण जीवन बनाना है तो सत्य पर छाये हुए सोने के ढक्कन को उखाड कर आध्यात्मिक मार्ग पर गति करनी चाहिये। आध्यात्मिक मार्ग पर गति करते हुए यदि दान देना और क्षमा करना ही हमारे जीवन सूत्र बन जाय तो हम अपना जीवन शान्ति के मार्ग पर अग्रसर कर सकते है और अपना जीवन सुवर्ण जीवन के रूप मे चमका सकते है।

५०

त्याग

सारा ससार आज विषय और कषाय की आग मे जल रहा है। भगवान् महावीर की तरह भगवान् बुद्ध ने भी अपने चार आर्य सत्य का उपदेश देने से पूर्व यही कहा है कि मारा ससार विषय और कषाय की ज्वाला मे जला जा रहा है। पतजली ने अपने योग-सूत्र मे कहा है—'बुद्धिमान मनुष्य के लिए धन-सम्पत्ति आदि भौतिक वस्तुएँ आग की तरह जलाने वाली है।' महात्मा कबीरदासजी ने भी कहा है कि 'इस ससार मे सब अपनी-अपनी आग मे जल रहे है।' विषय और कषाय की इस आग मे जलते हुए कई मनुष्य यह सोचते है कि हम विवाहित होकर यानी स्त्री को पाकर शान्ति प्राप्त कर सकेंगे। कई पैसो से शान्ति चाहते हैं। विद्यार्थी परीक्षा-पास का सर्टिफिकेट लेकर शान्ति चाहता है। छोटा अधिकारी बडा ओहदा चाहता है और उसी मे शान्ति समझता है, पर यह सब मिल जाने पर भी शान्ति किसी को भी नही मिलती, सब अपनी-अपनी आग में ही जलते रहते है। एक मनुष्य जो स्वय अपनी आग मे जल रहा हो, वह दूसरे की क्या रक्षा कर सकता है? आग से बचाने के लिये तो ऐसा महापुरुष होना चाहिये जो स्वयं आग से बहुत दूर हो और उस पर काबू

पाया हुआ हो । भाग्य से हमारे यहाँ ऐसे फायर ब्रिगेडियर हुए हैं जिन्होने हमे इस आग से बचने के लिए त्याग का पानी वताया है—शील का पानी दिया है, जिसके जरिये हर एक मनुष्य अपनी-अपनी आग को बुझाकर शान्ति पा सकता है।

मनुष्य सुबह उठकर सूर्य की तरफ पीठ करके चले तो उसकी छाया (परछाई) उससे आगे-आगे दौड़ेगी, जिसे वह लाख कोशिश करने पर भी नही पकड सकता है, परन्तु जब वह सूरज के सामने मुख करके चलने लगता है तो उसकी परछाई जो आगे-आगे भागती थी, उसके पीछे-पीछे भागने लगती है । यही हाल भौतिक सम्पत्ति का भी होता है । मनुष्य जब उसका पीछा करता है तो वह भी परछाई की तरह आगे आगे भागती है, पर वह उसकी तरफ पीठ करके चल देता है तो वह भौतिक सम्पत्ति भी उसके पीछे-पीछे हो लेती है ।

साधारण जन-समाज यहाँ यह कहता है, कि 'आँख खोलो और देखो' वहाँ आध्यात्मिक लोग कहते है कि 'आँखे वन्द करो और देखो।' साधारण मनुष्य जहाँ 'अधिकार चाहिये' कहता है, वहाँ ये 'अधिकार छोडिये' कहते है । गीता में भी कहा है—

'जो सब प्राणियो के लिए रात है, वह इनके लिए दिन है और जहाँ सवको दिन दीखता है वहाँ इनके लिए रात होती है ।'

साधारण मनुष्य को जहाँ सयम और तप मे आग दिखाई देती है वहाँ इन आध्यात्मिक योगियों को उसी मे शान्ति दिखाई पडती है। ऐसे आध्यात्मिक पुरुष यानी आग

को वुझाने वाले Fire Brigadier हमारे सद्भाग्य से पहले भी हुए है और आज भी है, लेकिन इनके पीछे-पीछे चलने वाले लोग यदि खुद ही आज आग मे जल रहे हों तो वे कैसे दूसरे को शान्ति दे सकते है ?

एक दिन किसी के यहाँ आग लग गई। उस समय एक बुद्धिमान् मनुष्य से दूसरे आदमी ने आकर कहा—चलो, आग वुझाने के लिये चले।

बुद्धिमान मनुष्य ने कहा—किसकी ? अपनी या दूसरे की ? दूसरा आदमी कुछ समझा नही और चला गया। फिर आकर वोला—मै आग बुझा कर आया हू।

ज्ञानी ने कहा–किसकी ? अपनी या दूसरे की ?

वन्धुओ ! यह सारा ससार आग मे जल रहा है। कौन शान्ति मे है ? यह एक विकट सवाल वन गया है। एक करोड-पति होकर भी अगर ईर्षा की आग मे जल रहा हो तो क्या वह एक करोड की सम्पत्ति भी उसे शान्ति दे सकती है ? एक आदमी वडे परिवार का हो, पर क्रोधी हो, तो क्या वह शांति प्राप्न कर सकता है ? जव तक मानव अपनी आग मे जलता रहता है तव तक वह शान्ति नही प्राप्त कर सकता।

मनुष्य चाहे तो देव भी हो सकता है और शैतान भी। एक अंग्रेज लेखक ने कहा है–

'मुझे स्वर्ग मे जाने से पूर्व स्वर्ग को अपने हृदय मे उतारना है।' हमने भी ऐसा ही कहा है–'मनुष्य अपनी जिन्दगी मे सेवा, दान, दया आदि के गुण उतारे तो स्वर्ग मे जा सकता है। और वही विना कारण क्रोध करे तो नरक मे भी गिर सकता है।' अत मानव को यदि स्वर्ग मे जाना है तो

उसे शान्ति, दया, दान का पालन करना चाहिये। जब तक हम विषय-कषाय से बँधे हुये होगे तब तक हम मुक्त नही हो सकेगे। यह बिल्कुल सच मानिये कि हम भले ही तरह-तरह की क्रिया करते हो' पर अन्तरग क्रिया का पालन नही करते हो तो हम मुक्त नही हो सकेगे। हमारे धर्मशास्त्रो मे तो यह स्पष्ट कहा है, कि बाह्य क्रियाकाड तुम चाहे जितने करो और मुखवस्त्रिका का मेरु जैसा ढेर भी करदो, पर आन्तरिक हृदय शुद्धि न करोगे तो तुम्हे मुक्ति नही मिल सकेगी।' अत· त्याग और शील के पानी से मनुष्य को शाति प्राप्त करनी चाहिये।

अगर कोई पूरा त्याग नही कर सकता हो तो आशिक त्याग-दान का अनुसरण करना चाहिये। आज एक मानव चोरी करता है तो वह गुनहगार होता है। एक समय ऐसा क़ायदा भी था कि जो दंड, चोर को दिया जाता था वही दड कृपण को भी दिया जाता था। जो वस्तु के होने पर भी दूसरे को नही देता था वह भी चोर की तरह दडित होता था अत· हमे दान अवश्य देना चाहिये।

पुराने समय की बात है, अमर नाम का एक कवि था, जो कि बडा अपरिग्रही था। एक दिन वह एक सेठ के घर पर कुछ मांगने गया। वहाँ वह चला तो गया, पर उसने मागा कुछ नही। खाली हाथ जब वह अपने घर आया तो उसके बच्चे रो रहे थे। उसकी पत्नी ने अमर से कहा—क्या आपकी विद्वत्ता की इतनी भी कद्र नही कि कोई आपको कुछ दे दे? अमर ने कहा देते तो सब है, पर कोई अहकार से देता है तो कोई सैकडो को रुला कर देता है, अत ऐसा दान नही लेना चाहिये। बधुओ! आज का दान भी क्या ऐसा नही

है ? हाथी को मार कर वकरी का दान देना, क्या ऐसा नही है ? अत अमर ने कहा कि ऐसा दान लेने के बजाय तो मर जाना ही योग्य है। क्योकि ऐसा दान लेने से तो हमारी वृत्ति भी खराव हो जायगी। अमर की पत्नी ने गहरा श्वास छोडते हुए कहा—क्या दुनिया मे कोई सच्चा दातार नही है ? जाओ, देखो और कुछ लाकर इन बच्चो को सन्तुष्ट करो। अमर राज-दरवार मे जाता है जहाँ युवराज महेन्द्र का राज्याभिषेक हो रहा था। सब उसको आशीर्वाद देते है। अमर भी आशीर्वाद देते हुए कहता है—'हे राजन् ! तू सिंहासन पर बैठ कर नही, प्रजा के हृदय पर विराज कर राज्य करना।'

महेन्द्र ने उसका आशय समझ कर कहा—अमर ! कुछ माग !

अमर ने सोचा—मै क्या मागू ? यहाँ भी प्रजा के पसीने से ही सारा खजाना भरा पडा है। उसने कहा—राजन् ! अपना यह वचन रहने दीजिये, मैं फिर कभी मागू गा।

राजा ने कहा—नही, अभी कुछ माग।

अमर ने कहा—महाराज, आप अपनी मेहनत का एक रुपया मुझे दीजिये।

यह सुन कर सव लोग चकित हो गये, पर महेन्द्र ने कहा—राजकवि ! तुमने जो वादशाही दान मागा है उसे मेरे वादशाही दिल ने भी समझ लिया है। आज का यह राज्याभिषेक वन्द रहेगा और मै पहले तुम्हे एक रुपया दान मे दू गा। महेन्द्र अपने राज-सिंहासन से उठा और एक रुपया पैदा करने की तजवीज करने लगा। उसने वहुत सोचा-विचारा और देखा, परन्तु कही भी उसे मजूरी नही मिली। अन्त मे

वह एक लुहार के पास आया। लुहार के पास काम था। उसने कहा—इस लोहे को घन से पीटो और फिर बाद मे पैसा लो। राजकुमार ने घन उठाया और पीटना शुरू किया। जैसे-जैसे वह घन चलता वैसे-वैसे उसके हृदय मे विचारो का उथल-पुथल मचता—क्या पैसा यो पैदा किया जाता है? लुहार ने कहा—भाई पैसा हराम का नही आता है, इसलिये विचार करना हो तो घर जाओ, यहाँ तो काम करो और पूरे पैसे लो। महेन्द्र शाम तक मेहनत करता है और बदले मे एक रुपया पाता है। उसे लेकर वह खुशी खुशी अमर के घर की तरफ चल देता है। मार्ग मे जाते-जाते उसे विचार आता है कि ऐसी खरी मजूरी के पैसो का हम लोग कितना मूल्य आकते हैं? जो लोग कितने ही लोगो की महीनो की मजूरी को केवल एक घन्टे मे ही अपने मौज-शौक मे उडा देते है, वे क्या मानव है या दानव? राजा महेन्द्र उस दिन से राजा न रहकर मानव बन जाता है। यह कवि अमर के घर पहुचता है और अपनी मेहनत का एक रुपया उसे दान मे देता है। कवि उसे ले लेता है और प्रेम से आशीर्वाद देते हुए कहता है—

'राजन्! तू सिंहासन पर ही नही, प्रजा के हृदयासन पर विराजमान हो।'

बन्धुओ! आज आपका पैसा भी खरी कमाई का पैसा नही है, महज लूट है। जो जितनी अधिक लूट मचा सकता है वह उतना ही अधिक आज पैसा भी बटोर सकता है, पर दर असल जो ऐसा करता है वह खरा पैसा इकट्ठा नही करता है। खरा पैसा तो कुछ नवीनता पैदा कर ही इकट्ठा किया जा सकता है। आज आप हर रविवार को सिनेमा देख कर १००

या ५० रु० का पानी कर देते हैं, पर ऐसा करने का आपको अधिकार क्या है ? यह पैसा इकट्ठा कैसे होता है, क्या यह भी आप जानते है ?

आज आप दान देकर खुश होते हैं, पर क्या यह आपका सच्चा दान है ? सच्चा दान तो यह है कि आप अपनी मेहनत के पैसो मे से दे। ऐसा दान, जो कि त्याग धर्म का अश मात्र पालन है, अवश्य स्वीकार करना चाहिये। तभी आप अपने हृदय मे शान्ति रख सकेंगे।

गगा, यमुना और सरस्वती आदि नदियाँ जिस मैल को नही धो सकती उसे यह त्याग धर्म का पानी मान, धो सकता है। यह ही धर्म हमे दुख के मार्ग से मुक्त कर सकता है। जो व्यक्ति इसका उपयोग कर लेता है, वह फिर इसे कभी नही छोडता।

अमेरिका का एक अरब पति सेठ था। वह एक दिन सडक पर घूमने जा रहा था। वहाँ उसने एक विधवा स्त्री को देखा, जो रास्ते पर खडी हुई रो रही थी। उसका सामान पास मे पडा हुआ था और उसके बाल-बच्चे भी पास ही खडे हुए थे। उस धनपति से उसका यह दुख नही देखा गया। वह अपनी मोटर मे बैठाकर उसे अपने घर चलने को राजी करता है और वहाँ उसे रहने के लिये स्थान देता है। अरब-पति सेठ की अवस्था ७० साल की थी, पर उस समय उसके मुख से यही निकला कि 'मेरी उम्र मे जो सुख मुझे अब तक नही मिला, वह आज त्याग करने पर मिला है।' हम स्वय भी इसका अनुभव कर सकते हैं। भोजन करते समय यदि कोई भिखारी आजाय तो उस समय देने वाले को कितनी खुशी

होती है ? अत यह स्पष्ट है, कि त्याग मे ही सुख है, भोग में नही । विजली चमकती है, पर तत्क्षण वह बन्द हो जाती है। इसी तरह त्याग धर्मी और शील धर्मी के दुख भी तत्क्षण शात हो जाते हैं । अत इस ससार की आग से छुटकारा पाना है तो हमे त्याग धर्म का पालन करना चाहिये ।

आज तो जो फायर व्रिग्रेडियर है वे खुद ही आग से जल रहे है । भगवान् महावीर के फायर व्रिगेडियर-साधु भी आज अपनी आग मे जल रहे है । कोई सम्वत्सरी आज करो कहते है तो कोई 'कल करो' कह रहे हैं और इसकी पैरवी के लिए हाईकोर्ट तक की तैयारी भी की जा रही है । अत ऐसे फायर व्रिगेडियरो की तरफ देखे विना हमे अपनी ही तरफ देखकर त्याग के धर्म को स्वीकार करना चाहिये और अपना कल्याण करना चाहिये ।

५१

धर्म का मर्म

सुज्ञ बहिनो और प्यारे भाइयो !

हमारी यह धर्म परिषद् भारतवर्ष के उत्कर्ष की प्रतीक है। ऐसी परिषद धार्मिक मनुष्य के लिये प्रमोद का कारण बनती है। विदेशों मे कई अर्से से ऐसी परिषदें हुआ करती हैं, कई एक परिषदो में हमारे देश के आर्यधर्मों के प्रतिनिधियो ने भी सम्मिलित होकर आर्यधर्म का नाद गु जित किया है और इतना ही नही भारत के प्रति विदेशियो के हृदय में सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त किया है।

अपने देश मे तो ऐसी परिषदे भाग्य से ही होती है। सर्व धर्म परिषद् का यह दूसरा अधिवेशन ही है। यह हमारे लिये दु ख की बात है, लेकिन काफी लम्बे समय से भी हम जागृत हुए है, इससे खुशी होती है। अन्य विविध प्रकार की परिषदों से इस सर्व-धर्म परिषद् का एक विशिष्ट महत्व है। क्योंकि यह परिषद् अन्य सब परिषदो को सूर्य की तरह प्रकाश और प्रेरणा प्रदान करती है।

अपने देश की नीव धर्म पर स्थित है, अपनी संस्कृति का मूल धर्म है, इसी तरह हमारी सब प्रवृत्तियो का केन्द्र भी धर्म ही है। अपने आधारभूत और केन्द्रस्वरूप धर्म को वास्तविक

रूप मे प्रकट करने के लिये और उसके ऊपर जमे हुए अंध-श्रद्धा, साम्प्रदायिकता तथा क्रियाकाडो के जालो को दूर करने के लिये यह जो प्रयत्न हो रहा है, वह सचमुच स्तुत्य है और इसके सयोजक अभिनन्दन के पात्र हैं।

आज के नूतन विचार वाले नवयुवक जब धर्म का नाम सुनते हैं तो सुनते ही उसकी मजाक करने लग जाते हैं और झट बोल उठते हैं—'अरे, मरणासन्न पडे हुए धर्म को प्राणवायु देकर जीवित रखने की नाहक क्यो चेष्टा करते हो ?' जो भौतिकवादी, धर्म का मर्म नही समझ सकते, उनके लिये धर्म एक उपहास का विषय बन जाता है।

कोई वेद, पुराण, कुरान या बाइबिल रट लेने मे, कण्ठस्थ कर लेने मे धर्म मानते हैं। कोई नमाज पूजा या प्रार्थना को धर्म समझते है। कोई चोटी, डाढी, मूर्ति या मुहपत्ति को धर्म का चिह्न दिखाते है। कोई कलमा, गायत्री, या शास्त्र-गाथाओ मे धर्म रहा हुआ समझते है। इस तरह धर्म का अर्थ कोई कुछ तो कोई कुछ ही समझते हैं। पर धर्म का सच्चा मर्म कोई नही समझते।

पत्थर जैसे कठोर हृदय को सस्कारित कर कोमल बनाना, मनको निर्विकार बनाना, चित्त को निर्मल बनाना, जीभ और कानको संस्कारित कर निरर्थक बातो, पर—निन्दा से और आत्मश्लाघा से मुक्त बनाना और शरीर को अनासक्त कर्मयोग मे प्रवृत्त करना, इसी का नाम धर्म है और इसके लिये जो क्रियाएँ करनी पडे वे सब धार्मिक क्रियाए है।

तत्वज्ञान के विषय मे बिल्कुल अनभिज्ञ होते हुए भी अत्यन्त धार्मिक जीवन व्यतीत करने वाले मनुष्य हमे दृष्टि-

गोचर होते है। दूसरी तरफ सर्व-ग्रन्थो का निचोड कर लेने पर भी धर्म से विमुख अनेको ऐसे मानवो को भी हम देखते हैं। जैसे केवल पाकशास्त्र की पुस्तको को पढने से ही रसोई बनानी नही आ जाती, तैरने का ज्ञान कराने वाली पुस्तको को पढने मात्र से ही कोई तैरने वाला नही बन सकता और सर्जरी की पुस्तके पढकर ही कोई सर्जन नही हो सकता, वैसे ही धर्म ग्रन्थो को पढ लेने मात्र से ही धार्मिकता नही आ जाती है। ग्रन्थो के पढने से बुद्धि खिलती है, पर धार्मिकता प्राप्त करने के लिये तो इच्छा शक्ति (will power) या सयम (Self control) बढाना पडता है। यह इच्छा शक्ति अथवा सयम, वैराग्य, श्रद्धा और सत्सग आदि से ही वृद्धिगत हो पुष्ट होती है। पठन-क्रिया से वैराग्य, श्रद्धा और सत्सग को पोषण नही मिलता, वरन् पाडित्य और ढोग का पोषण होता है। जानना, धर्म नही है, पर जीना धर्म है। अपने जाने, सुने पढे और विचारे हुए सत्य-सिद्धान्तो को अपने जीवन मे असली रूप देना यही धर्म का सत्य स्वरूप है।

सामायिक, ज्ञान, होम, पूजा, प्रार्थना, नमाज या सध्या आदि चाहे जितनी बाह्य क्रिया करने पर भी यदि मन मे हमारे मैल होगा तो यह निश्चय समझियेगा कि हम कभी भी धर्म को प्राप्त नही कर सकेंगे। जब हमारा हृदय क्रोध से जल रहा हो, उसमें कपट का धुआँ उठ रहा हो, लालच का भूत छुपा बैठा हो, दुर्भावनाओ का राक्षस हृदय का राजा बना बैठा हो तो हम आगे प्रगति नही कर सकेंगे। इन सब मे से जब किसी की न्यूनता होती है या कोई एक शत्रु कम होता है तभी हम आगे कूच कर सकते है। धार्मिक क्रियाओ

के करते रहने पर भी यदि हमारे हृदय मे से विषय-कषायों की मात्रा कम न हो, ईर्षा, द्वेष, काम, क्रोध, और मोह न घटे हो तो यह निश्चय पूर्वक समझ लीजिये कि हमारी ये तमाम धार्मिक क्रियाएँ धर्मरूप नही, धर्माभास रूप है। धर्म तो अन्तरग क्रान्ति का नाम है। वह कही बाहिर नही रहा हुआ है, वह तो व्यक्तित्व के विकास मे समाया हुआ है।

अहिसा सत्य आदि से रहित क्रियाऐ व्यर्थ होती है। पाठशाला मे दाखिल होते ही कोई बालक 'अ' नही लिख सकता है, वह तो रिगडे ही पाडेगा परन्तु यदि उसकी नजर उस 'अ' की तरफ रही तो उन रिगडो मे से भी जरूर 'अ' निकलेगा ही, परन्तु यदि उसकी नजर उस 'अ' की तरफ नही रही तो भले ही वह वर्षों तक रिगडे पाडता रहे और पट्टी तथा कलम घिसता रहे, पर वह कभी भी 'अ' नही बना सकेगा। कहने का आशय यह है, कि लक्ष्य-पूर्वक की गई क्रियाऐ ही सार्थक होती है, लक्ष्य रहित निर्मूल। इतना ही नही, कई बार तो लक्ष्य रहित क्रियाएँ भारभूत, हानि-कारक और मिथ्याभिमान का निमित्त भी बन जाती है।

आग के समीप जाने से ठण्ड मिटती है, पानी से तृषा शान्त होती है, वायु से भिन्न-भिन्न प्रकृति मुस्कराती है, अन्न से भूख मिटती है और ताकत आती है, आकाश स्थान देता है और ताजा रखता है, इस तरह ये पाचो तत्त्व अपने-अपने गुणानुसार अपना-अपना धर्म बजाते है। इसी तरह धर्म के गुण भी शाति और आनन्द है, जिनकी प्राप्ति धर्माराधक को अवश्य होती ही है। जो धार्मिक प्रवृत्ति कम ज्यादा परिमाण मे भी शांति और आनन्द मे वृद्धि नही करती हो वह धर्म प्रवृत्ति

नही है, और न उसे धर्म-प्रवृत्ति समझनी ही चाहिये ।

धार्मिक व्यक्ति के हृदय मे आनन्द का सागर लहराता है, दुख या चिन्ता का वहाँ नामोनिशान तक नही होता । भय या विषाद तो उसको छूता भी नही है । कोई भी प्रलोभन उसे ललचा नही सकते । चाहे जैसे विषम प्रसगो मे भी उसे आवेश नही आता है । हर समय उसका आनन्द अखड और अविरल रहा करता है । उसके पास बैठने से दूसरो को भी आनन्द मिलता है । उसके सम्पर्क मात्र से ही मनुष्य की चिंता और भय दूर हो जाते है और हृदय निर्वैर बनता है । ऐसा जिसके जीवन सम्पर्क से ऐसा अनुभव होता हो वही सच्चा धार्मिक पुरुष कहा जा सकता है । फिर चाहे वह किसी जाति का या मुल्क का क्यो न हो ? चन्द्रमा को देखकर सबका हृदय पुलकित हो जाता है और पुष्प से जैसे सबको सुवास मिलती है, वैसे ही धर्मात्मा की सुवास भी सबको शांति देती है ।

कई एक लोग, पथ सम्प्रदाय या वाद को धर्म मान बैठते है, पर सत्य यह है, कि पथ या सम्प्रदाय धर्म के बाह्य कलेवर है । धर्म आत्मा की तरह है तो पथ या सम्प्रदाय उसके शरीर है । शरीर मे से जब आत्मा निकल जाता है तब उस शरीर को शीघ्रातिशीघ्र जला देना चाहिये, अन्यथा आत्मा-रहित शरीर दुर्गन्ध और बीमारी फैलाने लग जाता है । उसी तरह जिस पथ या सम्प्रदाय मे से धर्म तत्व चला गया हो तो फिर वह पथ या सम्प्रदाय मानव समाज मे गन्दगी पैदा करने वाला और हानिकारक बन जाता है । अत. आत्मा रहित शरीर की तरह उसे भी दफना देना चाहिये ।

धर्म, जहाँ गुणो के ऊपर रचा हुआ होता है और चारित्र को महत्त्व देता है, वहाँ सम्प्रदाय गुणो की वृद्धि और चारित्र के विकास की उपेक्षा कर केवल विधि-विधानो को ही पकडे रहता है। धर्म मनुष्य को नम्र बनाता है, परन्तु पथ मानव को मिथ्याभिमानी बनाता है।

धर्म मनुष्य के बीच मे खडी हुई भेद-भावों की दीवारो को तोड कर अभेदभाव की तरफ ले जाता है, वहाँ पथ भेद-भाव की एक और नई दीवार खडी करता है।

धर्म मनुष्य को अनेक प्रकार के वन्धनो से मुक्त करता है, परन्तु सम्प्रदाय 'यह करना और यह नही करना, वहा जाना और वहा नही जाना' इसी तरह के कई प्रतिबन्ध लगाकर मनुष्य को भूल-भुलैया मे डाल देता है।

पथ या सम्प्रदाय का अन्ध क्रियाकाड वड-पीपल की पूजा करना सिखाता है, पर प्यासे हरिजन को पानी पिलाना नही सिखाता है, पर अपने आस-पास रहे हुए दीन, दुखी भाइयो की सहायता करना नही सिखाता। यज्ञ, होम, प्रतिष्ठा जैसे धार्मिक उत्सवो मे लाखो का धुआं उडा देने को कहता है, पर उन रुपयो को वचाकर उसका उपभोग लोकहित की प्रवृत्तियों मे करने को नही सिखाता।

जो धर्म हमको गुणवान, चारित्रवान, नम्र तथा सच्चा सेवक बनाता हो, जो हमारी वुद्धि को स्वतत्र रूप से विचार करने का अवसर देता हो वही सच्चा धर्म है। इसके सिवाय अन्य मत-पन्थ या साम्प्रदाय को धर्म के मृत देह की तरह समझ कर छोड़ देना चाहिये। युद्ध सत्य धर्म कोई अमुक मत, पथ या सम्प्रदाय का ही नही होता, वह तो हवा और

आकाश की तरह सर्वत्र व्यापक होता है। किसी एक ही की मालिकी का नही होता। इसलिये हम जो कहते है कि 'भाई जो पाले उसी का धर्म' यह लोकोक्ति सचमुच सत्य ही है।

धार्मिक मनुष्य की धार्मिकता का रग उसके प्रत्येक कार्य में दीखना ही चाहिये। इतना नही, पर उसकी जिन्दगी की प्रत्येक घडी धर्म प्रवृत्ति मे ही व्यतीत होनी चाहिये। धर्म यह कोई एकादशी के दिन या पर्युषण अथवा ईद और रविवार के दिन ही पालने का हो और वह भी मस्जिद, मन्दिर और गिरजो मे ही, दुकान या घर में नही, ऐसे कोई भी बधन धर्म को स्पर्श ही नही कर सकते। धर्म स्थान तो एक स्कूल की तरह है जहां इन्सान अपने जीवन को धार्मिकता के रग मे डुबोना सिखाता है। जहाँ धर्म के पाठ पढना है, पर उन सीखे हुए पाठों का उपयोग तो हमारे घर, दुकान, व्यापार और व्यवहार मे ही करना है। अगर ऐसा नही करेंगे तो धर्मस्थानको मे जाकर 'भण्या पर गण्या नही' हमारे लिये कहा जायगा।

तोते ने एक वाक्य रट रखा हो कि 'बिल्ली आवे तो उड जाना, पर जब बिल्ली का पजा तोते पर गिरने वाला हो उस समय अगर तोता अपने रटे हुए पाठ का उपयोग न करे तो क्या वह बच सकेगा ? इसी तरह हम भी धर्मस्थानको मे नीति, न्याय, प्रामाणिकता, सत्य, प्रेम, सन्तोष, दया आदि के पाठ तो पढे, पर जब उनको कर्तव्य मे लाने का समय आवे तब हम उनको भूल जायं तो ? तब हमारा ज्ञान भी क्या 'तोता-ज्ञान' नही बन जायगा ? ऐसा ज्ञान भाररूप बन जाता है और जैसा कि पहले मैं कह चुका हू वह मिथ्या-

भिमान और दभ का कारण भी वनता है।

हमारी प्रत्येक प्रवृति वोलना, चालना, खाना, पीना, व्यापार करना आदि धर्म से ओत-प्रोत होनी चाहिये। धर्म के आचरण धर्म स्थानक मे ही करना चाहिये, उसके वाहिर नही, ऐसी मान्यता भूल भरी है। अभी इतना अधिक समय नही है, कि मै आप सवको अपने धर्मग्रथो के उद्धरण देकर वताऊ, अन्यथा मै आपको यह सिद्ध करके दिखा देती कि महापुरुषो ने तो जीवन व्यवहार मे ही धर्म का आचरण करने का उपदेश दिया है। और उन्होने स्वय भी अपने जीवन मे ऐसा करके दिखा दिया है। सीमैंट ककरीठ के वने हुए राज मार्ग पर जूते पहन कर चलना और काटो से भरी पगडडिया आवे तव अपने जूतो को हाथ मे लेकर खुले पैरो चलना, जितना मूर्खतापूर्ण है उतना ही मूर्खतापूर्ण यह भी है कि व्यवहार जीवन के काटो से भरे हुए पथ में धर्म का आचरण न करते हुए केवल धर्म स्थानक मे ही उसका पालन करना। धर्म कुछ व्यवहार से जुदा नही है, पर जीवन व्यवहार की शुद्धता का नाम ही धर्म है।

धर्म शव्द के स्वभाव और कर्त्तव्य ऐसे दो अर्थ है। मनुष्येतर प्राणियो के कर्त्तव्य उनके स्वभाव ही वन जाते हैं' परन्तु मनुष्य के वारे मे ऐसा नही है। उसके स्वाभाव और कर्त्तव्य जुदे-जुदे होते हैं।

मनुष्य अपने स्थान पर स्थिर रहकर, मन को पवित्र कर-व्यवहार शुद्ध वनाकर अपने कर्त्तव्य का पालन करे यही उसका धर्म है। डाक्टर को अपने वीमार को उपास्य देव समझ कर उसकी सेवा करनी चाहिये। वकील को अपने

असील (ग्राहक) को उपास्य देव समझकर उसको न्याय दे देना चाहिये अथवा उसे न्याय मार्ग पर ला देना चाहिये। गुरु का कर्त्तव्य है, कि वह शिष्य को अपना उपास्य देव समझे और उसका कल्याण करे। व्यापारी को अपने ग्राहक को उपास्य देव मानकर उसको उचित मूल्य मे अच्छी चीज देनी चाहिये। राज्य-सेवक का फर्ज प्रजा को सुख सुविधा देना है। प्रजाहित के लिये राज्य कर्मचारियो को अपने सर्वस्व का भी भोग दे देना चाहिये।

सरकारी कर्मचारी आज तक His Majesty's Servant कहे जाते थे। His Majesty यानी नामदार महाराज जार्ज या एडवर्ड आदि जो भी कुछ हो। और राज कर्मचारी उनके नौकर कहे जाते थे। परन्तु His Majesty स्वय प्रजा का सेवक है अत ये राजकर्मचारी तो सेवक के भी सेवक यानी दासानुदास हुए। आज तक लिखने मे तो ऐसा ही लिखा जाता था, पर इन दासानुदास कर्मचारियो ने काम कुछ दूसरी ही तरह किये है। यदि वे सचमुच प्रजा के सेवक बने रहते तो आज प्रजा का ऐसा हाल नही होता। खैर! आज तक की बात तो जाने दीजिए, पर आज के राज्य कर्मचारी प्रजा के सच्चे सेवक बने—ऐसी आशा रखना अस्थानीय नही है। आज म्युनिसिपालिटी, कोर्ट, कचहरी, काउसिल, एसेम्बली और पार्लमिण्ट तक जो कर्मचारीगण बैठे हुए है, वे प्रजा को अपना उपास्य समझकर उनका हित सोचकर अपनी नौकरी बजावेगे तो हमारे देश का भविष्य अवश्य उज्ज्वल होगा। जितना प्रेम और उत्साह प्रजा के लिये नेहरू और पटेल को है, राजेन्द्रबाबू और राजाजी को है उतना ही प्रेम और उत्साह

छोटे से छोटे एक अदने से सेवक के मन मे भी होना चाहिये। क्योकि वह भी राज्य की कुर्सी पर नेहरू और पटेल का प्रतिनिधि होकर बैठा हुआ है। कहने का आशय इतना ही है, कि प्रत्येक मनुष्य को अपने पास आने वाले प्रत्येक मनुष्य की नि स्वार्थ प्रेमपूर्ण और शुद्ध सेवा बजानी चाहिये।

वाह्य कर्मकांड और वाह्य चिन्ह धर्म नही, पर धर्म के साधन और प्रतीक हैं। परन्तु सनातनी या रूढि चुस्त इन्ही चिह्नो मे ही धर्म मान लेते हैं। किसी के सिर पर चोटी न हो, ललाट पर तिलक न हो, गले मे जनेऊ न हो तो सनातनी लोग धर्म भ्रष्टता का ढोल पीटते है, पर खुद झूठ बोलते हो, कालाबाज़ार करते हो, दुराचार का सेवन करते हो, अनाथ, विधवाओ का धन लूटते हो उस समय तो उन्हे अपनी धर्म-भ्रष्टता का तनिक भी ख्याल ही नही आता है, पर जब वे किसी के वाह्य चिह्नो को नही देखते है तो, धर्म रसातल मे चला गया है, मान बैठते हैं। कैसी विस्मयजनक बात है ? धर्म कोई जनेऊ निकालने से मर जाता हो या हरिजन के हाथ का पानी पी लेने से डूब जाता हो, ऐसा क्षुद्र और हल्का नही है। धर्म तो तभी मरता है जब कि हमारे जीवन मे से प्रेम, सहानुभूति, सत्य और न्याय-नीति का लोप हो जाता है।

धर्म प्रवर्तको ने भी क्रियाकाडो मे धर्म नही बताया था, बल्कि उनका प्रतिपादन साधन के रूप मे ही किया था। लेकिन पीछे से लोगो ने अपनी सुविधा के खातिर सुविधाजनक कर्मकाडो मे धर्म मान लिया। लोगो की इस मान्यता को पुष्ट करने मे कम ज्यादा परिणाम मे मेरे जैसे धर्म-प्रचारक भी जवाबदार है। दभी और आडम्बरी धर्मप्रचारको ने धर्म के रहस्य को

समझने-समझाने का जरा भी प्रयत्न न किया और अपने स्वार्थ-वश होकर लोगो को विपरीत मार्ग पर चलने को उत्प्रेरित किया। जो क्रियाकाड धर्म के साधन रूप मे थे उन्हे हीसाध्य रूप मे मानकर धर्मानुयायियो ने अपने को उनके ही झगडो मे फसा रखा है। उदाहरण के रूप मे मूर्तिपूजा और अमूर्तिपूजा के झगडे मन्दिर और मस्जिद के झगडे, स्पृश्य अस्पृश्य के झगडे। ऐसे झगडे आज प्रत्येक धार्मिक समाज मे देखने को मिलेगे, परन्तु यदि धर्मप्रचारको ने इन साधनो से साध्य की तरफ विशेष लक्ष्य दिया होता तो उससे मानव समाज का इतना भला हो गया होता कि आज ऐसी सर्व-धर्म-परिषद बुलाने की भी भाग्य से ही ज़रूरत होती।

धर्म का विधेयात्मक या रचनात्मक रूप अगर कहे तो अहिसा, सत्य, सयम, अपरिग्रह, दया, दान, क्षमा, शाति, समभाव आदि जो धार्मिक सिद्धान्त हमने जाने है, सुने है, और पढे है, उनको अपने जीवन मे उतारना है। और उसका निषेधात्मक स्वरूप मन, वचन और कर्म को बुरे विचारो मे जाने से रोकना है। यानी काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मान, माया आदि प्रवृत्तियो को रोकना है।

जैसे गुरुत्वाकर्षण का नियम ऊपर रहे हुए चन्द्र, सूर्य, ग्रहमडल को तथा पृथ्वी, समुद्र, पर्वत और नदियो को सम-तुलन स्थिति मे रखता है, किसी को निकलने नही देता, और अपने प्रभाव से परस्पर के सघर्षणो से बचाता है, उसी प्रकार वासना और प्रलोभन के प्रवाह मे बहते हुए अपने नित्य मन वचन और काया के अशुभ योग-प्रवाह को जो अटकाता है, वह धर्म है।

धर्म का स्वरूप क्या है ? इसे समझाने का यहाँ मैंने कुछ प्रयत्न किया है। मैं कोई दर्शनशास्त्र की या धर्मशास्त्र की विदुषी नही हू। मेरा वक्तव्य आप सबने सुना है, जिसमें आपने देखा है कि मैंने किसी भी धर्मशास्त्र का एक भी अवतरण उद्धृत कर आपको नही सुनाया है। फिर भी मै यह मानती हूँ और मेरा यह दृढ विश्वास है कि धर्म का मर्म, जो मैंने यहाँ समझाने का प्रयत्न किया है उससे शायद किसी भी धर्म का विद्वान् असहमत नही होगा। और न किसी को कुछ उसमे ऐतराज ही होगा ? अनेको विद्वान् यहाँ उपस्थित हैं, सर्वपल्ली जैसे प्रखर तत्वज्ञ का आपने भाषण सुना है और अभी भी अन्य कई महान विद्वानो के प्रवचन सुनने का सौभाग्य आपको मिलेगा, परन्तु मेरी मान्यतानुसार सब का सुर एक ही होगा, जैसा कि मैंने आपको बताया है। मै भले ही दर्शनशास्त्री या धर्मशास्त्री न होऊ, पर दुनिया के एक महान् धर्म की उपासिका एक साध्वी हूँ। साधु-साध्वी भी धर्म के उपासक है। इस उपासना के थोडे वर्षों के अनुभवो मे जो सत्य मैंने जाना उसे ही मैंने आपकी सेवा मे पेश किया है। मैं तो बार-बार एक ही बात पर जोर देना चाहती हूँ कि ऐसा शुद्ध धर्म ही मानव समाज का कल्याण कर सकेगा। धर्म के सिवाय अन्य कोई श्रेयस्कर उपाय मानव समाज के लिये नही है। यह बात जब मै कहती हूँ तब मनु महाराज का यह श्लोक मेरी जबान पर आ जाता है कि—

धर्म एव हतो हन्ति,
धर्मो रक्षति रक्षित.।

जो मनुष्य धर्म का नाश करता है,

धर्म उसका नाश करता है ।
जो मनुष्य धर्म की रक्षा करता है,
धर्म उसकी रक्षा करता है ।

—मनुस्मृति

मनुस्मृति का यह कथन एक सनातन सत्य है। कौन कह सकता है कि मनुष्य अपने धर्म को भूलेगा तो मानव जाति का विनाश न होगा ? युद्धो ने मानव जाति का सहार किया है। युद्ध यानी स्वार्थवश बेभान होकर की गई प्रवृत्ति। जो देश, जो राष्ट्र और जो समाज धर्म को भूल जाता है, वह अपनी मौत को ही निमन्त्रित करता है।

अभी कुछ ही दिनो पूर्व दिल्ली मे हुई परिषद् मे सर सर्व पल्ली राधाकृष्णन् ने कहा था कि 'विग्रह का अन्त यदि हम नही कर सके तो विग्रह हमारा ही अन्त कर देगा।' यही बात मैं मनु महाराज के शब्दो में कहती हू कि यदि हम धर्म का रक्षण नही करेंगे तो धर्म हमारा रक्षण नही करेगा, धर्म का पालन हम नही करेंगे तो धर्म हमारा पोषण कदापि नही करेगा। अर्थात् धर्म का अगर हम नाश करेंगे तो धर्म हमारा नाश कर देगा।

धर्म का शुद्ध स्वरूप और जीवन में धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान, विश्वशाति और विश्व की सामूहिक प्रगति के लिये धर्म की उपयोगिता कितनी और कहाँ तक है—यह अगर आज के युवक वर्ग को समझाया जाय तो वे धर्म का उपहास करने का फिर साहस न करेंगे। परन्तु सत्य हकीकत तो यह है कि वे सकीर्ण वर्तुलों और वाडाओ मे जाते है जहाँ कि धर्म का मर्म उन्हे कोई समझाता ही नही। वहा तो सब अपने-अपने

क्रिया-कांडो और विधि-निषेधो का ही ढोल पीटते होते हैं। इसलिए ऐसी सर्व-धर्म-परिषदे करने की खास आवश्यकता है, जिससे धर्म का रहस्य सब कोई जान सके। आज के भौतिकवादी जहाँ नास्तिकता के मद मे चूर है, वहाँ हमारे ये नाम के अध्यात्मवादी अन्धश्रद्धा के अन्धकार मे डूबे हुए है। इन दोनो वर्गो के लिये हमारी यह धर्म परिषद्, धर्म के शुद्ध स्वरूप को प्रकट करने वाली दीवा दाडी की तरह वने, इसी शुभ कामना के साथ मै अपना वक्तव्य पूर्ण करती हू।

[सर्व धर्म परिषद्, वम्बई अधिवेशन मे प्रेषित प्रवचन सम्पादक—श्री नटवरलाल शाह बी० ए०]

५२

संजीवनी विद्या

हिन्दू पुराण मे एक कथा आती है कि देव-दानवो के युद्ध मे देवता मारे जाते थे और दानव बच जाते थे। क्योकि दैत्यो के गुरु शुक्राचार्य के पास सजीवनी नामक विद्या थी। देवताओ ने भी एक बार बृहस्पति के पुत्र कच को शुक्राचार्य के पास सजीवनी को पाने के लिये भेजा। उसने वहाँ हजारो वर्षों तक रह कर नृत्य गीतादि से शुरु-तनया देव यानी का मनोरजन किया और सजीवनी विद्या प्राप्त की।

इस कथा का आशय यह है कि सजीवनी विद्या से मानव मृत्यु को भी जीत सकता है। सजीवनी विद्या के जानकार को मृत्यु का भय नही रहता, उसके लिये मृत्यु नाम की कोई बला नही होती है? उसकी दृष्टि मे जीवन अखड है और मृत्यु जीर्ण वस्त्रो की तरह परिवर्तन की एक क्रिया मात्र है।

सजीवनी विद्या यानी सम्यक् प्रकार से जीवन यापन करने की कला। जिसने सुन्दर ढग से अपना जीवन धारण किया हो और सम्यग् पथ पर जीवन यापन किया हो, उसको अगर मृत्यु का भय ही न हो तो यह कोई आश्चर्य जनक बात नही है। मृत्यु का भय तो मिथ्या मार्ग पर चलने वालो को और पाप मे पड़े हुए पापियो को होता है। पवित्र पुरुषों के निकट

भय कहाँ रहे ? उसके लिये कोई स्थान ही वहाँ नही होता। मीरा और महात्माजी, सोक्रेटीज़ और ईशुख्रिस्त सब सजीवन विद्या के जानकार थे, इसी से वे मृत्यु का भी हसते-हसते आलिंगन कर सके थे।

सजीवनी विद्या यानी भली-भाँति जीवन धारण कर उसे रखने की कला। इस कला की सिद्धि के तीन सोपान है—१ सादा और श्रमी जीवन, २ पवित्र हृदय, और ३ परोपकारवृत्ति।

सुन्दर ढग से जीवन जीने के लिये सब से पहले-अपनी आवश्यकताओ को कम करने की जरूरत है। आवश्यकताए जितनी अधिक होती है जीवन मे उतने ही जजाल-प्रपच अधिक होते है, और जितने अधिक जजाल होते है उसी परिमाण मे जीवन के सच्चे आनन्द का अभाव होता है।इसलिये जितनी आवश्यताए हम कम करे, उतना ही अधिक आनन्द का उपभोग हम कर सकते है।

लेकिन दु ख की बात तो यह है कि आज मानव समाज को अपनी आवश्यकताए कम करने के बदले अधिक बढाने का रोग लागू पड गया है। और इस रोग ने ही जीवन के आनन्द को लूट लिया है।

आर्य और अनार्य की व्याख्या करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा कि 'आवश्यकताओ को कम करने वाले आर्य है और बढाने वाले अनार्य।'

आज विलास बढ गया है और समाज मे त्याग के बदले विलास को ही प्रतिष्ठा मिल रही है। सैकडो रुपयो के टेबल कुर्सी, सोफा और कोचो के बजाय दो चार रुपयो की चटाई

या शतरजी से काम चलाया जा सकता है, जरी, रेशमी या मलमल से बारीक वस्त्रो के बजाय हाथ से कते-बुने खादी के कपडो से सर्दी गर्मी से शरीर की रक्षा की जा सकती है, लाखो रुपयो के व्यय से बने हुए आली शान बगलो मे रहने के बजाय एक छोटे से स्वच्छ-सुघड मकान से भी गुजारा किया जा सकता है, और ऐसे अनेक प्रकार के परिवर्तनो द्वारा अपने विलासी जीवन को सीधा और सादा बनाया जा सकता है। लेकिन भोग के रोग से पीडित मानव समाज सादगी मे समाये जीवनानन्द का पान नही कर सकता है।

स्वतन्त्र भारत की आर्य बहिनो को भी इस रोग से मुक्त करना आवश्यक है। स्त्री शृ गारकी अनेक फैशनेबल वस्तुओ के पीछे हमारा करोडो रुपया प्रति वर्ष विदेशो मे जा रहा है और देश निर्धन बनता जा रहा है। देश की गरीबी का यही मुख्य कारण है। नई नई फैशनेबल शृ गारिक वस्तुओ को देखकर स्त्रियाँ उनके पीछे दीवानी हो जाती है और इस तरह देश की आर्थिक स्थिति कमजोर होती जाती है वर्षो की पराधीनता से मुक्त हुए हमारे देश के धन का इस तरह दुरुपयोग करना कैसे सहन किया जा सकता है ? इस तरह से तो हम पुन अपनी विगत पराधीनता को ही आमन्त्रित करना चाहते है।शरीर पर सफेद वस्त्रो को धारण करने के सिवाय अन्य किसी भी जरी, रेशमी या मलमल के बारीक वस्त्रो की जरूरत नही रहती है। हीरे, माणिक, मोती और सोना चाँदी के आभूषण या नकली गहने मात्र ही शरीर को शोभित नही कर सकते है शरीर तो सद्गुणों से ही शोभित होगा। इस सीधी और सरल बात को सदा याद रखना

चाहिये। हमारी बहिनो को यह कभी नही बिसराना चाहिये।

आजाद हिन्दुस्तान के पुरुषो को भी अब Made in U. S. A. (यु० एस० ए० मे वनी हुई चीज) या Made in England (इग्लैंड मे बनी हुई चीज) का मोह छोडना होगा, और भारतीय उद्योगो को उत्तेजन देना पडेगा, तथा उत्पादन सामग्री मे सादगी का खयाल रखना पडेगा।

इसप्रकार जीवन को सीधा और सादा बनाने के बाद जीवन की अनिवार्य-अल्प आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये जीवन को परिश्रमी वनाना होगा। अपनी मेहनत से अपनी अल्प आवश्यकताओ की पूर्ति करने वाले ही पवित्र हृदय वाले वन सकते है।

श्रमण सस्कृति ने हमारे देश मे श्रम की प्रतिष्ठा स्थापित की थी। अधिक देकर वदले में न्यूनतम लेना यह सिद्धान्त-सूत्र ही श्रमण सस्कृति की आधार शिला थी। पूर्व मे ही नही, पश्चिम मे भी सत फासिस के साधु-सघ का तो यह नियम था कि विना मेहनत किये कुछ नही खाना।

सत फ्रासिस के जाईल्स नामक एक शिष्य के कुछ जीवन प्रसगो पर हम यहा विचार करते है।

मजूरी न मिले तो भूखा रहना, यह उसका कडक नियम था। एक वार उसे अपनी मुसाफिरी मे जाते हुए नाव के लिये कुछ दिनो तक एक नदी के किनारे रुक जाना पडा। वहाँ वह कई वार पास के गाँव से घड़ा लाकर लोगो के घरो मे पानी भरता और अपना गुजारा करता। कई वार गाँव की सफाई करके अपना पेट भरता। कईवार मरे हुए पशुओ को खीच कर, खेत मे मेहनत कर, और लकडी काट कर अपना

गुजारा करता।

एक बार एक बहिन ने उसकी लकड़ी की भारी खरीद की और वह अपनी भारी डालने के लिये नम्र भाव से उसके साथ साथ घर गया। बहिन पर उसकी नम्रता का गहरा असर हुआ और उसने पैसे देते समय उसे दूने पैसे दे दिये। जाईल्स ने उन्हें लेने से इन्कार करते हुए कहा—बहिन इस तरह मैं अपने लोभ को बढ़ाना नहीं चाहता। वह आधे पैसे वहीं डाल कर चलता बना।

दुष्काल के समय में वह अनेक ग़रीबों को भीख मांगने से मना करता और उनको अपने साथ खेत पर मजूरी करने के लिये ले जाता। मजदूरी करने पर जो कुछ उसे शाम को मिलता वह उसमें से कुछ अपने लिये रखता और शेष उन ग़रीबों को ही बांट देता था।

एक बार उसे एक बड़े अफसर (कार्डिनल) के यहाँ मेहमान बनना पड़ा। वर्षा जोरों से हो रही थी, बाहिर जाया नहीं जा सकता था। कार्डिनल ने मज़ाक में उससे कहा—अच्छा, अब तो मेरी मेहमानगीरी मंजूर करोगे न ? यों हमेशा अपने व्रत पर क़ायम नहीं रहा जा सकता है ?

जाईल्स, बिना कुछ कहे ही रसोड़े में चला गया और वहाँ नौकर से रसोड़े की गंदगी साफ करने की अनुमति ली दो रोटी के बदले में उसने सारा रसोड़ा बिल्कुल स्वच्छ कर दिया। कार्डिनल उसकी मेहमानदारी करे, उससे पहले ही वह तो रोटी खाने का हकदार बन बैठा था।

इस तरह पुराने जमाने में पूर्व तथा पश्चिम में श्रम की प्रतिष्ठा थी, पर आज के वैज्ञानिक युग में मानवों ने उसे भुला

दी थी। उसकी पुन स्थापना महात्माजी के हाथो से हुई। वे स्वय बैरिस्टर न रह कर किसान बने, शूट-बूट के बदले लगोटी और चद्दरधारी बने और शारीरिक श्रम का आरम्भ किया।

कई वार, जव अपरिचित व्यक्ति महात्माजी की मुलाकात लेने आते और उन्हे काम करते हुए देखते तो वे उन्हे एक मजदूर समझ लेते थे। सत्याग्रह आश्रम मे एक बार एक श्रीमत भाई गाधीजी की मुलाकात लेने आये। उस समय गाधीजी कुए से पानी लाने जा रहे थे। उस भले आदमी की भाग्य से उस समय उन्ही से भेट हो गई। उसने पूछा—'गांधीजी कहाँ हैं ! मुझे उनसे मिलना है। गाधीजी के हाथ मे खाली घडा था उन्होने कहा—आपको क्या काम है ? आने वाले भाई ने कहा—मुझे उन्ही से वातें करनी है। गाधीजी ने हँस कर जवाब दिया—अच्छा तो आप मेरे साथ चलिये ? आगन्तुक गांधीजी के साथ चलने लगा। चलते-चलते गाधीजी ने पूछा—कहिये आपको क्या वाते करनी है ? आगन्तुक ने कहा—मुझे तो गांधीजी से वात करनी है ? आप मुझे उनके पास ले चलिये न ?

गाँधीजी ने हँसते हुए कहा—आपको जिनके साथ वाते करनी है, वह मै ही हू, यह सुनते ही आगन्तुक भाई के आश्चर्य का ठिकाना नही रहा और वह शर्मिन्दा हो गया। पानी भरने वाला, जिसे उसने एक मज़दूर समझा था वही गाँधीजी निकले फिर तो वह उनके पैरो मे पडा और अन्त मे आश्रम को कुछ भेंट देकर विदा ली।

महात्माजी, कई वार सडास साफ करने का काम करते

थे। रसौडा मे भी काम काज करते थे। एक बार फिनिक्स आश्रम मे जब वे रहते थे तब वे नदी के किनारे जाकर वहिनो के कपडे धो ले आये थे। इस प्रकार उन्होने अपने हाथो से विवध काम कर शारीरिक श्रम की पुन प्रतिष्ठा कायम की।

शारीरिक श्रम, शारीरिक तन्दुरुस्ती की कु जी है। इससे मानसिक विकार भी दूर होते हैं। जीवन स्वावलम्बी बनता है। आलस्य और प्रमाद पर विजय हासिल होती है और इस तरह अनेक लाभ होते है। इस प्रकार सादा और श्रम प्रधान जीवन सजीवनी विद्या प्राप्त करने का प्रथम सोपान है।

दूसरा सोपान है पवित्र हृदय। काम, क्रोध और लोभ ये आत्म-विकार है। इन विकारो को हृदय मे स्थान नही देने से ही हृदय की पवित्रता कायम रखी जा सकती है। काम, क्रोध और लोभ को शास्त्रकारो ने नरक के द्वार कहे है। कामी, क्रोधी और लोभी मनुष्य दुनिया मे भी नरक उत्पन्न कर देते है।

विकारी मनुष्यो के हृदय मे शान्ति तो होती ही नही ? उनका समस्त जीवन ईर्षा द्वेष और लालसाओ मे ही गुजर जाता है। जिससे वह सुख, शान्ति और आनन्द का तो अनुभव ही नही कर सकता है। ये तीन विकार, मानसिक विकारो मे मुख्य सेनापति की तरह हैं। और दूसरे सब विकार सेना की तरह है। जैसे सेनापति को जीत लेने पर सारी सेना जीत ली जाती है, वैसे ही इन तीनो विकारो को जीत लेने पर बाकी सब विकार अपने आप दब से जाते है।

आयुर्वेद शास्त्र मे वात, पित्त और कफ युक्त दोष को त्रिदोष कहा है। इन तीनो में से किसी एक के दूपित होने से

शरीर मे रोग उत्पन्न होते हैं, और यदि तीनो ही दूषित हो जाय तो सन्निपात हो जाता है यानी रोगी पागल हो जाता है, इसी तरह काम, क्रोध और लोभ ये मन के त्रिदोष हैं। इनमे से एक भी हृदय मे घर कर जाय तो मानसिक तन्दुरुस्ती विगड जाती है। और यदि तीनो ही एक साथ पैदा हो जाय, तो फिर पूछना ही क्या है? उसकी स्थिति सन्निपात के रोगी की तरह हो जाती है, जिसे न अपने बोलने का मान रहता है और न कुछ करने का ही।

क्रोधी मनुष्य के लिए एक अग्रेज तत्व-चिंतक ने कहा है —'क्रोधी मनुष्य आँख वन्द कर देता है और मुँह खोल देता है।' इस तरह यह दुर्गुण मनुष्य को अपना भान भुला देता है। आँधी के सामने क्रोध करना तो सबसे भयकर भूल है। यह तो एक मुट्ठी धूल के वजाय दो मुट्ठी धूल उडाने जैसी बात हैं। काम क्रोध, आदि दुनिया मे गन्दगी वढाने वाले है। शान्ति और क्षमा से ही इन पर विजय हासिल की जा सकती है।

'लोहो सव्व विणासणो' इस शास्त्र वचनानुसार लोभ विनाश का मूल है।

सग्रहवृत्ति यह भी लोभ का दूसरा रूप ही है। इस वृत्ति ने तो आज मानव की मानवता भी छीन ली है। अपने लाभ के खातिर आज मनुष्य न करने योग्य कार्य भी करने को तत्पर हो जाता है। लोभ का विकार आज इस हद तक वढ गया है कि यदि कोई यह कहने लग जाय कि मानव का हृदय १० तोला सोने से बना हुआ है तो लालची मनुष्य अपने सजातीय मानवो को भी मारने मे नही हिचकिचाएँ?

ऐसी स्थिति मे आज मानव को मानव कहा जाय या दानव ? यह एक विचारणीय प्रश्न है। लोभ को जीतने का एक मात्र उपाय सन्तोप है। मानव जीवन मे जिस हद तक सन्तोष का गुण प्रकट होता है उस हद तक जीवन का सच्चा आनन्द अनुभव किया जा सकता है। अतएव काम-क्रोध लोभादि विकारो को जडमूल से उखाड कर हृदय को पवित्र और निर्मल बनाना सजीवनी विद्या का दूसरा सोपान है।

सजीवनी विद्या का तीसरा सोपान है—परोपकार वृत्ति अथवा सेवा परायणता।

परोपकार मे स्व-उपकार तो समाविष्ट होता ही है। मनुष्य को जो इन्द्रियाँ मन और बुद्धि मिली है, उनका उपयोग उसे दूसरो के लिये ही करना चाहिये अन्यथा वह कृपण कहा जायगा। समाज मे व्यक्ति समष्टि के आधार पर ही जीवित रहता है। समाज या समष्टि से अलग होकर वह अपनी तमाम जरूरियाते पूरी नही कर सकता है। उसके जीवन का आधार ही समाज है। दूसरो की सेवा लेकर ही वह जीवित है तो फिर उसे दूसरो की भी सेवा करनी ही चाहिये।

रोटी के एक ग्रास मे ही हम किसान, बैल, हल बनाने वाला, दलने वाला, रसोईदार आदि अनेक की सेवा का उपयोग करते हैं। सुन्दर राजमार्ग पर चलते हुए हम सैकडो मजदूरो की सेवा लेते है। जिस वस्त्र और मकान से हम अपने शरीर की रक्षा करते है, उनमे कइयो की सेवा ली गई है। इस प्रकार जब हम पग-पग पर दूसरो की सेवा लेते हैं तो हमे भी अपनी सेवाओ को यथाशक्य मानव समाज के चरणो पर अर्पण करने का फर्ज हो जाता है।

सेवा लेना और देना, श्वासोश्वास के समान है। श्वास लेना और बाहर निकालना, ये दोनो क्रियाए समान और आवश्यक है, पर कोई यह कहे कि मै बाहर से श्वास तो लेऊँ, पर निकालूँ नही तो फिर उसका क्या हाल होगा ? यही हाल सेवा लेने वाले का होता है अगर वह बदले मे सेवा नही देता है तो !

उपनिषद् मे तो जिस दिन मनुष्य ने कोई अच्छा काम नही किया हो वह दिन उसका वध्य माना गया है। गरीबी के कारण या निर्बलता के कारण भले ही मानव बड़े-बडे काम नही कर सकता है, पर छोटे-छोटे कार्य तो हर एक व्यक्ति कर सकता है ईश्वर के दरबार मे छोटे बडे का कोई अन्तर नही है। वहाँ तो छोटे आदमी के छोटे कामो की भी बडे आदमी के बडे कामो जैसी कद्र होती है। हम पुस्तकालय नही खोल सकते हैं। हम व्यायामशाला नही खोल सकते हैं, पर अपने बाल बच्चो की तन्दुरुस्ती तो ठीक बना सकते हैं। हम डाक्टर बन कर रोगी की चिकित्सा नही कर सकते है, पर रोगी की शुश्रूषा तो कर सकते है ? हम दवाखाने नही बनवा सकते हैं, पर बीमार आदमी के लिये दवा तो ला सकते हैं। भले ही हम सडक बनवा सकते हैं' पर सडक पर पडे हुए काँच, काटा, ककर या केला की छाल को उठाकर तो फेक सकते हैं इस तरह किसी भी तरह अच्छे काम करके अवध्यं दिवस कुर्यात् की धर्माज्ञा को सफल करके ही रात्रि मे आराम करना चाहिये

सजीवनी विद्या के इस तीसरे सोपान परोपकार वृत्ति पर चढ़ने वाले व्यक्ति के पास यह विद्या आ ही जाती है। सादा और श्रमी जीवन, निर्विकारी पवित्र हृदय और सेवा- पराय-